ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Issue - 2 April-June 2021 RNI NO. RAJHIN / 2011 / 40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume - 39 Issue - 2 April - June 2021

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-39 | Issue-2 | April-June 2021 | RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Shri Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-39 **Issue-2** **April-June 2021**

1. **राजस्थान में आर्थिक परिवर्तन और आदिवासी एवं किसान आंदोलन (1920–1939)** 1–6
   डॉ. सज्जन पोसवाल, झालावाड़
2. **अवध में खाद्य तथा पेय पदार्थ (1722–1856 ई.)** 7–12
   डॉ. चित्रगुप्त, झांसी (उत्तरप्रदेश)
3. **नई शिक्षा नीति 2020ः विंहगम परिदृश्य** 13–19
   डॉ. शालिनी चतुर्वेदी, जयपुर
4. **जनपद चमोली में लोक संस्कृति और पर्यटन का वर्तमान समाज तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव** 20–26
   डॉ. हर्षी खण्डूडी, चमोली (उत्तराखण्ड)
5. **19 वीं शताब्दी में पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख खनिज : एक अध्ययन** 27–30
   डॉ. अनिल पुरोहित, जोधपुर
6. **आजादी के बाद राजस्थान में भूमि सुधार के सरकारी प्रयास (1947 ई. से 1970 ई. तक)** 31–38
   निर्मल शर्मा, जयपुर
7. **नरेंद्र कोहलीः व्यक्तित्व और कृतिव** 39–42
   दीक्षा गुप्ता, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
8. **सिक्खों के बीकानेर राज्य के साथ सम्बन्ध : ऐतिहासिक अध्ययन (20वीं शताब्दी में)** 43–52
   डॉ. रश्मि मीना, जोधपुर
9. **पातोला महादेवः भौगोलिक पर्यटन और भौगोलिक सर्वेक्षण का महत्त्वपूर्ण केन्द्र** 53–56
   अभिषेक श्रीवास्तव, भीलवाड़ा
10. **हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री लेखन की परम्परा** 57–61
    डॉ. प्रवीण चन्द, जोधपुर
11. **मध्यकालीन मारवाड़ में पुरुष एवं स्त्री आभूषण** 62–65
    गरिमा, जोधपुर
12. **मुंहणोत नैणसी और उनके ऐतिहासिक ग्रंथ : एक अध्ययन** 66–69
    डॉ. मीनाक्षी बोराणा, जोधपुर
13. **महात्मा गांधी की पत्रकारिता** 70–77
    हर्षवर्धन पाण्डे, नैनीताल (उत्तराखण्ड)
14. **मारवाड़ के राठौड़ों के प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन** 78–80
    डॉ. भगवान सिंह शेखावत, जोधपुर
15. **पारंपरिक लोक रंगकला के समकालीन स्वरूप का स्त्रीपक्षीय परिपार्श्व : पंडवानी के विशेष संदर्भ में** 81–84
    डॉ. अपर्णा वेणु, ओट्टाप्पालम (केरल)
16. **जोधपुर का प्राचीन जल स्त्रोत–शेखावत जी का तालाब** 85–87
    डॉ. प्रतिभा सांखला, जोधपुर

17. **जीवन बीमाः एक परिचय** 88–94
डॉ. भावना रानी, अलवर

18. **राजस्थान का तिलवाड़ा मेला – मालाणी के पशुओं के सन्दर्भ में** 95–99
अचलाराम चौधरी, जोधपुर

19. **स्वतंत्र समर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की भूमिका (बुन्देलखण्ड के विशेष सन्दर्भ में)** 100–105
शत्रुघन कुमार खरे, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

20. **भारतेन्दू व द्विवेदी युगीन साहित्य में स्वदेशी चेतना** 106–111
डॉ. नीलम मीणा, जयपुर

21. **भारत में अनिवार्य मतदान – एक अध्ययन** 112–117
डॉ. मुकेश कुमार वर्मा, जयपुर

22. **नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित शोषण** 118–121
रीना महतो, राँची (झारखण्ड)

23. **जैन सन्तों का पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में योगदान** 122–125
डॉ. सुनिता टांक (सांखला), ब्यावर

24. **शेखावाटी किसान आन्दोलन में भजनों की भूमिका** 126–130
देवेन्द्र कुल्हार, जोधपुर

25. **प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् हरियाणा में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन** 131–134
अशोक कुमार एवं डॉ. सतेन्द्र, वनस्थली

26. **'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास की पात्र–परिकल्पना : एक विश्लेषण** 135–138
पंकज गौड़, जयपुर

27. **महाराणा जगतसिंह की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियां** 139–143
रंजीत कुमार वर्मा, उदयपुर

28. **अज्ञेय के काव्य में प्रयोगधर्मिता** 144–151
डॉ. हरिकेश मीना, करौली

29. **राजस्थान की स्थापत्य कला : जालोर दुर्ग के संदर्भ में** 152–156
सुरेन्द्र कुमार विश्नोई, जोधपुर

30. **सिद्ध पुरुष दीवान रोहिताश्व जी** 157–160
तुलसीराम सीरवी, जोधपुर

31. **मुगल कालीन भारत में डाक – व्यवस्था का स्वरूप एवं महत्व– एक ऐतिहासिक अध्ययन** 161–162
सोनिया शर्मा, जोधपुर

32. **Performance Evaluation of Growth oriented funds: A study of selected Thematic Infrastructural Mutual Funds in India** 163-172
Dr. R. K. Jain, Kota & Aditi Sharma, Jhalawar

33. **Migration Pattern of Artisanal Classes in Medieval Marwar: A Study of the Textile Workers in the 18th Centuries** 173-176
Mr. Narendra Singh, Delhi

34. **Rereading The Kite Runner through Aristotle's Poetics** 177-182
Dr. Vinu George, Jodhpur

35. **British Diaspora: Representations of India in Colonial British Indian Poetry** 183-185
Tanushree Srivastava, Ajmer

राजस्थान में आर्थिक परिवर्तन और आदिवासी एवं किसान आंदोलन (1920–1939)

डॉ. सज्जन पोसवाल
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

19वीं सदी के आरंभ में राजस्थान के विभिन्न राज्यों के साथ की गई संधियों के परिणाम स्वरूप उन पर ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना हुई और इसके साथ ही राजस्थान की अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश हितों के अनुकूल लेकिन राजस्थान के हितों के प्रतिकूल आर्थिक प्रभाव दिखाई देने लगे थे। ब्रिटिश सरकार को दिए जाने वाले खिराज में वृद्धि, सैनिक खर्च में वृद्धि, शासन व्यवस्था के पश्चिमीकरण से बढे हुए विभिन्न खर्चो तथा नमक उत्पादन और अफीम से होने वाली आमदनी में भारी कटौती से राज्यों की आय में कमी हुई। अब भूमि पर लगान ही आय का मुख्य साधन रह गया परिणाम स्वरूप जनता से लगान वसूलने के अलावा बड़े पैमाने पर नई नई किस्म की लागऔर बाग लगाई जाने लगी। धीरे–धीरे इसके खिलाफ राजस्थान के किसानों और आदिवासियों में असंतोष आक्रोश में बदलने लगा। प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप राजस्थान में बेरोजगारी और महंगाई में वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में समाज सुधार के रूप में होने वाले किसान और आदिवासी आंदोलन विश्व युद्ध के बाद व्यापक राजनीतिक आंदोलन में बदल गए। इनमें मेवाड़ राज्य के बिजोलिया ठिकाने का किसान आंदोलन अग्रणी था जिसका नेतृत्व विजय सिंह पथिक के हाथ में आने के बाद निरंतर शक्तिशाली होता गया। किसानों और आदिवासियों से वसूल किए जाने वाले कई प्रकार के लागबाग और बेगार का खुला विरोध किया गया । इसके प्रभाव से मेवाड़ के बेंगू,पारसोली, बूंदी के बरड़, शेखावाटी में किसान आंदोलन तथा सिरोही, डुंगरपुर, बांसवाड़ा के भील आंदोलन राजस्थान के स्वतंत्रता आंदोलन के आर्थिक आयाम की दृष्टि से प्रभावशाली साबित हुए।यद्यपि साम्राज्यवाद, राजतंत्र और सामंतवाद की तीसरी शक्ति ने इन आंदोलनों का दमन किया लेकिन यह आंदोलन दो विश्व युद्धों के बीच की अवधि में राष्ट्रीय आंदोलन को ताकत प्रदान करने तथा देशी राज्यों की जनता के शोषण को उजागर करने में कामयाब रहे।

संकेताक्षर : *विश्वयुद्ध, लागबाग,लगान, किसान, भील, बिजोलिया, बरड़, दमन, खिराज, नमक, अफीम, पथिक, तिहरा दमन, आक्रोश।*

19वीं सदी के आरम्भ में राजस्थान के विभिन्न राज्यों ने अंग्रेजों के साथ जो संधियाँ की थीं, उनके परिणाम स्वरूपअन्य देशी रियासतों के समान राजस्थान में भी ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना हुई। इन संधियों के साथ ही ब्रिटिश हितों के अनुकूल राजस्थान की अर्थव्यवस्था में बदलाव का सिलसिला आरम्भ हुआ जिनके प्रतिकूल प्रभाव बीसवीं सदी में स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। 'राजस्थान के विभिन्न राज्यों के साथ ब्रिटिश संधि के अन्तर्गत अंग्रेजों को दिए जाने वाले नज़राने की भारी रकम इन राज्यों पर थोप दी गई थी।'[1] 'ब्रिटिश सरकार को दिए जाने वाले इस खिराज के अलावा, सैनिक बटालियनों के खर्च, शासन व्यवस्था के पश्चिमीकरण से बढ़े हुए खर्च, सड़कों व रेलमार्गों के निर्माण–व्यय, सिंचाई योजनाओं के बढ़े हुए खर्च के परिणाम स्वरूप राज्यों का व्यय बढ़ गया। दूसरी तरफ, नमक उत्पादन तथा अफीम से होने वाली आमदनी में भारी कमी और राहदारी शुल्कों की समाप्ति से राज्य की आय घट गई थी। अब भूमि कर ही आय का मुख्य साधन रह गया था।'[2] ब्रिटिश आर्थिक हितों के पोषण के लिए निर्मित नये रेल एवं सड़क मार्गो के परिणाम स्वरूप परम्परागत व्यापारिक मार्ग तथा केन्द्र अपनी महत्ता खोते गए, राज्यों की टकसालों पर ब्रिटिश नियंत्रण होता गया, हुण्डी व्यवस्था का स्थान

बैंको ने ले लिया और इसके साथ ही व्यपारियों के निष्क्रमण आदि ने परम्परागत व्यापार वाणिज्य को भारी हानि पहुँचाई। 'नवीन मार्गो के खाद्यान्नों, तिलहन, रूई, ऊन आदि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा दिया। अनाज के निर्यात तथा व्यापारिक फसलों पर अधिक ध्यान देने के कारण राजस्थान में अनाज की कमी होने लगी जिससे राजस्थान में पड़ने वाले अकालों की संख्या अधिक और स्वरूप भयंकर होता गया।[3] ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के बाद यहाँ के शासकों और जागीरदारों को सत्ता का अभयदान तो मिल गया था लेकिन अब इनका अस्तित्व अंग्रेजों की कृपा पर निर्भर था अतः इन्होने ब्रिटिश स्वामियों की संतुश्टि और अपनी फिजूल खर्ची के लिए अपनी ही प्रजा को लूटना आरम्भ कर दिया[4] जिसके गम्भीर आर्थिक परिणाम आना स्वाभाविक था।

कभी प्रशासनिक आकस्मिक खर्च के लिए जनता से वसूल की जाने वाली विभिन्न प्रकार की 'लाग बाग' अब सामन्त की आय का नियमित साधन बन गई थी। जागीरदार की बढ़ती फिजूल खर्ची और औपनिवैशिक आर्थिक भार के परिणाम स्वरूप किसानों के शोषण की पराकाष्ठा यह थी कि किसानों को अपनी आय के लगभग 87 प्रतिशत भाग से वंचित होना पड़ता था। इन परिस्थितियों में सामन्त व प्रजा के मध्य सम्बन्धों में जो असन्तुलन पैदा हुआ उसने कृषक आन्दलनों को जन्म दिया। इसी प्रकार, आदिकाल से वनों में निवास करने वाली तथा वन उत्पादों से जीवन यापन करने वाली भील तथा मीणा जनजातियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाये गये। वन उत्पादों को निःशुल्क उत्पादन पर प्रतिबन्ध तथा आदिवासियों के वन सम्बन्धी विशिष्ट अधिकारों की समाप्ति ने आदिवासी आक्रोश को जन्म दिया, जिसकी परिणति आन्दोलनों, में हुई। इसके अतिरिक्त प्रथम विश्व युद्ध में भी आर्थिक रूप से राजस्थान को प्रभावित किया। वस्तुतः 1920 तक आते–आते निम्न परिवर्तनों ने राजस्थान के आर्थिक जीवन को प्रभावित किया–

राजस्थान में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के साथ शुरू हुए पारम्परिक व्यवसायों के ह्रास के गंभीर आर्थिक परिणाम हुए। यद्यपि 1891 से 1931 के बीच राजस्थान की जनसंख्या में वृद्धि नही हुई थी लेकिन पारम्परिक व्यवसायों में गिरावट के कारण इस काल में कृषि पर जनसंख्या की निर्भरता 54% से बढ़कर 73% हो गई।[5] इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से हर प्रकार के शोषण की शिकार राजस्थान की जनता की तकलीफों को विश्व युद्ध ने और बढ़ा दिया। राजाओं ने बढ़चढ़ कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक मदद की और इस पहल में जागीरदारों के योगदान को निश्चित कर दिया गया। युद्धकोष में शासकों द्वारा दिया गया सारा धन राजकोष का था जिसका बोझ जनता पर पड़ना स्वाभाविक था। विश्व युद्ध के घोर रक्तपात से उत्पन्न हैजे और प्लेग जैसी महामारियों की चपेट में राजस्थान भी आया।[6] इसके साथ ही विश्वयुद्ध के प्रभाव से राजस्थान में भी मंहगाई और बेरोजगारी में वृद्धि हुई।[7] उल्लेखनीय है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अधिकाशं किसान एवं आदिवासी आन्दोलन समाज सुधार के रूप में उत्पन्न हुए लेकिन राजस्थान के लोगों में अपनी आर्थिक विपन्नता और शोषण से उपजा असंतोष अत्ततः राजनीतिक आन्दोलन के रूप में फूट पड़ा अतः यहाँ संक्षेप में किसान व आदिवासी आन्दोलन का वर्णन सभीचीन होगा।[8]

ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना से आदिवासियों की स्वतंत्रता तथा आर्थिक स्थिति पर पड़े घातक प्रभावों ने उन्हें 19 वीं सदी में ही विद्रोह के लिए बाध्य किया था। ये विद्रोह बीसवीं सदी के आरम्भ में गोविन्द गिरि के नेतृत्व में आन्दोलन में बदल गए। दक्षिणी राजस्थान के मेवाड़, सिरोही, डूँगरपुर और बाँसवाड़ा के अलावा गुजरात में बसे भीलों में गिरि का आन्दोलन समाज सुधार पर आधारित था जिसे सत्ता पक्ष ने अपने लिए चुनौती मानते हुए कुचलने का निर्णय लिया। 1913 के भील विद्रोह को नरसंहार के साथ दबा दिया गया। 1920 का आन्दोलन फिर भी चलता रहा और इसके बाद मोतीलाल तेजावत ने भील तथा गिरासिया आन्दोलन का नेतृत्व सम्भाला। तेजावत ने असहयोग आन्दोलन की जाग्रति के प्रभाव में आदिवासियों का एकी आन्दोलन चलाया जिसका उद्देश्य राज्यों व जागीरदारों द्वारा किये जाने वाले भीलों के शोषण का संयुक्त विरोध करना था। उसके नेतृत्व में मेवाड़ व सिरोही का आदिवासी आन्दोलन 1929 में उसके गिरफ्तार होने तक चलता रहा। इस आन्दोलन का प्रभाव इतना गहरा था कि तेजावत की अनुपस्थिति में 1936 में उसके रिहा होने तक आन्दोलन जारी रहा। रिहाई के बाद भील क्षेत्रो में प्रवेश निषेध के कारण वह बाद में उदयपुर से ही भीलों का मार्ग दर्शन करता रहा।

राजस्थान के किसान आन्दोलनकी श्रृंखला में मेवाड़ के बिजोलिया ठिकाने का किसान आन्दोलन अग्रणी रहा

हैं। वस्तुतः पथिक के योग्य नेतृत्व में पहला सत्याग्रह बिजोलियामें ही हुआ था जिसे गांधी ने बाद में चम्पारण में सफलता पूर्वक आजमाया।[9] बिजोलिया आन्दोलन का उद्देश्य जागीरदार द्वारा वसूल किये जाने वाले विभिन्न करों (लाग बाग) का विरोध करना था जो विभिन्न त्यौहारों, अवसरों जैसे फसल कटाई, विवाह, जन्मदिन समारोह और जागीरदार के विभिन्न सामाजिक उत्सवों पर दिये जाते थे। बेगार प्रथा भी विरोध का प्रमुख कारण थी। विश्व युद्ध में सहायता के लिए करों का बोझ और भी बढ़ा दिया गया अतः साधु सीताराम दास ने इसके विरूद्ध आन्दोलन आरम्भ किया जिसकी बागडोर 1915 से विजय सिंह पथिक ने संभाली। पथिक ने पंचायतों के माध्यम से किसानों को संगठित कर सत्याग्रह शुरू किया तो साधु सीताराम दास, रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा के साथ हजारों किसानों को गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन जमीन जप्ती को घोषणा के बावजूद किसानों ने समर्पण नही किया तो गांधी के असहयोग आन्दोलन में किसानों के शामिल होने के डर से ए.जी.जी. ने किसानो व ठिकाने के मध्य 1922 में समझौता करा दिया जिसके अन्तर्गत अधिकांश लाग बाग और बेगार प्रथा की समाप्ति शामिल थी।

यह समझौता बिजोलिया आन्दोलन की बड़ी सफलता थी लेकिन जागीरदारों ने समझौते का पालन न कर नये कर लगाए। सन् 1923 से 26 के बीच सूखा और अकाल ने किसानों की कठिनाइयों को और बढ़ा दिया। ऐसे में भू-राजस्व तथा अन्य करों की सख्ती से वसूली ने किसानों को पुनः आन्दोलन के लिए विवश कर दिया। पथिक के प्रवेश पर प्रतिबन्ध के बावजूद उन्ही के निर्देशन में आन्दोलन किया। किसानों की जमीनें जप्त कर ली गई लेकिन किसानों ने निर्भीकता से दमन का सामना किया। अन्ततः हरिभाऊ उपाध्यायकी मध्यस्थता से हुए समझौते में ठिकाने ने 1922 के समझौते के पालन का आश्वासन दिया लेकिन ठिकाने ने ऐसा नही किया अतः 1931 में माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में किसानों ने भूमि पर कब्जा कर जुताई की परिणाम स्वरूप वर्मा व कई किसान गिरफ्तार कर लिए गए। महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में इस आन्दोलन में भाग लिया। अन्ततः प्रधानमंत्री सुखदेव सिंह के इस आश्वासन पर कि बिजोलिया किसानों की जप्त की गई भूमि और सम्पति शीघ्र लौटा दी जाएगी, बिजोलिया सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। 1939 तक किसान अपनी खोई हुई भूमि इस आश्वासन के बाद पा सकें कि वे भविश्य में कोई आन्दोलन नही करेंगें। इस प्रकार यह आन्दोलन सामन्तवाद एवं उपनिवेशवाद के विरूद्ध चेतना जाग्रत कर अन्य किसान आन्दोलनों का प्रेरणास्रोत बनने में सफल हुआ। बिजोलिया की प्रेरणा से बेंगू के किसानों ने भी शोषण के विरूद्ध आन्दोलन किया जिसका दमन करने के लिए ठिकाने दार ने गावों में आग लगाने तथा गोली चलाने के आदेश दिये। ऐसे में पथिक वहाँ पहुँचे लेकिन गिरफ्तार कर लिये गए। 1927 में रिहाई के साथ उन्हें मेवाड़ से निष्कासित कर दिया गया। अन्ततः ठिकाना अधिकारियों तथा किसानों के बीच हुए समझौते में किसानों की मांग मान लेने से आन्दोलन शान्त हो गया। इसी श्रृंखला में बूँदी के किसानों ने भी लाग बाग और बेगार के विरूद्ध 15 जून 1922 को पं. नैनू राम शर्मा के नेतृत्व में सत्याग्रह आरम्भ कर दिया लेकिन राज्य ने गिरफ्तारियों और गोलियों के सहारे उनका दमन कर दिया जिससे आन्दोलन धीमा पड़ गया। 1936 में बूँदी के बरड़, खेराड़ तथा हिन्ड़ौली क्षेत्रों में नुक्ता प्रथा विरोधी कानून तथा विभिन्न चराई करों के विरोध में गूजरों ने आन्दोलन किया, लेकिन आयोग की नियुक्ति तथा दमनात्मक नीति द्वारा इसे नियंत्रित कर लिया गया। 1939 में लाखेरी के गूजरों ने इसी प्रकार की मांगों के लिए आन्दोलन किया लेकिन उसको भी दबा दिया गया।

यहां के किसान आन्दोलन की प्रतिध्वनि अलवर में भी सुनाई दी। जब 1922 में हुए भूमि बन्दोबस्त के अन्तर्गत भूराजस्व में भारी वृद्धि की गई तो इसके विरोध में थानागाजी तथा बाणसूर तहसीलों के किसानों ने संगठित होना शुरू किया जिसका केन्द्र नीमूचणा गाँव था। राज्य ने किसानों की माँगे मानने के स्थान पर गाँव को चारों ओर से घेर कर सेना को गोलियाँ दागने का आदेश दिया जिससे पूरा गाँव जल कर राख हो गया, 156 लोग मारे गए तथा 600 लोग घायल हुए। इसके बाद भी व्यापक गिरफ्तारियाँ और दमन के द्वारा जन आक्रोश को दबाने की कोशिश की गई । अन्ततः पीड़ित लोगो को शान्त करने के लिए पुराने बन्दोबस्त को लागू करने का निर्णय लिया गया।

अलवर आन्दोलन की दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी मेव आन्दोलन है। मेवों ने 1921 के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था जिसका दमन कर दिया गया। इसके बाद 1932-33 में मेवों ने पुनः आन्दोलन किया।

एक ओर वे धार्मिक शिक्षा की आजादी चाहते थे तो दूसरी ओर कृषि सम्बन्धी आर्थिक माँगे। इन मार्गो में प्रमुख थी– ब्रिटिश भारत के मेवक्षेत्र (गुड़गाँव) के समान भूराजस्व की दरें, अकाल राहत, फसल सुरक्षा के लिए जंगली जानवरों को मारने की छूट, सार्वजनिक काम के लिए बेगार की समाप्ति। 1932 में इस क्षेत्र में बाढ़ के कारण जब फसलें नष्ट हो गई मेवों ने कर अदायगी से इंकार कर दिया। इनकी सहायता के लिए गुड़गाँव, रोहतक तथा भरतपुर से मेव जत्थे अलवर पहुँचे। मेवों ने अब आक्रामक रूख अपनाते हुए राज्य सैन्य दल पर आक्रमण कर दिया और हिन्दुओं के घरों में आगजनी और लूट शुरू कर दी जिससे आर्थिक विद्रोह साम्प्रदायिक विद्रोह में बदल गया। 1933 में अलवर शासक की इच्छा के विरूद्ध ब्रिटिश सेना ने अशान्त क्षेत्र में पहुँचकर कार्यवाही की तथा मेवों की कुछ शिकायतों को दूर करने की भी घोषणा की। अलवर शासक को कुछ समय के लिए युरोप जाने का आदेश देकर अंग्रेजों ने शासन अपने हाथ में ले लिया और दबाव तथा रियासतों द्वारा मेव आक्रोश को शान्त कर दिया गया।

जयपुर राज्य में सीकर तथा शेखावाटी किसान आन्दोलनों के केन्द्र रहे। यहाँ आन्दोलन खड़ा करने में रामनारायण चौधरी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सीकर में सामन्त राजपूत होने तथा किसान जाट होने के कारण कृषक संघर्ष जाट संघर्ष के रूप में भी दिखाई दिया। 1922 में यहाँ के ठाकुर की मृत्यु के बाद उसके मृत्यु संस्कार तथा नये ठाकुर कल्याण सिंह की गद्दी नशीनी पर हुए भारी खर्च की भरपाई के लिए 25 से 50 प्रतिशत तक भूराजस्व दरें बढ़ा दी गई इस वृद्धि का विरोध करते हुए किसानों ने भूराजस्व न देने का निर्णय किया, जवाब में किसानों को दमन तथा उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। जनवरी 1925 में किसानों ने जयपुर महाराजा के सामने अपनी शिकायतें रखी। महाराज की सलाह पर ठाकुर ने भूराजस्व में कमी का आश्वासन तो दिया लेकिन उसे पुरा नही किया गया। 1925–28 के मध्य ठाकुर ने आयोग द्वारा भूमि का सर्वेक्षण कराया तो जरीब को ही छोटा करवा दिया गया ताकि बीघों की संख्या बढ़ जाये। जब किसानों ने महाराजा तथा रेजीडेन्ट के सामने इसका विरोध किया तो भूराजस्व में वृद्धि को समाप्त कर दिया गया लेकिन इससे सम्बन्धित शिकायतों पर कोई ध्यान नही दिया गया। सीकर के किसानों की गतिविधियों से उत्साहित होकर शेखावाटी के अन्य ठिकानों में भी किसान लामबन्द होने लगे थे। 1929 में सीकर में भूराजस्व पुनः बढ़ा दिया गया जिसके विरूद्ध किसानों का संघर्ष जारी रहा।

1930 में जब विश्व आर्थिक मंदी के कारण दुनिया भर में कृषक उत्पादनों के भाव गिर रहे थे तब सीकर के किसान लगान वृद्धि की मार झेल रहे थे। गाँधी के दाण्डी मार्च ने भी किसानों को प्रेरित किया। किसानों ने भारी संख्या में अपनी माँगों के समर्थन मे जयपुर दरबार के समक्ष सत्याग्रह आरम्भ कर दिया अतः दरबार ने जाँच के लिए राजस्व सदस्य को नियुक्त किया जिसने किसानों की शिकायतों को उचित पाया। अप्रैल 1931 में सीकर में राजस्व अधिकारी की नियुक्ति कर भूराजस्व दर में छूट भी दिलाई लेकिन किसानों की अन्य शिकायतें यथावत रही अतः अब किसानों ने सामाजिक एकता का सहारा लेने का निर्णय लिया। इसी क्रम में 1931 में राजस्थान क्षेत्रीय जाट सभा की स्थापना कर अखिल भारतीय जाट महासभा की मदद ली गई। 1932 में अखिल भारतीय जाट महासभा का अधिवेशन झुन्झुनु में हुआ जिसमें किसानों की समस्या को उठाया गया। इसके साथ ही सामन्तों की दमनकारी नीति जारी रही और सैकड़ो जाट किसान जेल में बन्द कर दिए गए। 1935 में खूरी और कुन्दा गाँवों में शांतिपूर्वक आन्दोलन कर रहे किसानों पर पुलिस द्वारा चलाई गई गोलियों से कई लोग मारे गए। 1938 में सीकर के ठाकुर तथा जयपुर दरबार में विवाद होने पर ठाकुर को निष्कासित कर दिया तो किसानों ने ठाकुर के समर्थन में आन्दोलन किया जिसे दबा दिया गया। इसी समय, 1938 में जमना लाल बजाज के नेतृत्व में जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना हुई और उसके समर्थन ने किसान आन्दोलन में नए उत्साह का संचार किया। प्रजामण्डल के नेतृत्व में शेखावाटी के किसानों ने करबन्दी आन्दोलन (1938–39) चलाया जिसका कठोरता से दमन किया गया, बजाज को गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के विरूद्ध प्रजामण्डल ने सत्याग्रह किया, किसान दिवस मनाया। आन्दोलन की तीव्रता को देखते हुए राज्य कौसिल ने अक्टुबर 1939 में अधिसूचना जारी कर राजस्व में छूट, ऋण सुविधा तथा पशुचारे की व्यवस्था के निर्देश दिए लेकिन ठिकाने द्वारा इन्हे लागू न किये जाने के कारण किसानों का आन्दोलन जारी रहा जो आजादी एवं एकीकरण के साथ ही समाप्त हो सका।

राजस्थान के अन्य राज्यों के किसान आन्दोलन स्वतः

स्फूर्त थे जिन्होंने आगे चलकर संगठित राजनीतिक स्वरूप प्राप्त किया था जबकि जोधपुर राज्य में किसान आन्दोलन राजनीतिक संगठनों के जागरूक प्रयासों के परिणाम थे। मारवाड़ हितकारिणी सभा ने आरम्भ से ही किसान समस्याओं को प्राथमिकता दी। 1923 में राज्य ने जब राजस्व वृद्धि के लिए पशु धन निर्यात का आदेश दिया तो जयनारायण व्यास के नेतृत्व में सभा ने जन सभाओं के माध्यम से लगातार दबाव बनाया अतः 1924 में सभा की इस माँग को स्वीकार कर लिया गया। सभा ने 1929 में लाग बाग व उच्च भूराजस्व के विरूद्ध आवाज उठाई। 1921–26 के बाद खालसा भूमि में नकद भूराजस्व की वसूली, 1928 में भूराजस्व में वृद्धि, 1930 के आर्थिक संकट में बढ़ी मंहगाई और सूखे के कारण मारवाड़ के किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी। इसके विरूद्ध माली जाति के मंडोर क्षेत्र के किसानों ने आवाज उठाई और राज्य द्वारा अनसुना करने पर निर्णय लिया गया कि यदि कोई व्यक्ति राजस्व अदा करेगा तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाएगा। तत्कालीन राजनीतिक माहौल को देखते हुए राज्य ने राजस्व में छूट देकर आन्दोलन का शमन कर दिया।

मारवाड़ राज्य प्रजा परिषद ने अपने 1931 के प्रथम अधिवेशन में ही बेगार एवं लाग बाग की समाप्ति तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की मांग की जिसे हितकारिणी सभा ने आगे बढ़ाया लेकिन दमन द्वारा इस पर नियंत्रण का प्रयास किया गया। 1938 में स्थापित मारवाड़ लोक परिषद में 1938–39 में मारवाड़ में पड़े अकाल में सरकारी राहत की मांग करते हुए उसकी राहत नीतियों को अपर्याप्त बताया। जब सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध में राज्य द्वारा सम्राज्य की मदद की घोषणा की तो परिषद ने इसकी तीव्र आलोचना की क्योंकि जब मारवाड़ में लोग भुखमरी के शिकार थे तब राज्य उनकी मदद के बजाय साम्राज्य के युद्ध प्रयासों में धन बहा रहा था। अन्य राज्यों की तुलना में बीकानेर में किसान आन्दोलन देर से शुरू हुआ। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने गंगानगर क्षेत्र में नहर का निर्माण कराया। सतलज नदी से निकाली गई इस नहर के क्षेत्र में पंजाब से आकर कई किसान बसे। यहाँ के किसानों को महाराजा ने कई सुविधाएँ देने का वादा किया था जिसे पूरा न करने पर किसानों ने विरोध किया। इनको सुविधाएँ देकर विरोध को नियंत्रित कर लिया गया। इसके अलावा सीकर तथा शेखावाटी क्षेत्र के कृषक आन्दोलन के प्रभाव से बीकानेर क्षेत्र के शोषित किसानों ने 1934 में लाग बाग और उच्च भूराजस्व में कमी की मांग की, 1937 में बीकानेर प्रजामण्डल ने इसका समर्थन किया। 1938 में महाजन ठिकाने के किसानों ने महाराजा से शिकायत की लेकिन किसानों को रियायतें देने के बजाय उन्हे भूमि से बेदखल कर दमन कर दिया गया।

भरतपुर राज्य में 95 प्रतिशत भूमि सीधे राज्य के नियंत्रण में थी। यहाँ भूराजस्व वसूली का कार्य लम्बरदार तथा पटेल करते थे जिन्हें बदले में राजस्व मुक्त भूमि तथा अन्य सुविधाएं मिलती थी। 1931 में हुए नये भूमि बन्दोबस्त के अन्तर्गत भूराजस्व में वृद्धि कर नये कर लगाएं गए, जबकि विश्व आर्थिक मन्दी के कारण किसानों की समस्यायें पहले ही बढ़ी हुई थी। उल्लेखनीय है कि कर वृद्धि के विरूद्ध किसान आन्दोलन में पटेलों और लम्बदारों ने किसानों का साथ दिया। राज्य ने पटेलों और लम्बदारों के प्रति उदार नीति तथा किसानों के प्रति दमन नीति द्वारा आन्दोलन को दबा दिया। अन्ततः 1931–33 के बीच भरतपुर प्रजा परिषद तथा अन्य संगठनों के नेतृत्व में किसान करों की कमी कराने में सफल हुए और इसके बाद दीर्घकाल तक राज्य में शांति रही।

इस प्रकार दो विश्व युद्धो के बीच का दौर (1920–1939) राजस्थान में राजनैतिक आर्थिक परिवर्तन की दृष्टि से निर्णायक रहा है। उस काल में सामन्तवाद, राजतंत्र तथा साम्राज्यवाद ने अपनी निरंकुशता को बनाए रखने के लिए पूरी शक्ति लगा दी लेकिन दमन के बावजूद परिवर्तन के स्वर को न दबाया जा सका। दूसरी ओर ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के विनष्टकारी परिणामों ने भूराजस्व वृद्धि के सिलसिले को जन्म दिया, प्रथम विश्व युद्ध और आर्थिक मन्दी ने किसानों की कठिनाइयों को और बढ़ाया। इन आर्थिक कारणों से उपजे कृषक असंतोष के आन्दोलन में रूपान्तरित होने से राजनीतिक परिवर्तनगामी शक्तियों की ताकत बढ़ी। राजस्थान मं निरंकुशता के विरूद्ध उठ रही लहरों में 1938 के कांग्रेस के हरिपुरा प्रस्ताव के बाद ज्वार सा उठा जिससे न केवल उत्तरदायी शासन का मार्ग प्रशस्त हुआ अपितु उसने देश एकीकरण एवं प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया में राजस्थान को सम्मिलित कर प्रजातांत्रिक और एकीकृत भारत के निर्माण का आधार प्रदान किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बृज किशोर, शर्मा 'आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1993, पृष्ठ 14*
2. *कालूराम, शर्मा, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1974, पृष्ठ 157*
3. *उपरोक्त, 241*
4. *बृजकिशोर, शर्मा, आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1993, पृष्ठ 15*
5. *एम. एस., जैन, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1988, पृष्ठ 282–83'*
6. *मथुरा लाल शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास भाग II, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2008, पृष्ठ 218*
7. *जगदीश सिंह गहलोत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश–दुर्ग, जोधपुर, 1991, पृष्ठ 314*
8. *पेमाराम एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, पंचशील, जयपुर, 1986 बृजकिशोर शर्मा, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001, रामपाण्डे, एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान, शोधक, जयपुर 1998 आदि देखें*
9. *जगदीश सिंह गहलोत, राजस्थान बिफोर सेकन्ड वर्ल्ड वॉर, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1986, पृष्ठ 92*

अवध में खाद्य तथा पेय पदार्थ (1722–1856 ई.)

डॉ. चित्रगुप्त
मोंठ, झांसी (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अवध में नवाबों और बादशाहों का समय (1722–1856ई.) खान–पान के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण समय था। नवाबों और बादशाहों के लिए स्वादिष्ट भोजन के लिए मुक्त हस्त से खर्च करना साधारण बात थी। इस काल में रसाई घर और दस्तरख्वान के लिए नित नये प्रयोग किये गये। नवाबों के रसाईयों आदि के वेतन में ही सात लाख बीस हजार रुपया वार्षिक खर्च हो जाता था। नवाबों की देखा–देखी उलमा और शुरफा वर्ग भी रसाई पर हजारों रुपया खर्च कर देते थे। उत्सव और शादी–ब्याह के मौके पर ये खर्च और अधिक बढ़ जाता था। खिचड़ी, चावल, रोटी, कबाब, सालन, शीरीनी, मिठाई इत्यादि की अनेक किस्में उन दिनों लोकप्रिय थीं। जनसाधारण का भोजन भी उन दिनों स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होता था। शर्बत भी अत्यंत लोकप्रिय था। सिकंजबीन, सिरका व शहद तथा नींबू के रस को शक्कर में मिलाकर बनाई जाती थी। इसके अलावा भोजन में शाकाहारी ओर मांसाहारी दोनों प्रकार के पकवानों की किस्में जनसाधारण में प्रचलित थीं।

संकेताक्षर : *मुजाफर, मुतन्जन, शीरमाल, नूरानी, शीर बुरंज, कोरमा, शामी कबाब, आबशीरा, दरबहिश्त, उमरा, शुरफा, हरीरा, सरोले, बुरादा, उमरा, शुरफा, गजक, शकरपारे, साबोनी, इन्दरसा, हलवा सोहन।*

अध्ययनकाल के अवध में लोगों की अनेक रुचियों में एक थी–स्वादिष्ट भोजन प्रियता। इसके लिये वे मुक्त हस्त से धन ख़र्च करने में भी संकोच नही करते थे। साधारणतः एक मुसलमान अमीर आधा सेर पुलाव बनवाने में बीस रूपये व्यय करता था।[1] अवध के नवाब और बादशाह अपने बावर्चीखाने के रख–रखाव पर, पानी की तरह धन बहाया करते थे।[2] नवाबी शासनकाल में अवध में रसोईघर और दस्तरख़्वान के संबंध में नित नए प्रयोग किए गये। दूर–दूर से मेधावी बावर्ची यहाँ एकत्र होते थे तथा नवीन विधियों के आविष्कार से अपनी कला का प्रमाण दिया करते थे।[3]

नवाब वज़ीर शुजा–उद्–दौला के दस्तरख़्वान पर अनेक प्रकार के भोजन परोसे जाते थे। शुजा–उद्–दौला के काल में भोजन के समय दस्तरख़्वान पर छः विभिन्न रसोइयों से खाना आता था। इसमें नवाब वज़ीर का रसोईघर मिर्ज़ा हसन रज़ा ख़ाँ के अधीन था। मौलवी फ़ज़ल अज़ीम स्वयं ख़ाना लेकर नवाब वज़ीर की ड्योढ़ी पर जाता था। इस पर दो हज़ार रुपया प्रतिदिन ख़र्च होता था। इस प्रकार रसोइयों तथा अन्य नौकरों के वेतन के अतिरिक्त साठ हज़ार रुपया माहवार अर्थात सात लाख बीस हज़ार रुपया वार्षिक ख़र्च हो जाता था। दूसरा छोटा रसोईघर मिर्ज़ा हसन अली के अधीन था, जिस पर एक लाख आठ हज़ार रुपया वार्षिक खर्च होता था। तीसरा रसोईघर 'बहूबेगम' के महल में 'बहार अली ख़ाँ' ख्वाज़ासरा के अधीन था। चौथा शुजा–उद्–दौला की माता 'नवाब बेगम' के यहाँ का रसोईघर था। पाँचवां रसोईघर बहूबेगम के भाई 'मिर्ज़ा अली ख़ाँ' का और छठा 'नवाब सालारजंग' का था।[4] 'मीर हसन' की मसनवी 'ख्वान–ए–नेमत' में नवाब आसफ़–उद्–दौला के दस्तरख्वान पर चुने हुए स्वादिष्ट व्यंजनों का वर्णन किया गया है–पुलाव, बिरयानी, जर्दा, मुज़फर, दो प्याजा, कलिया, क़ोरमा, तली मछली, दरियाई कबाब, हुसैनी कबाब, पनीर, कबूली, हलीम, तुनकी, नमश, तरकारी के दुलमे, मसालादार तोहफ़े बड़े, बाक़रखानी, फीरनी, खीर, हलवा, मिठाई इत्यादि।[5] 'मीर' ने लार्ड कार्नवालिस के स्वागत के उपलक्ष्य में नवाब आसफ़–उद्–दौला द्वारा दिये गये भोज का वर्णन विस्तारपूर्वक 'ज़िक्र–ए–मीर' में किया है। 'मीर' के अलावा ट्यूनिंग ने अपने यात्रा वृत्तान्त में नवाब

आसफ़-उद्-दौला द्वारा दी गयी दावत में विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का वर्णन किया है।[6] अवध में लगभग सभी वर्गों के लिये विशिष्ट भोजन निम्न प्रकार से थे-

पुलाव

इस काल में पुलाव के अनेक प्रकार प्रचलित थे।[7] 'यखनी' या खारा, चावल व मांस के शोरबे को कहा जाता था, जिसे मिश्रित रूप से बन्द बर्तन में देर तक उबालकर पकाया जाता था। 'क़ोरमा'[8] को साधारणतः पुलाव के जैसा ही बनाया जाता था। इसमें मांस के टुकड़े बहुत ही छोटे-छोटे काटकर डाले जाते थे। 'मीठा पुलाव', चावल, शक्कर, घी, मसालों तथा सौंफ से बनाया जाता था। 'मुज़फ़्फ़र शोला', चावल, केसर दूध, गुलाब जल व शक्कर मिलाकर बनता था तथा यह बहुत पतला व ठंडा होता था। 'मुज़फ़्फ़र पुलाव' शहसरंगा भी ऐसा ही लेकिन थोड़ा कम पतला बनाया जाता था। 'तड़ी पुलाव', चावल, मांस, हल्दी व घी से बनता था। 'सोया पुलाव' को बनाने के लिए मधुरिका बीज और डाला जाता था। मच्छी और 'माही पुलाव' में मछली का प्रयोग किया जाता था। 'इमली पुलाव' में इमली का प्रयोग किया जाता था। 'दमपुख्त पुलाव' में जब पुलाव बनकर लगभग तैयार हो जाता था, तो उसमें घी डाल दिया जाता था। 'ज़रदा पुलाव' में केसर मिलाई जाती थी। 'कूकू पुलाव', तले हुये अण्डों से बनाया जाता था। 'दोगोश्ता', चावल, मांस, घी व अत्यधिक गर्म मसालों से बनाया जाता था। 'पुलाव-ए-मग्ज़ियात' में बादाम, पिस्ता या अन्य मेवे डाले जाते थे। 'बिरयानी', क़ोरमा पुलाव के जैसी बनती थी। इसमें मज्जा, अधिक मात्रा में मसाले, नींबू, दूध व मलाई भी मिलाई जाती थी।[9] मुतंजन पुलाव, लबनी पुलाव, जामुन पुलाव, तीतर पुलाव, बटेर पुलाव, कोफ़्ता पुलाव[10] इत्यादि पुलाव भी अवध में प्रचलित थे। इनके अलावा गुलजार पुलाव, नूर पुलाव, मोती पुलाव, चम्बेली पुलाव,[11] अनारदाना पुलाव[12] तथा मौला पुलाव[13] भी लोकप्रिय थे।

नवाब सआदत अली ख़ाँ के समय में एक बाकमाल बावर्ची चावलों की गुलत्थी पकाता था, जो नवाब को बहुत पसन्द थी।[14] ग़ाज़ी-उद्-दीन हैदर के समय नवाब हुसैन अली ख़ाँ नामक रईस पुलाव का अत्यन्त भौक़ीन था, जो 'चावल वाले' उपनाम से प्रसिद्ध था।[15] उसके दस्तरख्वान पर असाधारण अद्वितीय स्वाद वाले अनेक प्रकार के पुलाव परोसे जाते थे। मुग़ल बादशाह मुहम्मद अली शाह के पुत्र अज़ीमुश्शान ने एक भोज दिया था, जिसमें नमकीन व मीठे कुल मिलाकर सत्तर प्रकार के चावल थे। इस भोज में वाजिद अली शाह भी शामिल हुआ था।[16]

खिचड़ी

सामान्य खिचड़ी[17] सफेद रंग की होती थी। इसे पीला बनाने के लिये हल्दी मिलायी जाती थी। 'उबली खिचड़ी', चावल, दाल, गर्म व ठण्डे मसाले तथा नमक और मिर्च से बनाई जाती थी। 'कश खिचड़ी', भी इसी प्रकार बनती थी, इसमें मांस भी मिलाया जाता था। इनके अलावा बघारी या क़बूली खिचड़ी, भुनी खिचड़ी, खिचड़ा, शोला और शरतावा खिचड़ी भी प्रचलित थीं। 'शोला', मांस मिली खिचड़ी होती थी और 'शरतावा' मांस रहित होती थी, लेकिन बहुत पतली बनाई जाती थी।[18]

चावल

चावलों को अनेकों प्रकार से पकाया जाता था। 'खुश्का'[19] या भात उबले हुये चावल होते थे। 'उबाला', अध उबले तथा धूप में सुखाए चावल होते थे। इनको इनकी विशिष्ट खुशबू और स्वाद के कारण पसन्द किया जाता था। 'तुराना' या बासी खाना, वे उबले चावल होते थे, जिन्हें रात भर ठण्डे जल में रखा जाता था तथा दूसरे दिन प्रातःकाल जब ये खट्टे हो जाते थे, तब प्रयोग में लाए जाते थे। चलाऊ या 'बघार खुश्का', घी में छौंके हुए चावल होते थे। अधिक उबले हुए चावलों का भरता गुलत्थी कहलाता था, जिसमें घी मिलाया जाता था। ये चावल सरलता से पचने वाले होते थे।[20]

रोटी

अवध में मुख्य दो प्रकार की रोटी प्रचलित थी-खमीर युक्त और खमीर रहित। भारत में खमीरी रोटी का प्रचलन मुसलमानों द्वारा हुआ। तलने के लिए घी या मक्खन का प्रयोग मुसलमानों ने हिन्दुओं से ग्रहण किया। 'नान'[21] या रोटी मयतलन, खमीर युक्त तथा तन्दूर में पकी रोटी होती थी। 'बाक़िरखानी', नान से केवल आकार में भिन्न थी। 'गावदीदा', आकार में वृत्ताकार होती थी तथा गावज़बान, लम्बे आकार की होती थी। 'शीरमाल',[22] दूध में गूँथ कर बनायी गयी मीठी रोटी होती थी। गिरदा या नान दाखिला, कुर्स, फुल्का, खमीर फुल्का या नान पाव, खमीरी रोटी इत्यादि खमीर युक्त रोटियाँ थीं।

हिन्दुओं में खमीर रहित रोटी अधिक प्रचलित थी। मुसलमान भी इन्हें बड़े चाव से खाते थे। आमतौर पर

'रोटी', मिट्टी या लोहे के तवे पर पकी गेहूँ के आटे की होती थी। चपाती को रोटी की अपेक्षा छोटा और पतला बनाया जाता था। मीठी पूड़ी, घी में तली मीठी होती थी। फीकी पूड़ी को साधारण रूप से तला जाता था। 'खजूरी', एक प्रकार की मीठी रोटी होती थी, जो खजूर के आकार की होती थी।[23] 'सतपरती रोटी', कई परतों में बनी एक मीठी तली रोटी होती थी। 'फैनी' आकार में छोटी व शक्कर रहित तथा कई परतों वाली रोटी होती थी। परांठा,[24] चपाती के जैसा होता था, लेकिन यह कुछ अधिक मोटा होता था। बादशाह ग़ाज़ी-उद्-दीन हैदर को परांठे बहुत पसन्द थे[25] इन रोटियों के अलावा मट्कुला, बलदार, सुहाली, पूरी, लौंग चीरा या बेसन की रोटी, मथी रोटी का क़ीमाक़,[26] चलपक, चीला, खारा या मीठी रोटी, अण्डों की रोटी, गुलगुला, दहीबड़ा या माशदही, सीख रोटी, तथा रोग़नदार इत्यादि अवध में प्रचलित थीं।

कबाब

अध्ययनकाल के अवध में शासक वर्ग और भुरफ़ा तथा जनसाधारण में कबाब[27] बेहद चाव से खाया जाता था। 'कबाब', मांस को बारीक काटकर धूप में सुखाकर दहकते हुए कोयलों पर भूनकर या घी में तलकर बनाया जाता था। 'सींख कबाब', कटे हुए मांस खण्डों में समस्त गर्म व भीतल मसाले, सुरभित द्रव्य, हरा अदरक तथा नींबू का रस और अधिक मात्रा में काली मिर्च मिलाकर गोलियाँ बनाकर आग पर सेंका जाता था। इन गोलियों को मांस भालाका में फँसा कर रखा जाता था, जिससे कि गोलियाँ बिखर न जायें। इनके अलावा कोफ़्ता कबाब, हुसैनी कबाब, शामी कबाब, कलेजी का कबाब, लड्डू कबाब, पत्थर का कबाब, मच्छी का कबाब तथा क़लिया[28] इत्यादि कबाब जनमानस में लोकप्रिय थे।

सालन

सालन या कढ़ी अनेक प्रकार की बनायी जाती थी जैसे कोरमा, दो प्याजा, नर्गिस, बादामी, शब्देग, दालचा, कलेजा, मीठा गोश्त, अंतड़ी, कीमा, कपूरे आदि के सालन।[29] इनके अलावा अनेक प्रकार की तरकारियों का प्रयोग भी सालन बनाने में होता था।[30]

शीरीनी

अवध में अनेक प्रकार की शीरीनी प्रचलित थी। शीर बिरिंज या खीर, जल में उबले हुए चावलों को पुनः दूध में डालकर शक्कर, मेवा तथा गिरी आदि मिलाकर बनती थी।[31] मलाई, दूध को गाढ़ा उबालकर बनायी जाती थी।[32] हलवा, सूजी को घी में भूनकर और उसमें चाशनी आदि को मिलाकर पकाया जाता था।[33] फ़ालूदा, हलवे के जैसा तैयार होता था, लेकिन इसमें सूजी दूध में उबाली जाती थी। मीठी धूली, भी हलवे के समान बनायी जाती थी, परन्तु इसमें दूध मिलाते थे।[34] शीरा, शक्कर की चाशनी होता था, जिसमें गेहूँ का आटा, दूध, घी, गरी बुरादा मिलाकर रोटी डुबा कर खाया जाता था।[35] शर्बत, जल में शक्कर या गुलाबजल में मिश्री मिलाकर बनाया जाता था। इसमें नींबू का रस मिलाने पर यह 'आबशीरा' कहलाता था।[36] सिकन्जबीन, सिरका व शहद तथा नींबू के रस को शक्कर में मिलाकर बनाई जाती थी।[37] मलीदा, ठण्डी रोटी को चूरन के रूप से हथेलियों में मसलकर घी, मेवा-इलाइची आदि मिलाकर बनाया जाता था।[38] इनके अतिरिक्त हरीरा[39] सरोले[40] सेवई[41] आदि का भी अवध में प्रचलन था।

मिठाई

भारत में प्राचीन काल से मिठाई के कई प्रकार प्रचलित थे और कुछ प्रकार मुसलमानों के आगमन के बाद प्रचलित हुए। अध्ययनकाल के अवध में मिठाइयों में-बरफ़ी, बालूशाही, खुरमा, नुक्तियाँ, गुलाब जामुन, दरबहिश्त, जलेबी इत्यादि थीं।[42] इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की मिठाइयाँ-लड्डू, पेड़ा, ख़ाजा, इमरती, हलवा सोहन, इन्दरसा, गज़क, मीठे सेब, शकरपारे, बताशा, इलायचीदाना, पट्टी, साबोनी, पपड़ी तथा रेवड़ियाँ इत्यादि थीं।[43]

अध्ययनकाल के अवध के प्रमुख नगरों में मिठाइयों की बड़ी-बड़ी दुकानें हुआ करती थीं। मीर हसन 'देहलवी' ने 'मसनवियात-ए-मीर हसन' में फ़ैज़ाबाद की मिठाइयों की दुकानों का वर्णन किया है।[44] विवाह समारोह तथा विशेश मौकों पर मिठाई पर विशेश ध्यान दिया जाता था। लखनऊ में मिठाइयों की अनेक दुकानें थीं। लखनऊ में जलेबियाँ और बालूशाहियाँ स्वादिष्ट बनती थीं।[45]

पूर्वी खानों का यह विशिष्ट रंग यद्यपि बादशाह वाजिद अली शाह के काल तक प्रचलित रहा, लेकिन नवाब वज़ीर सआदत अली खाँ के समय से ही अंग्रेज़ी भोजन का प्रयोग होने लगा था। भोज्य पदार्थो में कबाब और पुलाव इत्यादि के अलावा कहवा, चाय, मक्खन, अण्डा इत्यादि भोज्य पदार्थों का भी प्रचलन नवाबी भोजन में प्रारम्भ हो गया था।

अवध में उमरा के खाने के भौक़ ने रसोइयों को नित नये प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। हसन रज़ा ख़ाँ सरफराज–उद्–दौला के अधीन नवाबी रसोईघर में भोजन बनाने की नई–नई विधियों का जन्म हुआ।[46] नवाब वज़ीर आसफ़–उद्–दौला के शासन काल में उड़द पकाने वाले एक बावर्ची को पाँच सौ रुपया मासिक वेतन दिया जाता था।[47] इसी तरह नवाब सालारजंग के भी एक बावर्ची को बारह सौ रुपया मासिक वेतन मिलता था।[48] साधारणतया उमरा और भुरफ़ा के भोजन में पुलाव, मुज़ाफ़र, मुतन्जन, शीरमाल, सफेद, नूरानी, शीर बुरन्ज, क़ोरमा, शामी कबाब, मुरब्बा, चटनी, अचार, अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तथा अरहर और उड़द की दाल शामिल होती थी।[49] अध्ययनकाल के अवध के शासक और उमरा के भोजन का विस्तृत वर्णन अब्दुल हलीम 'शरर' के अलावा मिर्ज़ा 'क़तील' की रचनाओं में भी मिलता है।[50]

अवध के जनसाधारण का भोजन साधारण लेकिन स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक होता था। जनसाधारण तथा निम्न वर्ग के लोगों के भोजन में दाल–रोटी प्रमुख रूप से होती थी। यहाँ के लोग चावल का इस्तेमाल भी बहुतायत में करते थे, जिससे उनके घर में घी, दूध, दही की कमी नहीं रहती थी। हिन्दू लोग मांस के स्थान पर पूरियाँ, कचौरियाँ, विभिन्न प्रकार की तरकारियाँ और दही–बड़े पसन्द करते थे। 'हदीक़त–उल–अक़ालीम' के लेखक ने प्रतापगढ़ के तालुक़ेदार चित्रधारी सिंह की पत्नी द्वारा दी गई दावत का वर्णन किया है। इस दावत में पूरी, कचौरियाँ, रोटी, कबाब, क़ोरमा, मुज़ाफ़र, पुलाव अनेक प्रकार की मिठाइयाँ और तरकारियाँ, शीरमाल, बाक़रखानी, दहे बड़े, मुरब्बे और अचार इत्यादि व्यंजन थे।[51]

अध्ययनकाल में जनसाधारण त्योहारों, विवाह या विशेश अवसरों पर विशेश भोजन का प्रबंध करते थे। इस अवसर पर प्रत्येक घर में स्वादिष्ट व्यंजन जैसे पुलाव, सालन, परांठा, शीरमाल, पूरी, कचौड़ी, जर्दा तथा मिठाई इत्यादि बनता था और साधारण दिनों में वे सादा भोजन बनवाते थे।

अध्ययनकाल के अवध के बाज़ारों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही मिठाई बनाने वाले 'हलवाई' थे। बनारस, अयोध्या इत्यादि नगरों के हिन्दू हलवाइयों की मिठाइयाँ पूरे अवध में प्रसिद्ध थीं। नवाब आसफ़–उद्–दौला को बालाई बहुत पसंद थी, जो दूध की मलाई को कई तहों में जमाकर तैयार की जाती थी। दावतों के लिए जो भोजन निश्चित कर दिए जाते थे, उसका नाम 'तोरा' होता था। इस तोरे का वर्णन 'इंशा' की रचनाओं में भी मिलता है।[52] इसके अन्तर्गत भोज्य पदार्थ थे–पुलाव, मुज़ाफ़र, मुतन्जन, शीरमाल, सफ़ेदा, बूरानी, शीर बुरन्ज, क़ोरमा, तली हुई अर्वियाँ माँस के साथ, शामी कबाब, अचार, चटनी।

अवध में भोजन पकाने वालों के तीन वर्ग थे। पहला वर्ग 'देगशोर' कहलाता था, जिसका काम देगों को धोना और रसोइयों के अधीन मज़दूरी करना था। दूसरे 'बावर्ची' थे, जो खाना पकाते और बड़ी–बड़ी देग तैयार करके उतारते थे। तीसरे 'रक़ाबदार' थे, जो पाक कला में निपुण होते थे और अधिकांश छोटी हाँडियाँ ही पकाते थे। अवध के प्रसिद्ध बावर्चियों और रक़ाबदारों में भोख हुसैन अली, अलीम अली, महमूद और पीर अली का नाम विशेश रूप से उल्लेखनीय है।[53] भाहजादा यहया अली ख़ाँ के यहाँ 'आलम अली' नामक बावर्ची 'मुसल्लम मछली' पकाने में प्रसिद्ध था और 'ममदू' नामक बावर्ची के 'निहारी' की प्रसिद्धि उमरा में भी थी। उसने ही शीरमाल बनाने की परम्परा प्रारम्भ की। 'पीर अली' अरहर की सुल्तानी दाल और मिठाई का अनार बनाने में प्रसिद्ध था। इसी प्रकार 'बाक़र बेग' विशेश प्रकार की रोटियाँ, हलवे और मुरब्बे बनाने में निपुण था।

भोजन के विविध प्रकारों के साथ ही लखनऊ में 'आबदार खाने'[54] का भी विकास हुआ। कोरे घड़ों में पानी ठण्डा करने के लिये भरकर रखा जाता था। 'आबख़ोरे' का पानी भी पीने में भीतलता देता था। कभी–कभी झझरियाँ, सुराहियाँ या घड़ों के मुंह पर कपड़ा बाँध कर पेड़ की डाल पर लटका दिया जाता था, जिससे कि पानी ठण्डा हो जाये और वर्शा ऋतु में तो घड़े भरकर कुऐं में लटका दिये जाते थे। इसके अलावा पानी ठण्डा करने के लिए जस्ते की सुराहियों को नादों में भोरा और पानी डालकर उसमें फिराया जाता था। जिसे 'सुराहियों का झरना'[55] कहते थे। इससे बर्फ जैसा ठण्डा पानी हो जाता था। नवाब आसफ़–उद्–दौला के समय तक अवध में बर्फ बनाई जाने लगी थी, लेकिन ये निम्न वर्ग की पहुँच से बाहर थी। नवाब आसफ़–उद्–दौला के काल में बर्फ फूल और गुलाब पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद निम्न वर्ग इसको सेवन नहीं कर पाता था क्योंकि यह अत्यधिक महँगी होती थी।

लखनऊ में अपना आबदारखाना रखने का प्रचलन बढ़

गया था। शासक या उमरा जिस दावत में जाते थे, अपना आबदारखाना साथ रखते थे। 'मिर्ज़ा हैदर बेग' जिस दावत में जाते उनका आबदारखाना भी साथ जाता था।[56]

अवध का सामाजिक जीवन खान-पान और वेशभूषा में दिखावा और आडम्बर प्रधान हो गया था। उमरा और भ्रुरफ़ा अपने खान-पान के लिए अत्यधिक फ़ज़ूलख़र्ची करते थे। जिससे समाज में भ्रारीरिक श्रम कम हो गया था और विलासिता बढ़ गयी थी। साधारण व्यक्ति बहुमूल्य एवं स्वादिष्ट भोजन बनवाने की क्षमता नहीं रखते थे। उन्हें साधारण भोजन से ही संतुश्ट रहना पड़ता था।

हम ग़रीबों की दाल रोटी है
गाह पतली है गाह मोटी है[57]

इसी प्रकार ग्रामीण समुदाय तथा निम्न वर्गो का सामान्य भोजन दाल रोटी ही था, जो पर्याप्त समझा जाता था क्योंकि इससे अच्छे भोजन का ख़र्च वे नहीं उठा सकते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *इंशा : दरिया-ए-लताफ़त,(अब्दुल हक द्वारा संपादित, दिल्ली, 1935), पृ. 111.*
2. *अब्दुल हमीम 'शरर' : पुराना लखनऊ (गुजिश्ता लखनऊ, हिनदी अनुवाद-नूर अली अब्बासी, नई दिल्ली, 1971), पृ. 184.*
3. *वही, पृ. 185.*
4. *आबिद रजा बेदार : बकाए जमान नबाव आसफ-उद्-दौला, पृ. 7-8.*
5. *अब्दुल बारी आसी : मजमुआ मसनवियात-ए-मीर हसन (लखनऊ,1945), पृ. 148, 151; डा. फजलुल हक : मीर हसन हयात और अदबी खिदमात (दिल्ली, 1973), पृ. 203-205; लक्ष्मीनारायण 'शफीक : रूकआत-ए-लक्ष्मीनारायण (लखनऊ, 1882), पृ. 47; आबिद रज़ा बेदार : पूर्वोद्धृत, पृ. 49.*
6. *ट्यूनिंग थामस :ट्रेवल्स इन इण्डिया ए हंड्रेड ईयर्स एगो-1794 (लंदन, 1893), पृ. 67-68.*
7. *इंशा : दरिया-ए-लताफत, पृ. 238, 251; मुहम्मद हुसैन आजाद : आब-ए-हयात (लाहौर, 1913), पृ. 348.*
8. *मुहम्मद हुसैन आजाद : पूर्वोद्धृत, पृ. 348.*
9. *जाफर शरीफ : कानून-ए-इस्लाम, अनु. जी.ए. हर्कलोट्स (लंदन,1832), परिशिष्ट-5, पृ. 29, 30.*
10. *वही, पृ. 30.*
11. *'शरर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 189.*
12. *वही, पृ. 190.*
13. *जाफर शरीफ, पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-5, पृ. 29.*
14. *'शरर' पूर्वोद्धृत, पृ. 189.*
15. *वही.*
16. *वही.*
17. *मुहम्मद हुसैन 'आजाद' : पूर्वोद्धृत, पृ. 478.*
18. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-5 पृ. 31, 32.*
19. *मुहम्मद हुसैन 'आजाद' : पूर्वोद्धृत, पृ. 348.*
20. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-5, पृ. 32.*
21. *रज़ब अली बेग 'सरूर' : फसाना-ए-अजायब (लखनऊ,1963), पृ. 5, 6.*
22. *इंशा' : दरिया-ए-लताफत, पृ. 252; रज़ब अली सरूर : वही; 'शरर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 195 के अनुसार शीरमाल का आविष्कार लखनऊ में नसीर-उद्-दीन के समय में मुहम्मदू नामक एक बावर्ची ने किया था।*
23. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, पृ. 33 .*
24. *'इंशा' : दरिया-ए-लताफत, पृ. 26; शरर : पूर्वोद्धृत, पृ. 191 .*
25. *'शरर' : वही .*
26. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, पृ. 33, 34 .*
27. *रज़ब अली बेग 'सरूर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 5-6; मुहम्मद हुसैन आजाद : पूर्वोद्धृत, पृ. 348 .*
28. *'इंशा' : पूर्वोद्धृत, पृ. 16 .*
29. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, पृ. 35-37 .*
30. *वही, पृ. 37-40 .*
31. *वही, पृ. 40; 'शरर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 199 .*
32. *नवाब आसफ-उद्-दौला को बेहद पसन्द थी, उसने इसका नाम बालाई रख दिया था । श्रीमती मीर हसन अली : आब्जरवेशन्स ऑन दि मुसलमांस ऑव इण्डिया (लंदन,1832), भाग-2, पृ. 64-65*
33. *जाफर शरीफ : पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-5, पृ. 40 .*
34. *वही, 42 .*
35. *वही, 41 .*
36. *वही .*

37. वही .

38. वही .

39. वही .

40. वही, पृ. 42 .

41. वही .

42. भारर : पृ. 201, 202 .

43. जाफर शरीफ : परिशिष्ट-5, पृ. 42; इंशा : दरिया-ए-लताफत, पृ. 238-254; रजब अली बेग सरूर : पूर्वोद्धृत, पृ. 5 .

44. मीर हसन देहलवी : मसनवियात-ए-मीरहसन देहलवी (लखनऊ,1945) पृ. 150-151 .

45. भारर : पूर्वोद्धृत, पृ. 189.

46. शरर : पूर्वोद्धृत, पृ. 186 के अनुसार मिर्ज़ा हसन रज़ा ख़ाँ नवाबी बावर्ची खाने का प्रबंधक था।

47. भारर : पूर्वोद्धृत, पृ. 189 .

48. वही, पृ. 186 .

49. मिर्ज़ा मुहम्मद हसन 'क़तील' : हिफ़्त-ए-तमाशा (लखनऊ,1920) उर्दू अनु0 मुहम्मद उमर मकतबा बुरहान(दिल्ली,1867) पृ. 33, 93; श्रीमती मीर हसन अली : पूर्वोद्धृत, पृ. 174 .

50. मिर्ज़ा मुहम्मद हसन 'क़तील' : रूक़आत-ए-मिर्ज़ा क़तील (कानपुर, 1881), पृ. 28, 64-65, 87-93; भारर : पूर्वोद्धृत, पृ. 183-206; मिर्ज़ा रजब अली बेग 'सरूर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 103; ई.एस. हरकॉर्ट एण्ड फाखिर हुसैन : लखनऊ : द लास्ट फैज ऑफ एन ओरिएन्टल कल्चर (लन्दन, 1975), पृ. 155-163 .

51. मुर्तजा हुसैन : हदीकत-उल-अकालीम (लखनऊ,1879) पृ. 673 .

52. मिर्ज़ा मुहम्मद असकरी : कलाम-ए-इंशा (इलाहाबाद,1952), पृ. 267 .

53. इ.एस. हरकॉर्ट एण्ड फ़ाखिर हुसैन : लखनऊ द लास्ट फेज ऑव ऐन ओरियण्टल कल्चर (लंदन,1975), पृ. 157, 161,-162 .

54. 'शरर' : पूर्वोद्धृत, पृ. 204, के अनुसार तत्कालीन युग में नवाब वजीरो तथा विशिष्ट व्यक्तियों के पीने के पानी की व्यवस्था 'आबदार खाना' कहलाता था।

55. वही .

56. वही, पृ. 206 .

57. मिर्ज़ा मुहम्मद रफी 'सौदा' : कुल्लियात-ए-सौदा (लखनऊ,1916), पृ. 198 .

नई शिक्षा नीति 2020: विंहगम परिदृश्य

डॉ. शालिनी चतुर्वेदी
सह आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

शिक्षा एक राष्ट्र में प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। एक शिक्षित नागरिक के पास न केवल बेहतर जीवन और अवसर उपलब्ध रहते हैं अपितु वह राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम होता है। प्रत्येक राष्ट्र का यह दायित्व है कि वह अपने नागरिकों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु एक ऐसी शिक्षा नीति का निर्माण करे जो शिक्षित नागरिक के निर्माण के साथ-साथ मानवीय मूल्यों से युक्त श्रेष्ठ नागरिक के निर्माण में सहायक हो, निसन्देह सार्वभौमिक और उच्चस्तरीय शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का विकास किया जा सकता है, जो व्यक्ति, समाज, देश और विश्व के उत्थान व विकास में सहायक होती है। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये भारतीय परम्परा व सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित किसी भी सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये 29 जुलाई 2020 को नई शिक्षा नीति 2020 घोषित की गई तथा विज्ञान, तकनीकी व प्रौद्योगिकी क्षेत्र में हो रहे तीव्र परिवर्तनों के अनुरूप इक्कीसवीं सदी की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुये नई शिक्षा नीति 2020 का खाका खींचा गया। प्रस्तुत शोध पत्र में नई शिक्षा नीति 2020 के विविध आयामों यथा उद्देश्य, अनुशंसाओं, चुनौतियों व सम्भावनाओं के विंहगम परिदृश्य को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *ग्लोबल स्टेण्डर्ड, गुणात्मकता, जवाबदेहिता, समग्र विकास, व्यावसायिक शिक्षा, मानविकी, अनुभावात्मक शिक्षा, पारदर्शिता, समबद्धता, सार्वजनिकीकरण, स्वायत्तता।*

मानव इतिहास के आदिकाल से शिक्षा का विविध भांति विकास एवं प्रसार होता रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को अभिव्यक्ति देने व उसे समृद्ध करने, नवीन चुनौतियों का सामना करने के लिये समयानुसार विशिष्ट प्रणाली विकसित करता है। भारतीय संविधान के चतुर्थ भाग में उल्लिखित नीति निर्देशक तत्वों में कहा गया है कि प्राथमिक स्तर के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये 1948 में डॉ राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन करके भारत में शिक्षा प्रणाली को व्यवस्थित करने का कार्य आरम्भ किया गया। 1952 में लक्ष्मण स्वामी मुदलियार की अध्यक्षता में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा 1964 में दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर 1968 में शिक्षा नीति पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया गया, यह प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति थी जिसमें राष्ट्रीय विकास के प्रति वचनबद्ध, चरित्रवान तथा कार्यकुशल युवक व युवतियों को तैयार करने का लक्ष्य रखा गया। मई 1986 में दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के लिये 1990 में आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति तथा 1993 में प्रो. यशपाल समिति का गठन किया गया। गत वर्षों में पुनः शिक्षा पद्धति व व्यवस्था में सुधार की अपेक्षा की जा रही थी। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुये भारत सरकार ने 2017 में अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ. के कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में एक नौ सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया। भारत सरकार ने कमेटी द्वारा किये गये मसौदे को स्वीकार करते हुये आम नागरिकों से सुझाव आंमत्रित किए और लाखों शिक्षाविदों ने अपनी सहभागिता दिखाते हुये अनेक सुझाव प्रदान किए। कस्तूरीरंगन कमेटी की अनुशंसाऐं एवं प्राप्त सुझावों के आधार पर

29 जुलाई 2020 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की, आज देश में लगभग 1000 विश्वविद्यालय है, 45 हजार कॉलेज है, लाखों विद्यालय है जिनमें लगभग 01 करोड़ शिक्षक तथा 33 करोड़ विद्यार्थी अध्ययन- अध्यापन में व्यस्त हैं और इन सभी का शिक्षा नीति से प्रत्यक्ष सरोकार है।

नई शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्य

राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर आयोजित सम्मेलन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने कहा कि परिवर्तित समय के साथ एक नवीन विश्वव्यवस्था में ग्लोबल स्टेंडर्ड भी तय हो रहा है। इसलिए भारत की शिक्षण पद्धति व व्यवस्था में भी ग्लोबल स्टेण्डर्ड के अनुरूप परिवर्तन अति आवश्यक है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख उद्देश्य निम्न है।

- नई शिक्षा नीति का लक्ष्य 21वीं सदी के वर्तमान भारत का और भविष्य के भारत की नींव तैयार करना है।
- नवीन शिक्षा नीति ''क्या सोचना है'' के स्थान पर ''कैसे सोचना है'' पर केन्द्रित है।
- मौजूदा शिक्षा प्रणाली की चुनौतियों जैसे पहुंच, समानता, गुणात्मकता, वहन करने योग्य, जवाबदेहिता को लक्षित करना।
- मौजूदा परीक्षा प्रणाली में सुधार करना।
- शिक्षकों की प्रशिक्षण व्यवस्था में परिवर्तन व सुधार।
- शिक्षा में सरकारी निवेश को बढ़ाना।
- व्यावसायिक शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा पर विशेष बल देना।
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 का निरंतर व व्यापक मूल्यांकन।
- शिक्षा से संबंधित औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षण संस्थाओं का विकास व विस्तार।
- स्कूली शिक्षा का नवीन रूप में नियमितिकरण।
- उच्च शिक्षण संस्थानों का पुनर्गठन।
- उच्च शिक्षा में शोध व अनुसंधान को प्रोत्साहन।
- शिक्षा में गवर्नेंस व वित्त पोषण।
- व्यावसायिक शिक्षा पर विशेष बल।
- सूचना व संचार तकनीक के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षा अभियान।

नई शिक्षा नीति 2020 के मुख्य बिन्दु

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने देश में स्कूली और उच्च शिक्षा प्रणालियों में रूपांतरकारी सुधारों की महत्वता को दृष्टिकोण रखकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी। जिसके प्रमुख दृष्टिगण बिन्दु व अनुशंसाऐं निम्नांकित हैं:-

- नई नीति का उद्देश्य 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100: जी.ई.आर के साथ पूर्व-विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य प्राप्त करना।
- एन.ई.पी. 2020 स्कूल से दूर रह रहे 2 करोड़ बच्चों को फिर से मुख्य धारा में लाना।
- 12 साल की स्कूली शिक्षा और 3 साल की आंगनबाड़ी प्री स्कूलिंग के साथ नए 5+3+3+4 स्कूली पाठ्यक्रम लागू करना।
- पढ़ने-लिखने और गणना करने की बुनियादी योग्यता पर जोर, स्कूलों में शैक्षणिक धाराओं, पाठ्येतर गतिविधियों और व्यावसायिक शिक्षा के बीच विशेष अंतर नहीं रखना। इंटर्नशिप के साथ कक्षा 6 से कौशल विकास, व्यावसायिक शिक्षा शुरू करना।
- कम से कम 5 वीं कक्षा तक मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाई।
- समग्र विकास कार्ड के साथ मूल्यांकन प्रक्रिया में पूरी तरह सुधार, सीखने की प्रक्रिया में छात्रों की प्रगति पर पूरी नजर रखना। उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात (जी.ई.आर) को 2035 तक 50: तक बढ़ाया जाना, उच्च शिक्षा में 3.5 करोड़ नई सीटें जोड़ी जायेंगी।
- उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में विषयों की विविधता होगी।
- उपयुक्त प्रमाणीकरण के साथ पाठ्यक्रम के बीच नामांकन/विकास की अनुमति होगी।
- ट्रांसफर ऑफ क्रेडिट की सुविधा के लिये

एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट की स्थापना की जायेगी। जिससे अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

- उच्च शिक्षा के आसान मगर सख्त विनियमन, विभिन्न कार्यों के लिये चार अलग-अलग कामों पर एक नियामक होगा।
- चिकित्सा व कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिये एक एकल निकाय के रूप में भारत उच्च शिक्षा आयोग (हायर एजूकेशन कमीशन ऑफ इण्डिया-एच.ई.सी. आई) का गठन किया जायेगा।
- एच.ई.सी.आई के कार्यो के प्रभावी और प्रदर्शितापूर्ण निष्पादन के लिये चार संस्थानों/निकायों का निर्धारण किया गया है:-
  - विनियमन हेतु - राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद (एन.एच.ई.आर.सी.)
  - मानक निर्धारण - सामान्य शिक्षा परिषद (जी.ई.सी.)
  - वित्त पोषण - उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद (एच.ई.जी.सी.)
  - प्रत्यापन - राष्ट्रीय प्रत्यापन परिषद (एन.ए.सी.)
- देश में आईआईटी (IIT) और आई.आई.एम (IIM) के समकक्ष वैश्विक मानकों के बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय एम.ई.आर.यू. की स्थापना की जायेगी।
- महाविद्यालयों को 15 वर्षो में चरणबद्ध स्वायत्तता के साथ सम्बद्धता प्रणाली पूरी की जायेगी।
- एनईपी 2020 में जरूरत के हिसाब से प्रौद्योगिक के उपयोग पर जोर, राष्ट्रीय शिक्षा प्रौद्योगिकी मंच की स्थापना की जायेगी।
- एनईपी 2020 में जेंडर इंक्लूजन फंड और वंचित इलाकों तथा समूहों के लिये विशेष शिक्षा क्षेत्र की स्थापना पर जोर।
- नई शिक्षा नीति स्कूली और उच्च शिक्षा दोनों में बहुभाषावाद को बढ़ावा देती है पाली, फारसी और प्राहत के लिये राष्ट्रीय संस्थान, भारतीय अनुवाद और व्याख्या संस्थान की स्थापना की जाएगी।
- नई शिक्षा नीति सतत विकास के लिये एजेंडा 2030 के अनुकूल है और इसका उद्देश्य 21वीं सदी की जरूरतों के अनुकूल स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र, लचीला बनाते हुये भारत को एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज और ज्ञान की वैश्विक महाशक्ति में बदलना और प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय समताओं को सामने लाना है।

स्कूल शिक्षा

2025 तक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण

- आंगनवाडियों को मजबूत बनाना।
- नए प्री स्कूल खोलना
- प्राथमिक शिक्षा के साथ लिंक
- मध्यान्न भोजन कार्यक्रम का विस्तार

2025 तक सभी के लिये मूलभूत साक्षरता/संख्यात्मकता

- भाषा/गणित-गुणवत्ता शिक्षण सामग्री पर ध्यान
- स्कूल की तैयारी मॉड्यूल
- नेशनल ट्यूटर कार्यक्रम
- उपचारात्मक निर्देशात्मक सहायता कार्यक्रम
- शिक्षक छात्र अनुपात 1:30 से कम हो।

नई पाठ्यक्रम व शैक्षणिक संरचना

फाउन्डेशन स्टेज

पहले तीन साल बच्चे आंगनबाड़ी में प्री स्कूलिंग शिक्षा लेंगे। फिर अगले दो साल कक्षा एक एवं दो में बच्चें स्कूल में पढ़ेंगे। इन पांच सालों की पढ़ाई के लिये एक नया पाठ्यक्रम तैयार किया जाएगा। मुख्यरूप से एक्टिविटी आधारित शिक्षण पर ध्यान रहेगा। इसमें तीन से आठ साल तक की आयु के बच्चे कवर होंगें। इस प्रकार पढ़ाई से पहले पाचं साल का चरण पूरा होगा।

प्री प्रेटरी स्टेज

इस चरण में कक्षा तीन से पांच तक की पढ़ाई होगी।

इस दौरान प्रयोगों के माध्यम से बच्चों को विज्ञान, गणित, कला आदि की पढ़ाई कराई जाएगी। आठ से ग्यारह साल तक उम्र के बच्चों को इसमें शामिल (कवर) किया जाएगा।

मिडिल स्टेज (मध्य चरण)

इसमें कक्षा छः से आठ तक की कक्षाओं की पढ़ाई होगी तथा ग्यारह से चौदह साल की उम्र के बच्चों को कवर किया जाएगा। इन कक्षाओं में विषय आधारित पाठ्यक्रम पढ़ाया जाएगा। कक्षा छः से ही कौशल विकास कोर्स भी शुरू किए जायेंगे। मध्य चरण में विज्ञान, गणित, कला, सामाजिक विज्ञान और मानविकी में अनुभावात्मक शिक्षा।

सैकेण्डरी स्टेज (माध्यमिक चरण)

कक्षा नौ से बारह (9–12) की पढ़ाई दो चरणों में होगी जिसमें विषयों का गहन अध्ययन कराया जाएगा। विषयों को चुनने की आजादी होगी। माध्यमिक चरण मुख्य रूप से बहु–विषयक अध्ययन, अधिक महत्वपूर्ण सोच, लचीलापन और विषयों के छात्र की पसन्द पर आधारित है।

ग्रेजुऐशन डिग्री समेत उच्च शिक्षा स्तर में बड़े बदलाव

शिक्षा नीति में विद्यालयी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक कई बड़े बदलाव किए गये है। उच्च शिक्षा के लिये भी अब सिर्फ एक नियामक होगा। पढ़ाई बीच में छूटने पर पहले की पढ़ाई व्यर्थ नहीं होगी। एक साल की पढ़ाई पूरी होने पर सर्टिफिकेट और दो साल की पढ़ाई होने पर डिप्लोमा दिया जायेगा।

ग्रेजूऐशन में 3–4 साल की डिग्री, मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम

नई शिक्षा नीति में मल्टीपल एंट्री और एग्जिट (बहु स्तरीय प्रवेश एवं निकासी) व्यवस्था को लागू किया गया है। आज की व्यवस्था में अगर चार साल इंजिनियरिंग पढ़ने या छः सेमेस्टर पढ़ने के बाद किसी कारणवश आगे नहीं पढ़ पाते तो कोई विकल्प नहीं था, परन्तु मल्टीपल एंट्री और एग्जिट सिस्टम में एक साल के बाद सर्टिफिकेट, दो साल के बाद डिप्लोमा और 3–4 साल के बाद डिग्री मिल जाएगी।

3 साल की डिग्री उन छात्रों के लिये है जिन्हें हायर एजूकेशन नहीं लेना है और शोध में नहीं जाना है। वहीं शोध में जाने वाले छात्रों को 4 साल की डिग्री करनी होगी। 4 साल की डिग्री करने वाले विद्यार्थी एक साल बाद (M.A) एम.ए कर सकेंगे। पांच साल का संयुक्त ग्रेजूएट–मास्टर कोर्स लाया जाएगा।

बी.एड 4 साल का होगा। 4 वर्षीय बी.एड डिग्री 2030 से शिक्षक बनने के न्यूनतम योग्यता होगी। नीति के अनुसार पेशेवर मानकों की समीक्षा एवं संशोधन 2030 में होगा और इसके बाद प्रत्येक 10 वर्ष में होगा। शिक्षकों को प्रभावकारी एवं पारदर्शी प्रक्रियाओं के जरिये भर्ती किया जाएगा। पदोन्नति योग्यता आधारित होगी। कई स्त्रोतों से समय–समय पर कार्य प्रदर्शन का आंकलन किया जाएगा।

नई नीति में एम.फिल निरस्त कर दिया गया है। देश की नई शिक्षा नीति लागू होने के बाद अब छात्रों को एम.फिल नहीं करना होगा। एम.फिल का कोर्स नई शिक्षा नीति में निरस्त कर दिया गया है। नई शिक्षा नीति लागू होने के बाद अब छात्र ग्रेजूएशन, पोस्ट ग्रेजूएशन और उसके बाद सीधे पीएच.डी (Ph.D) कर सकते है। नई शिक्षा नीति के तहत एम.फिल (M.phil) कोर्सेज को खत्म किया गया है।

यू.जी.सी., ए.आई.सी.टी.ई. का युग समाप्त हो गया है। उच्च शिक्षा में यू.जी.सी., ए.आई.सी.टी.ई., एनसीटीई की जगह एक नियामक होगा। कॉलेजों की स्वायत्ता (ग्रेडेड ऑटोनॉमी) देकर 15 वर्ष में विश्वविद्यालयों से संबंद्धता की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया जाएगा।

कॉलेजों को कॉमन एग्जाम का ऑफर

नई शिक्षा नीति के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिये कॉमन ऐट्रेंस एग्जाम का ऑफर दिया जाएगा। यह संस्थान के लिये अनिवार्य नहीं होगा। राष्ट्रीय परीक्षा ऐजेंसी यह परीक्षा कराएगी।

स्कूल, कॉलेजों की फीस पर नियंत्रण के लिये तंत्र बनेगा

उच्च शिक्षण संस्थानों को ऑनलाइन स्वतः घोषणा के आधार पर मंजूरी मिलेगीं अभी केन्द्रिय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालय और प्राईवेट विश्वविद्यालय के लिये अलग अलग नियम हैं। भविष्य में सभी नियम एक समान बनाये जायेंगे। फीस पर नियंत्रण का भी तंत्र तैयार किया जायेगा।

नेशनल रिसर्स फांउडेशन की तैयारी

सभी तरह के वैज्ञानिक एवं सामाजिक अनुसंधानों को नेशनल रिसर्च फांउडेशन बनाकर नियंत्रित किया

जाएगा। उच्च शिक्षण संस्थानों को बहु विषयक संस्थानों में बदला जाएगा। 2030 तक हर जिले में या उसके आस-पास एक उच्च शिक्षण संस्थान होगा। शिक्षा में तकनीक के इस्तेमाल पर जोर दिया गया है। इनमें ऑनलाइन शिक्षा का क्षेत्रीय भाषाओं में कंटेंट तैयार करना, वर्चुअल लेब, डिजिटल लाईब्रेरी, स्कूलों, शिक्षकों व छात्रों को डिजिट संस्थानों से लैस कराने जैसी योजनाऐं शामिल हैं। अभी हमारे यहाँ डीम्ड यूनिवर्सिटी, सेन्ट्रल युनिवर्सिटिज आदि के लिये अलग अलग नियम हैं। नई शिक्षा नीति के तहत सभी के लिये नियम समान होगा। विदेशी यूनिवर्सिटिज को भारत में कैंपस खोलने की अनुमति और स्कॉलरशिप पोर्टल का विस्तार होगा।

नई शिक्षा नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों को भारत में कैंपस खोलने की अनुमति मिलेगी। एक्सपर्टस का कहना है कि इससे भारत के स्टूडेंट्स विश्व के बेस्ट इंस्टीट्यूटस व यूनिवर्सिटिज में प्रवेश ले सकेंगे उन्हें विदेश नहीं जाना पड़ेगा।

इस प्रकार प्रथम दृष्टा देखने पर यह प्रतीत होता है कि सरकार उच्च शिक्षा के निजीकरण को बढ़ावा देने की ओर अग्रसर हैं। उच शिक्षा के क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय उच्च शिक्षण संस्थानों के लिये खोल दिया गया है।

नई शिक्षा नीति की चुनौतियाँ व सम्भावनाऐं :

- पाठ्यक्रमों में बहुविषय चयन का विकल्प नई प्रकार की जटिलताओं का जन्म देगा।
- वर्षो से चली आ रही समुचित रूप से स्थापित नियामकीय संस्थानों के स्थान पर एक नवीन नियामकीय संस्थान की स्थापना किस तरह उपयोगी होगी, इस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।
- बी.एड. पाठ्यक्रम को चार साल का बनाकर अध्यापक बनने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों को हतोत्साहित करेगा।
- सार्वजनिक निधि से पोषित सरकारी कॉलेजों की फंडिंग का पैटर्न बदलने से शिक्षा के सार्वजनिकीकरण के उद्देश्य की पूर्ति मुश्किल हो जायेगी।
- मल्टीपल एग्जिट सिस्टम से समाज के कमजोर तथा निर्धन वर्ग के बच्चों को नुकसान होने की आशंका है, वहीं शैक्षिक असमानता से आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं के बढ़ने का अंदेशा रहेगा।
- भारत शिक्षकः छात्र अनुपात को दृष्टिगत रखते हुये क्षेत्रीय भाषा में अध्ययन व अध्यापन एक चुनौती होगी। क्षेत्रीय भाषाओं में अध्ययन सामग्री, एकत्रित करना तथा योग्य शिक्षकों का चयन शिक्षण संस्थाओं के लिये एक चुनौती रहेगी।
- दो वर्ष पश्चात् ही अध्ययन करने पर डिप्लोमा की डिग्री मिल जायेगी तो विद्यार्थी मध्य में ही पढ़ाई छोड देंगे। यह शिक्षा नीति उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा को हतोत्साहित करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार सरकारी विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा में शैक्षणिक पाठ्यक्रम रहेगा और क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहित किया जाएगा पर वहीं दूसरी और निजी विद्यालय प्रारंभिक स्तर पर ही अंग्रेजी भाषा को प्रोत्साहित करेंगे, इससे समाज में अंग्रेजी भाषा व क्षेत्रीय भाषा की बौद्धिक स्तर पर असमानता स्थापित होगी।
- तीस वर्षों के पश्चात् निर्मित नई शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप शैक्षणिक संस्थानों की आधारभूत संरचना को नवीन अन्तर्राष्ट्रीयमानक के अनुरूप स्थापित करना एक चुनौती होगी।
- केन्द्र राज्य के संयुक्त प्रयासों से नवीन शिक्षा नीति 2020 को व्यावहारिक रूप में लागू किया जाएगा। नवीन शिक्षा नीति की व्यूह रचना को भलीभांति कार्यान्वित करने के उद्देश्य से केन्द्र व राज्य मंत्रालय के संयुक्त विचार विमर्श के साथ विषयवार समिति (GOI) जी.ओ.आई. निर्धारित करेगी। सभी आयामों पर केन्द्र व राज्य की साझा समझ व सहमति एक चुनौती होगी।
- अहम वित्तीय चुनौती होगी उन 7.3 करोड़ बच्चों को जरूरी बुनियादी ढांचा मुहैया करना जिन्हें प्राथमिक पूर्व शिक्षा देनी है यही बात उन 2.5 करोड़ अतिरिक्त छात्रों पर भी लागू होती है जो तब उच्च शिक्षा के लिये महाविद्यालयों में प्रवेश लेंगे जब आने वाले वर्षो में छात्रों की तादाद में इजाफा देखने को मिलेगा।
- नई शिक्षा नीति में किंडरगार्टन नामांकन का सार्वभौमिकरण करने, व्यावसायिक शिक्षण पर जोर देने और शिक्षकों के प्रशिक्षण का काम विश्वविद्यालयों में करने की बात शामिल है। जो

भविष्य के लिये बेहतरी लाऐंगी परन्तु यह सफर तय कैसे किया जाएगा क्योंकि स्कूलों तथा उच्च शिक्षा की हालत बहुत अच्छी नहीं है और मौजूदा शिक्षा की स्थिति भी बहुत बेहतर नहीं है।

- शिक्षा को राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त रखने का कोई प्रस्ताव नहीं रखा गया है। न ही स्वायत्तता ओर लचीलापन लाने की बातों में पर्याप्त विश्वसनीयता है। नवीन शिक्षा नीति में उन सुधारों का जिक्र नहीं है जो हमारे लोकतंत्र को बढ़ावा देने के लिये आवश्यक है और जो वह नवाचारी शिक्षा मुहैया करा सकते हैं जो देश के भविष्य के लिये आवश्यक है।
- भारत में लगभग एक तिहाई बच्चे प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले स्कूल छोड़ देते है। विडम्बना यह है कि अधिकांश बच्चे जो स्कूल जाने में असमर्थ है, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, धार्मिक अल्पसंख्यकों व व दिव्यांग समूहों से सबंधित हैं।
- शिक्षा क्षेत्र में सुधार के लिये सरकार द्वारा किए गये प्रयासों के विफल होने का खतरा है। इसका कारण शिक्षा नीति में बदलाव करते समय रोडमैप का पालन नहीं करना और नीतियों को बनाते समय सभी हित धारकों को ध्यान में नहीं रखना है।
- एक महत्वपूर्ण चुनौती बुनियादी ढांचे में कमी से संबंधित है। सामान्तया अधिकांश स्कूलों और विश्वविद्यालयों में बिजली, पानी, शौचालय, चारदीवारी, पुस्तकालय, कंप्यूटर आदि की कमी है। जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा प्रणाली प्रभावित होती है। विश्वबैंक की विश्व विकास रिपोर्ट 2018 दी लर्निंग टू रिपलाइन एजुकेशन प्रॉमिस के अनुसार भारत की शिक्षा प्रणाली बदतर स्थिति में है।
- ए.एस.ई.आर. जो कि गैर सरकारी संगठन है जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है, पूरे भारत में ग्रामीण व शहरी मलिन बस्तियों में बच्चों के साथ काम करता है के अनुसार सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा क्षेत्र के बुनियादी ढांचे में निवेश किया हो ऐसा हो सकता है लेकिन यह अपेक्षाकृत सफल नहीं रहा है। नई शिक्षा प्रणाली के सामने एक चुनौती शिक्षकों की कमी को दूर करना भी है। नियंत्रक वह महालेखा परीक्षक (सी.पी.जी.) की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार, एकल शिक्षा के भरोसे बड़ी संख्या में स्कूल चल रहे है, जो शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
- शिक्षा नीति के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में प्रोफसेरों की जवाबदेहिता सुनिश्चित करने से संबंधित सूत्र को लागू करना भी है।
- मसौदे में त्रिभाषी नीति भी एन.ई.पी. 2020 के सामने एक चुनौती पेश कर रही है जिसमें गैर हिन्दी को तीसरी भाषा बनाने की सिफारिश की गई है। तीन भाषा सूत्र नया नहीं है 1968 व 1986 में भी इसकी सिफारिश की गई थी। दक्षिण भारतीय राज्यों का यह आरोप है कि त्रिभाषा सूत्र से सरकार शिक्षा का संस्कृतिकरण करने का प्रयास कर रही है।
- उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाना एक महत्वपूर्ण चुनौती होगी क्योंकि बहुत कम भारतीय शिक्षण संस्थानों को शीर्ष 200 विश्व रैकिंग में जगह मिलती है। विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश से भारत के योग्य, दक्ष शिक्षक भी इन विश्वविद्यालयों में अध्यापन हेतु पलायन कर सकते हैं।
- मानव संसाधन का अभाव है, प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में कुशल शिक्षक नहीं है ऐसे में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत प्रारम्भिक शिक्षा हेतु की गई व्यवस्था के क्रियान्वयन में व्यावहारिक समस्याऐं हैं।
- प्रस्तुत शिक्षा नीति उच्च शिक्षा से संबंध सम्पूर्ण प्रबंधन एवं संचालक मण्डल के गठन के बारे में पूर्णतः खामोश है। इनके कार्यों का मूल्यांकन किस तरह होगा? दलीय प्रतिबद्धता वैचारिक पूर्वाग्रहों एवं राजनीतिक प्रभुत्व के आभामण्डल से अप्रभावित रहने वाले राष्ट्रप्रेमी तथा शिक्षा प्रेमी एवं प्रकांड विद्वतजनों की खोज आसान कार्य नहीं है।
- पूर्व अनुभव यह बताता है कि शीर्ष पदों पर नियुक्ति, पाठ्यक्रम निर्धारण व लेखन, चयन समिति व विश्वविद्यालय के शाषी निकाय का गठन सरकारी तन्त्र के कुचकों के चक्रव्यूह से

निकल नहीं पाया है। मूल्यांकन से लेकर नामांकन, नियुक्ति से लेकर पदोन्नति कोई भी प्रक्रिया दोषमुक्त किए बिना क्या नवीन शिक्षा नीति कारगर साबित होगी ?

अतः स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक रूप से नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत भारत की पुरातन व महान ज्ञान परम्पराओं तथा चिर–अर्जित वैज्ञानिक एवं बौद्धिक सम्पदाओं की संचित निधी को मर्यादित किया गया है। इसमें आधुनिक ज्ञान–विज्ञान तथा तकनीक के साथ इन उपलब्धियों के अपूर्व समन्वय की संकल्पना की गई है। रंटत विद्या की जगह यह नीति आलोचनात्मक, क्रियात्मक एवं मूल चिंतन तथा वैज्ञानिक सोच को प्रथमिकता देती है। शिक्षा माफिया के गढ़ो को ध्वस्त करने, अभिजात्यवाद के प्रचलन पर अंकुश लगाने और प्रारम्भिक चरण से ही कौशल विकास का मार्ग खोलने के लिये प्रतिबद्ध है, जिन दो प्रमुख संस्थानों के गठन का परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, वह एक निहायत सुविचारित संकल्प व परिकल्पना पर आधारित है परन्तु उपरोक्त वर्णित चुनौतियों व सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखते हुये नवीन शिक्षा नीति का व्यावहारिक क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाना अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *''नई शिक्षा नीति पर बीजेपी अध्यक्ष जे.पी.नड्डा बोले– नई शिक्षा नीति नए भारत की जरूरतों को ध्यान में रखती है'' पंजाब केसरी 29 जुलाई 2020 अभिगमन तिथी 30 जुलाई 2020*
2. *'नई शिक्षा नीति 2020: प्रमुख पाइन्ट्स एक नजर मे' 30 जुलाई 2020 अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020*
3. *'नई शिक्षा नीति 2020' अमर उजाला अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020*
4. *'नई शिक्षा नीति' नव भारत टाइम्स अभिगमन तिथि 31 जुलाई 2020*
5. *सिंह, प्रोफेसर दिनेश (29 जुलाई 2020) स्कूली और उच्च शिक्षा की बेडियां खोलेगी नई शिक्षा नीति अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020*
6. *''नई शिक्षा नीति कितनी बदलेगी शिक्षा व्यवस्था'' आज तक, अभिगमन तिथि 30 जुलाई 2020*

वेबीनार

1. *''राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं उच्च शिक्षा में स्वायत्तता'' राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, उत्तर प्रदेश, 7 सितंबर, 2020*
2. *नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 एंड क्वालिटी एजुकेशन इन बिहार, ''इनटरनल क्वालिटी एश्योरेंस सेल (आईक्यूएसी) एंड मिथिल स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स, दरबंगा 30 अगस्त 2020*
3. *''नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020'' आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश, 30 अगस्त, 2020*
4. *नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय भाषाओं, कला व संस्कृति के संवर्द्धन के विविध आयाम'' गवर्नमेंट वुमेन पीजी कॉलेज, कांदला, शामली, उत्तर प्रदेश, 31 अगस्त 2020*

वेबसाईट

अमरउजाला डॉट कॉम

जागरण डॉट कॉम

स्मार्टन्यूज डॉट कॉम

दृष्टि आई ए एस डॉट कॉम

जनपद चमोली में लोक संस्कृति और पर्यटन का वर्तमान समाज तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

shodhshree@gmail.com

डॉ. हर्षी खण्डूडी
अस्टिंट प्रोफेसर, पी. जी. कालेज गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश

विश्व संस्कृति के अंतर्गत वर्तमान में अर्थव्यवस्था जुड़ गयी है। विश्व में संस्कृति विभाग ने पर्यटन और आर्थिकी को भी नए-नए बहु आयामों से जोड़ने की कोशिश की है। जिससे यह लोक संस्कृति एक ओर हमारी विरासत है तो दूसरी ओर पर्यटन और आर्थिक तंत्र का मजबूत पहलू बन चुका है। इसलिए उत्तराखंड राज्य में भी प्रत्येक क्षेत्र, गाँव- स्थानीय लोगों में भी लोक संस्कृति और पर्यटन की वर्तमान समाज में अर्थव्यवस्था से जोड़ा जा रहा है। इस शोध पत्र में इसी प्रकार से लोक संस्कृति को पर्यटन और अर्थव्यवस्था से जोड़ा गया है, इस शोध पत्र का यही उद्देश्य है।

संकेताक्षर : *लोक संस्कृति, पर्यटन, अर्थव्यवस्था, चमोली, समाज।*

लोक संस्कृति और पर्यटन विश्व अर्थव्यवस्था का एक मूल आधार हैं तृतीय विश्व के युग में भूगोल वेत्ताओं के अथक प्रयासों से विश्व मध्य युगीन, संकीर्ण मानसिकता से बाहर निकलकर आधुनिकता के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। भौतिक वैज्ञानिकों, कृषि वैज्ञानिकों, सामाजिक विद्वानों और विविध चिन्तकों का कार्य अपने क्षेत्र में नई-नई खोजों और संकल्पनाओं को जन्म दे रहा हैं। आधुनिक समय में वैज्ञानिकों का एक बृहद समुदाय मानवीय सुख सुविधा के नये-नये साधन खोजने में लगा है। भूगोल वेत्ताओं कार्य भूमि एवं मानव की वास्तविकताओं का अध्ययन कर मानवीय उन्नति हेतु विविध तथ्यों को प्रस्तुत करना है। इसलिए मैने इस तथ्य को चुना जनपद स्तर से पर्यटन लोक संस्कृति का हमारे अर्थतन्त्र पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। तथा हमारी क्षेत्रीय संस्कृति कितनी सराहनीय होती है।

पर्यटन/संस्कृति एक दूसरे की पूरकता को पूर्ण करते है लोक-संस्कृति का एक केन्द्र बिन्दु मन्दिर देव संस्कृति से जुड़ा एक स्थान होता है। वही सम्पूर्ण आस पास के क्षेत्र को प्रभावित करता है उदाहरण स्वरूप जनपद चमोली में बद्रीनाथ जी का मन्दिर चार-धाम में से एक हैं। उसके साथ में स्थान हिमालय क्षेत्र हिमनियाँ, नदियां, गांव, झरने, फलोत्पादन, जलवायु सभी अपने-अपने स्थान पर लोक संस्कृति पर्यटकों को प्रभावित करता है। एक तरफ से यह क्षेत्र -पलायन करते हुए दिखाई दे रहा है। लेकिन उसके बाद भी यह मन्दिर इतना अर्थव्यवस्था का केन्द्र बना हुआ है यह भी स्थायी अस्थायी लोगों के लिए इस शोध पत्र में यह तथ्य ले करके व्याख्या कि जा रही है। कि प्राचीन समय में संसाधन न्यूनतम होने के साथ-साथ जनमानस कितना जागृत, मर्यादित, परम्परावादी था। लेकिन आज संसाधन अधिकतम होने के साथ-साथ जनमानस में क्या-क्या तरक्की हुई। वह अपने से कितना जुड़ पाया और उसने अपने विकास के लिए इस युग में संस्कृति जुड़ कर क्या- क्या किया है। इस प्रकार के तथ्यों को इस शोध पत्र के माध्यम से अनुवादित महत्वपूर्ण बनाया जा रहा हैं।

संस्कृति क्या हैं। संस्कृति का सम्बन्ध सीधा किस पर पड़ता है। संस्कृति से लोग परिचित है कि नहीं संस्कृति समाज पर किस प्रकार से प्रभाव डालती है। संस्कृति का क्षेत्रीय पर्यटन/पर्यटक स्थलों पर किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है। क्या यह राष्ट्रीय आय व्यवस्था को प्रभावित करती है। इस शोध पत्र को इस प्रकार के तथ्यों से पूर्ण किया गया है।

संस्कृति क्या है- विद्वानों के अनुसार संस्कृति की भिन्न- भिन्न परिभाषायें वर्गीय, पारिवारिक संस्कारों का उभरता

 ISSN 2277-5587

स्वरूप है। जो व्यक्ति जिस प्रकार के समाज में पला–बढ़ा जैसे उसने देखा। लोगों को करते देखा। समाज में क्रिया–कलाप जिम्मेदारी को निभाते देखा वही संस्कृति है। यह माना जाता है। क्षेत्रीय संस्कृति की जहाँ बात आती है तो जनपद चमोली में मर्यादित, परम्परावादी सीमित प्राचीन परम्परा वादी संस्कृति भी देखने को प्राय पायी जाती है। संस्कृति की भिन्न परिभाषाओं से उभर कर यह पाया गया कि संस्कृति मानव निर्मित है सीखी जाती है। हस्तानरित होती है। प्रत्येक समाज की एक विशिष्ट संस्कृति होती है। संस्कृति में सामाजिक गुण निहित है। संस्कृति समूह के लिए आदर्श मानी जाती है। संस्कृति द्वारा मानव आवश्यकता की पूर्ति होती है। संस्कृति में मानव–व्यक्तित्व के निर्माण में मौलिक होती है संस्कृति अधि–वैयक्तिक एवं अधि सावयवी है। संस्कृति से एक–दूसरे से सम्पक्र बना रहता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर जनपद चमोली में मानवीय संस्कृति के अन्तर्गत यह सारे गुण विद्यमान है। जो कि हमारी अर्थव्यवस्था को समाजिक धरोहर को संजोये रखने में अपनी अहम भूमिका निभाती है। यह संस्कृति विश्व प्रसिद्ध है। संस्कृति बरकरार रहेगी। संस्कृति क्षेत्रीय धरोहर भी मानी जाती है। इसलिए जनपद चमोली की संस्कृति को आधार मानकर इस शोध पत्र में व्याख्या की गई है। कि संस्कृति से हम हमारी क्षेत्रीयता का एक सम्बन्ध बना रहे। और यह विश्व प्रसिद्ध हो लोगों में सराहना की जाय। हमारे जीवन में संस्कृति का महत्व कितना अधिक है। संस्कृति द्वारा मानव की आवश्यकता की पूर्ति होती है। संस्कृति द्वारा मानव के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। संस्कृति मानव के अन्दर आदतों का निर्धारण करती है। संस्कृति मानव के अन्दर आदतों का निर्धारण करती है। संस्कृति मानव व्यवहारों को एक रूपता प्रदान करने में सहायक होती है। संस्कृति के द्वारा कार्य कुशलता में वृद्धि होती है। संस्कृति व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करती है। संस्कृति मानवीय समस्याओं का निदान करती है संस्कृति सामाजीकरण में योगदान देती है संस्कृति सामाजिक नियंत्रण में सहायता प्रदान करती है। इसी आधार पर जनपद–चमोली में मानवीय सामाजिक संस्कृति भी ठीक इसी प्रकार से विकसित हुई है। यहां पर मानव समाज में आज भी मर्यादित शब्द का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण किया जाता है। रीति रिवाज खान पान शादी विवाह मुण्डन यज्ञोपवीत संस्कार पाणीग्रहण संस्कार जन्मदिवस कथायें व्रत त्यौहार सभी को ध्यान में रखते हुए जनपद चमोली में संस्कृति का निर्वहन किया जाता है।

जनपद चमोली के विशेष सन्दर्भ में लोक संस्कृति पर्यटन का वर्णन

जैसे संस्कृति गतिशीलता से ओत–प्रोत है। मानव की आवश्यकता तथा उसके लिए पर्यावरण से समायोजन को अनवरत संचालित करना संस्कृति का उछेश्य है। यहां पर संस्कृति को मानव का एक अंग माना जाता है। वह स्वयं पोषित होता है। संस्कृति द्वारा मानवीय क्रियाओं में उत्कृष्टता आती है। तथा मानवीय क्रियाओं द्वारा संस्कृति का विकास होता है। जनपद चमोली में एक सुसंगठित क्रमवध क्रमशः संस्कृति को संजोये रखा है। यहाँ पर मानव पूर्ण रूप से प्राकृतिक भौगोलिक जलवायु पर नियन्त्रित है। जैसे शीत जलवायु का क्षेत्र है जो खान पान पहनावा समय सारणी उसी पर कार्य करती है। जैसे उच्च हिमालय क्षेत्र में स्थायी आवास न्यूनतम मात्रा में है। मध्य हिमालय क्षेत्र में अस्थायी–स्थायी आवासों की अधिकता बनी हुयी है। जोकि नगर गाँव दोनों प्रकार से विकसित हुई हैं। नगरों में जोशीमठ, बद्रीनाथ, गोपेश्वर, चमोली, गैरसैण, पोखरी, नारायणबगड़, थराली, देवाल तलवाडी, कर्णप्रयाग, गौचर, सिमली, नगरासू, मंडल, लगभग सभी स्थानों का संस्कृति और पर्यटन के आधार पर विकास हुआ है। नगर पंचायत नगर परिषद नगर पालिकाओं का विकास संस्कृति पर आधारित है। जैसे वर्षा ऋतु में कृषि की फसलों पर रोग निवारण हेतु रया लगाने का क्रम है। फसलों पे लगने वाले रोग दूर हो जायेगें। घी संक्रान्ति शाद्रपद के महीने में घी खाने का अनिवार्य नियम है। पितृजन को श्राद्ध पक्ष में ब्रहम कपाली, हरपेडी पर गंगा के किनारे वाले स्थानों पर करते हैं। उसके बाद देवी पूजन, नवदुर्गाओं का पूजन किया जाता है। उसके बाद श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, रक्षाबन्धन, मार्गशीर्ष, नवरात्रि पूजन, लोहड़ी, मकर संक्रान्ति, गंगा दशहरा, वैशाखी, रामनवमी हिन्दुओं के सभी त्यौहारों को बड़े क्रमशः इस क्षेत्र पर मनाया जाता है। जनपद चमोली में पर्यटन को आधार बनाकर हजारों सैलानियों का आना होता है। जैसे हिमानियों में पिण्डारी सतोपन्थ सुन्दर दुंगा, फूलों की घाटी, हेमकुण्ड साहिब, वसुधारा, वेदनी बुग्याल, रूपकुण्ड इन सभी स्थानों पर पर्यटकों का आवागमन बना रहता है।

लोक संस्कृति से नृत्यकला का भी प्रदर्शन किया जाता है यहां पर बड़वाल नृत्य पांडव नृत्य चौफला चांछरी

रामकृष्ण लीला रामी बैराणी नाटक को मंचों के माध्यम से आयोजित किया जाता है। कवि दरबार कवि सम्मेलन के माध्यम लोक संस्कृति को बरकरार रखा जाता है। इसके अलावा रंगमंच नाट्य कला गीत संगीत गजल भजन को भी यहां कि वर्तमान संस्कृति में सम्मिलित किया गया है। शादी में मांगल्य गान को भी जागृत रखा है। इसके अलावा अखण्ड रामायण का पाठ श्रीमद्भागवत कथा, रामकथा का आयोजन समय–समय पर विश्व संस्कृति मिशन/संस्कृत भारती के माध्यम से संचालित किया जाता है। जंगल पूजन, वनदेवी, पूजन, सभी प्रकार की परम्पराओं का निर्वहन जाति क्षेत्र के आधार पर किया जाता है। क्षेत्रीय समुदायों के द्वारा क्षेत्रीय स्वर सभी प्रकार के कार्य सम्पन्न कराये जाते हैं। पशु समुदाय से लेकर मानवीय शिक्षित अशिक्षित सभी प्रकार के समुदायों में संस्कृति को जागृत रखा जा सकता है। संस्कृति की एक परम्परा बनी हुई है। जो जनपद चमोली में पूर्णत निर्वाह की जाती है। संस्कृति को ऋतु मौसम के आधार पर र्विहन किया जाता है।

- वर्षा ऋतु
- शीत ऋतु
- ग्रीष्म ऋतु

संस्कृति को ऋतु के आधार पर केन्द्रित किया गया है। जिससे क्षेत्रीयतता को एकसूत्र में बांधा जा सकता है। क्षेत्रीय संस्कृति के आधार पर जनपद चमोली में लघु–लघु बिन्दुओं को आधार मानकर संस्कृति के प्रत्येक पहलुओं पर प्रकाश डाल रहें है। यह निजी तथा सामाजिक संस्कृति के सभी पहलुओं को पृथक–पृथक दृष्टिकोण से देखा गया है। जैसे क्षेत्र में किसी–किसी स्थिति में आपातकालीन समस्या का आ जाना तथा उसके निदान हेतु सामाजिक संगठनों की सहायता से इसका निदान किया जाता है। जनपद चमोली में इस प्रकार की समस्याओं को क्षेत्रीय सहायता से निदान किया जाता है। संस्कृति के विकास क्रम में सुव्यवस्था का होना अति आवश्यक है। जो कि जनपद चमोली के ग्रामीण क्षेत्रों में एक विरासत के रूप में है। इसलिए यहां पर संस्कृति विकास इस क्षेत्र में अत्यअधिक व्यवस्थित क्रम में दिखायी देता है। यह विश्व प्रसिद्ध संस्कृति का प्रतीक भी है। जैसे देवी पूजन में नन्दा देवी राजजात जनपद चमोली में आयोजित की जाती है। नौटी से लेकर के पिण्डर वैली के गांवों में रात्रि जागरण देवी सज्जा के साथ भ्रमण करके वेदनी बुग्याल से नन्दादेवी पर्वतीय श्रृंखला पर चौंसिगा खाडू छोडा जाता है। जो कि इस क्षेत्र की संस्कृति का प्रतीक है। इसीलिए इस शोध पत्र में संस्कृति का पृथक– पृथक रूप से वर्णन किया गया है। यहाँ की संस्कृति पर आधारित ही सभी कार्य किये जाते है। इसके अलावा जो मध्यम क्षेत्र हैं। पांड़व नृत्य बगडवाल नृत्य की विधा भी विद्यमान है। जिसकी झलकियां वर्ष में एक बार देखने को मिलती है। नन्दा अष्टमी का पूजन/नन्दापाणी के रूप में किया जाता है। सज्जा सौन्दर्यीकरण धर्म मान्यता महत्व के आधार पर पूजन कार्य किये जाते है। लघु रूप से आन्तरिक पूजन विधान को आयोजित किया जाता है। जनपद चमोली में इसी प्रकार से विधि– विधानों का निर्वहन किया जाता है। जिससे संस्कृति की झलक दिखायी देती है। इसी के साथ–साथ पर्यटन का विकास अत्यधिक हो रहा हैं। प्राचीन समय में भारतवर्ष पर्यटक स्थलों में आगे है देवी देवताओं से ले करके पर्यटकों को लुभावने के लिए भारतवर्ष केन्द्र रहा है। इसलिए यहाँ पर आज भी केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। भारतवर्ष में पहली भू–भाग विशम धरातलीय संरचना में छोटी–छोटी स्थलों में शिवलिंग देवीमूर्ति स्थापित हुई है। पर्यटकों को लुभाने हेतु लोगों में अधिकाधिक आकर्षण बना रहता है। इसलिए पर्यटकों का आकर्षण सदैव बना रहता है। वर्तमान समय में इसका सीधा प्रभाव हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। सर्वप्रथम पर्यटन का आरम्भ नवीन दिशायें व्यापक सम्बन्ध घुमने फिरने से लोगों में व्यापक और प्रगाढ सम्बन्ध बनते है। सहयोग की प्रवृत्ति ज्ञान में वृद्धि तथा पर्यटन से ज्ञान में वृद्धि होती है। पर्यटन ही किसी चीज के बारे में जानने की जिज्ञासा को पूरा कर सकता है। पर्यटन के द्वारा आर्थिक क्षेत्र का विकास होता है। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की सभ्याताओं का आदान–प्रदान आसानी से होता है। जिससे हमारे बीच कुछ संकीर्णता भी दूर हो जाती है। और पर्यटन के साथ–साथ तीर्थ स्थलों को भी बढ़ावा मिलता है और स्थानीय राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

वर्तमान समय में जनपद चमोली में श्री बद्रीनाथ जी का मन्दिर संस्कृति और पर्यटकों का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। छः माही रोजगार का भी स्थानीय वासियों के लिए लाभकारी है मान्यता महत्वा आस्था का केन्द्र बिन्दु बना हुआ है। ग्रामीण/नगरीय स्थानीय संस्कृति के आधार को एक दिशा देने योग्य है। आजकल वर्तमान समय में संस्कृति को एक धरोहर के रूप में माना जा रहा है। आज का समाज अपनी विरासत को संजोये

रखने की पूर्णत कोशिश कर रहा है। हम भी उस ही समाज के अंग है। हम मानवों की सामाजिक ईकाई के रूप में एक जिम्मेदारी बनती है कि हम अपनी संस्कृति/संस्कार परम्परावादी संग्रहों को जागृत अवस्था में रखे और हम और हमारी विरासत विश्व प्रसिद्ध हों। ये प्रयास इस शोध के माध्यम से किया जा रहा है।

जनपद चमोली में संस्कृति/पर्यटन का समाज पर प्रभाव

1. **परम्परावादी उदार नीति**
   (i) परम्परागत कार्य अतिथि सत्कार
2. **मान्यताओं को महत्व देना**
   (i) विश्वास करना
   (ii) विश्वास दिलाना
3. **मर्यादित रहना**
   (i) दायरे में रहना
   (ii) अपने पर नियत्रण रखना
4. **विचारों का आगमन करना**
   (i) वंशवादी विचार आतित्य सद्भाव
   (ii) व्यवसाय को बढ़ावा देना

उत्तराखण्ड पर्यटन के द्वारा राज्य की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

पर्यटन के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि यह मनुष्य के साथ जन्म से जुड़ा है। मनुष्य घर से बाहर जाने में आराम महसूस करता है। मनुष्य की प्रवृत्ति में घूमना दर्शन करना परिवर्तन की इच्छा का उत्पन्न होना वस्तु, स्थान, विषय कार्य शैली जलवायु खाद्यान में परिवर्तन की चाहत जिज्ञासा का उत्पन्न होना मानव स्वभाव है। उत्तराखण्ड राज्य में जो स्थलाकृतियों की बनावट तीर्थ स्थल बुग्याली क्षेत्र नदियां फूलों की घाटी हिमनियां ऊंची–2 चोटियां घाटियां लहराती हरी भरी भूमि अल्पाइन घास के मैदान सदाबहार वनस्पतियां जैसे बांज, चीड, अय्यार, काफल, साकिना, कोईराल, असीन, खडीक, गैडी, कॅटिली झाड़िया, हिसर, किग्रोड, अँधेरी गाड़ों में भवेत सिलपाडा, प्यूली, पयॉ के जैसे वृक्षों से सजी धजी धरती किसी स्वर्ग से कम नहीं है। इसलिए यहाँ पर सदाबहार पर्यटकों का आवागमन बना रहता है। उच्च मध्य सामान्य स्तर तथा स्थायी अस्थायी दीर्घकालीन अल्पकालीन पर्यटकों का वर्षभर आवागम बना रहता है। कभी मनुष्य की इच्छा से आवश्यकता से कभी अवकाश मिलने से पितृदोश निवारण हेतु कभी आस्था से कभी मौसम से वर्षभर पर्यटकों का आवागमन लगभग तराई भू–भाग अर्थात् रेलवे स्टेशन हरिद्वार तक समान रूप से बना रहता हैं। लेकिन इसके अलावा श्री बद्रीनाथ/श्री केदारनाथ जी/गंगोत्री धाम/यमुनोत्री धाम छः महीने तक सभी प्रकार के पर्यटकों का आवागमन अत्यअधिक मात्रा में होता है। उत्तराखण्ड सरकार का इस पर अधिक ध्यान भी दिखायी दे रहा है। चमोली जनपद में मंनोरजकपूर्ण व साहसिक पर्यटकों का यहाँ पर अत्यअधिक आवागमन बना रहता है। इसलिए यहाँ पर इसको बढ़ावा दिया जा रहा है। और इस हस्तशिल्प कला के उत्पाद घरेलू उत्पाद निजी वस्तुओं का क्रय/विक्रय भी उचित समय तथा उचित दाम पर किया जाता है। इसलिए इस राष्ट्रीय गोष्ठी के अन्तर्गत इस विषय को लिया गया है। अभी वर्तमान सरकार का इस काफी मात्रा में ध्यान केन्द्रित हो रहा है। जनपद चमोली में श्री बद्रीनाथ जी का मन्दिर सबसे अधिक आकर्षण का केन्द्र बिन्दु है। जो आस्था/विश्वास पितृ श्राद्ध, पिण्डदान, पुण्य अर्जन का एक मुख्य केन्द्र बिन्दु है।

जनपद चमोली में भौगोलिक दृष्टि से पर्यटकों के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं को देने का कार्य करने की कोशिश की जा रही है। जिसमें हमारा यह क्षेत्र राष्ट्रीय स्तर पर उन्नति के शिखर पर जाना जाय और जनपद स्तर के लघु क्षेत्रों को पर्यटन से जोड़ दिया जाय। यह प्रयास इस शोध पत्र के माध्यम से किया जा रहा है। सम्पूर्ण लाभ सभी प्रकार के व्यवसाय को मिल रहा हैं। इसलिए यहाँ पर अस्थाई/स्थायी जनसंख्या में वृद्धि दिखायी दे रही है। व्यवसाय के लिए धोबी/नाई/होटल व्यवसायी सब्जी, फल विक्रेता, मुस्लिम समुदाय, लघु कुटीर उद्योगों के निर्माण हेतु इस प्रकार के लोगों का अधिकाधिक मात्रा में आवागमन बना हुआ है। इस कारण इस क्षेत्र के नगरों में अधिक जनसंख्या वृद्धि दिखाई दे रही है। आवासों की सघनता नगरों में अव्यस्थित भवन निर्माण भी दिखाई दे रहा है। इसलिए यहाँ पर जनसंख्या अधिकाधिक होते जा रही है। तराई मैदानी क्षेत्रों में स्थायी/विशम घाटी क्षेत्रों में अस्थायी रूप से जनसंख्या निवास करती है। इसलिए उत्तराखण्ड के अन्तर्गत सीमान्त जनवद होने के कारण भी यहाँ पर जनसंख्या का बोलबाला रहता है। इसलिए आर्थिक स्थिति मजबूत बनी हुई हैं। लेकिन उपर्युक्त तथ्यों के साथ–साथ अन्य विकासोन्मुख की दिशा को भी जागृत अवस्था में लाने हेतु इस शोध पत्र में लेख के द्वारा एक प्रयास कर सकते हैं यह प्रयास कितना

सफल होता ये बाद में लम्बे समय के पश्चात स्पष्ट होगा। कि आर्थिक नीति को बढाने के लिए स्थायी संस्कृति पर्यटन मुख्य है। इसलिए शोध–केन्द्र के अन्तर्गत संस्कृति जागृत और पर्यटन आस्था का केन्द्र इस क्षेत्र पर स्थापित किया जाय तो शोध कार्य के माध्यम से अधिक से अधिक लघु बिन्दुओं को कारण परिणाम के साथ स्पष्ट किया जाता है। जिससे भावी सम्भावनायें में पारदर्शिता आ जाती हैं। और राज्य के स्थानीय स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा मिल सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी जो आस्था है उन पर दुगनी आस्था बढेगी, और हम हमारे क्षेत्रीय लोगों में रोजगार बढेगा पलायन की स्थिति से बच पायेंगें। पलायन न्यूनतम होगा यह सम्भावनायें प्रायः देखने को मिलती है। पर्यटन की वर्षभर सम्भावनायें बनी रहेंगी और हमारी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी यह सम्भावनायें भविश्य के लिए लगाई जाती हैं। जिससे अर्थव्यवस्था पूर्णत प्रभावित होती हैं।

इसलिए उत्तराखण्ड राज्य में पर्यटन को बढावा दिया जा रहा है। जिसमें टिहरी झील; श्री देव सुमन झीलद्ध के नाम से विख्यात किया जा रहा है। जल क्रीडाओं का आयोजन मत्यस उत्पादन तथा नहरों को निकालने का कार्य भी किया जायेगा। जिससे कृषि उत्पादन को भी बढावा मिल सकेगा। पूर्व समय में भारत वर्ष में विदेशी पर्यटन को भी धनोपार्जन क्रिया से जोड़ा जा रहा है। प्रत्येक क्षेत्र के अन्तर्गत पर्यटन के स्त्रोत हैं। प्रत्येक स्थल में रोजगार परक पर्यटक धार्मिक स्थल की सम्भावनायें बनती हैं इसलिए इस पर सरकार के अथक प्रयास चल रहे है। जनपद चमोली में प्रत्येक क्षेत्र में बुग्याली भू–भाग लघु श्रृंखलायें, हिमानी, स्थलाकृतियां, झरने सभी कला कृतियों को धर्म/संस्कृति से जोड़ दिया गया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पर्यटन हमारे क्षेत्र के लिए भी कितना महत्वपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमें पर्यटन और संस्कृति को गम्भीरता से बढावा देना चाहिए। और अपने क्षेत्र पर पर्यटकों को लुभाने के लिए क्षेत्रीय उत्पाद कच्चे माल को तैयार करके औद्योगिक व्यवस्था को बढ़ावा दिया जा सकता है। इस भू–भाग पर इस प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयासों का सफल परिणाम भी दिखयी दे रहा है। इसी कारण इस क्षेत्र पर अधिक मानव वसाव दिखाई दे रहा है। आज का मनुष्य रोजगार के लिए सभी प्रयास करते हुए पाया जाता है। इन प्रयासों के माध्यम से स्थानीय संस्कृति का विकास पर्यटन को बढावा मिल रहा है। आर्थिक स्थिति मजबूत पायी जाती है। यह क्षेत्र विश्व धरोहर के रूप में जाना जाता है। लघु, कुटीर, उद्योगों को बढावा दिया जा रहा है। जनपद चमोली में एक मेला गौचर मेले के रूप में आयोजित किया जाता है। जो हस्तशिल्प कला के प्रचार–प्रसार से ले करके स्थानीय उत्पादों का विभाजन का केन्द्र भी बना हुआ है। स्थानीय संस्कृति का इस मेले के माध्यम किया जाता है। स्थानीय संस्कृति का प्रसार भी इस मेले के माध्यम अत्यधिक मात्रा में किया जाता है। मेले के माध्यम से एक दूसरे से मिलना। ग्रामीण स्तर को वस्तुओं का आदान प्रदान करना तथा स्थानीय हस्तशिल्प कला का आदान–प्रदान किया जाना संस्कृति में क्षेत्रीय विविधता का पाया जाना मेले के आयोजन से ही सम्भव हो पाया है। जैसे स्थानीय वस्तुओं के लिए लोागें को एक गांव से दूसरे गांव में जाना पड़ता था। लेकिन मेले के माध्यम से एक ही स्थान पर सभी वस्तुओं को हम एक ही स्थान से प्राप्त कर सकते हैं। यह मेला स्थानीय लोगों को छः माही रोजगार की पूर्ति कर देता है। इसलिए क्षेत्र पर इस प्रकार के मेलों का आयोजन किया जाता है। किन्हीं स्थानों पर त्योहारों पर भी मेले आयोजित किये जाते है। हस्त शिल्प कला उद्योग से निर्मित वस्तुओं का प्रचार प्रसार तीव्रता से होता है। कभी मानव की पसन्द कभी आवश्यकता कभी विलासिता पूर्ण आवश्यकता से वस्तु की खपत ही नहीं अपितु मांग भी बढ़ जाती है। जिससे वस्तु उत्पादन की मात्रा तथा गुणवता में वृद्धि करनी अनिवार्य हो जाती है। उद्योगों को बढावा मिलता है। स्थानीय सुविधाओं में वृद्धि होने की सम्भावनायें बनी रहती है। सड़क यातायात सुविधा विद्युत व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। ग्रामीण विकास की नींव इससे मजबूत हो सकती है प्रत्येक लघु क्षेत्रों के विकास के लिए यह कार्य सर्वोतम हैं। इसलिए आज लोग इस तरफ अपना रूझान बढ़ा रहे हैं सबका आकर्षण बना रहे पलायन पर रोक लगे हम और हमारी संस्कृति का विकास सदैव बना रहे हम संस्कृति से कभी दूर न जाये अपनी संस्कृति के विकास के लिए क्षेत्रीय परम्परागत व्यवस्थाओं को बनाये रखने में हमारा योगदान बना रहें। लोगों को अग्रिम पीढी को एक नयी सीख मिले।

हमारे क्षेत्र पर इस प्रकार के व्यवस्थाओं को बढावा मिले क्षेत्र की छवि बनी रहें। और क्षेत्रीय लघु कुटीर उद्योगों को बढावा मिले और क्षेत्रीय हस्तशिल्प कला को जो उत्पाद तैयार किये जा रहे है उनसे तैयार वस्तुओं की मांग बढे वे वस्तुयें आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति करें यह क्षेत्र क्षेत्रीय उत्पादों से आर्थिक

व्यवसाय को बढावा दें। क्षेत्र पर औद्योगिकरण को बढावा मिलेगा। सम्भावनायें यह बनती कि इस प्रकार से क्षेत्र पर पलायन रूकेगा। स्थानीय लोग स्थानीय रोजगार को बढावा देंगें। और लोग क्षेत्र से बाहर न्यूनतम मात्रा में पलायन करेंगें। और क्षेत्र में लोग स्थायी रूप से रहेंगे। क्षेत्रीय रोजगार बढेगा। यह पर्यटन बढेगा क्षेत्रीय रोजगार बढने से क्षेत्र में पर्यटन की सम्भावनायें बढ़ेगी।

व्यक्तिगत अध्ययन

पर्यटन पर आधारित ग्रामीण रोजगार

श्री बद्रीनाथ जी मन्दिर के प्रसिद्ध पुरोहितों का गांव जनपद चमोली के विकासखण्ड कर्णप्रयाग के पिण्डर नदी के किनारे पर स्थित है। यहां पर कृषि भूमि पशुपालन व्यवसाय व्यापार सभी प्रकार के कार्य आर्थिक क्रिया को सम्पन्न करने के लिए किए जाते है इसके अलावा पर्यटन के आधार पर छः महीने भगवान श्री बद्रीविशाल के मन्दिर में कपाट खुल जाते है। तो लोगों का ध्यान पूर्णत पर्यटन पर आधारित केन्द्रित हो जाता है। श्री बद्रीविशाल जी के चारों तरफ अपनी अपनी आसन स्थिति को भगवान के नाम से स्थापित कर देते हैं उसी पर अपना अर्थतंत्र स्थापित कर देते है। मन्दिर का अद्भुत वर्णन स्थापित है गर्म जल का अत्यअधिक मात्रा में निकलता लोगों यात्रियों का अत्यधिक मात्रा में यात्रा स्थल तक पहुॅचना माणा गांव के वासियों का हस्तशिल्प कला का उत्पादन व्यवसाय पर्यटकों को अत्यधिक लुभाने का कार्य करता है। छः महीने इस जनपद स्तर को स्थानीय निवासियों नहीं बल्कि पूरे मार्ग में लाभ ही लाभ प्राप्त होता है। होटल व्यवसायी को व्यापारी को वाहन चालक को मन्दिर में बैठे पुरोहितों को सभी को आर्थिक आधार बना चुका है जैसे लघु शिवलिंग से बडे–बडे शिव मन्दिरों में श्रावण मास में अत्यअधिक भीड़ उमडी रहती है। ये भी आस्था और पर्यटन रोजगार का एक मुख्य संसाधन हैं। जो क्षेत्रीय रोजगार ग्रामीण रोजगार का मुख्य केंद्र बिन्दु है जिससे पहाड़ी भू–भाग में लोगों का आवागमन बना रहेगा। इस क्षेत्र की जलवायु मौसम कृषि उत्पादन भूमि उपयोग जलीय स्त्रोत तथा पर्यावरण का लाभ मिलेगा। क्षेत्र की संस्कृति विश्व प्रसिद्ध होगी। विश्व में जो अर्थव्यवस्था चल रही है यह क्षेत्र भी उसका हिस्सा बन जायेगा।

छःमाही शीत कालीन क्षेत्र पर भी पर्यटन विशेष प्रभावशाली हो है वर्तमान आधुनिक युग में पर्यटन विशेष प्रभावशाली होता है वर्तमान आधुनिक युग में पर्यटन उद्योग इस क्षेत्र के प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली को प्रभावित करता है।

क्षेत्रीय आर्थिकी पर पर्यटन का प्रभाव– पर्यटन भी अन्य आर्थिक क्रियाओं की भांति एक मुख्य आर्थिक क्रिया है। जबकि पर्यटन एक संगठित उद्योग है। इसकी सीमाएं विभिन्न स्थानों पर बिखरी हुई होती है। राष्टीय अन्तर्राष्टीय सीमा पर इस उद्योग का प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है।

- रोजगार के अवसरों में बढोतरी होती है।
- विदेशी मुद्रा को अर्जित करके व्यापार सन्तुलन में योगदान करना।
- गुणक प्रभाव द्वारा सामान्य आर्थिक क्रियाओं में सहयोग
- पिछडे क्षेत्रों में विकास को बढावा देना।
- विविध कार्यो में लोगेां का उत्साहवर्धन कर आर्थिक लाभ प्रदान करना तथा विदेशी व्यक्तियों व विदेशी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना।
- पर्यटन पर गुणित प्रभाव।
- रोजगार पर प्रभाव
- आय का स्त्रोत
- विदेशी मुद्रा की प्राप्ति

क्षेत्रीय पर्यटन का भौतिक प्रभाव – पर्यटन का जिस प्रकार से आर्थिक सामाजिक प्रभाव सकारात्मक एंव नकारात्मक दोनेां होता है। ठीक उसी प्रकार भौतिक प्रभाव भी दोनों स्वरूपों में होता है। जो इस प्रकार है।

पर्वतीय भू–भागों के सौन्दर्य पर पर्यटन का प्रभाव – पर्यटन के दृष्टिकोण से पर्वतीय स्थान का अधिक महत्व है। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्र अपनी पर्वत श्रेणियां जल प्रपातों पर्वत शिखरों बर्फीले ढलानों तथा हिल स्टेशनों के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य वर्धक जलवायु दूरस्त क्षेत्रों के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करते है। यहां हिमालय पर्वत की श्रेणियां, बद्रीनाथ, नन्दप्रयाग, सोनप्रयाग, नन्दादेवी पर्वतीय श्रृंखला सतोपंथ हिमानी इसी क्षेत्र पर आधारित है।

यह क्षेत्र अनादिकाल से साधु सन्तों ऋषि –मुनियों की तपोभूमि रहा है। ब्रिटिश शासकों ने आज से लगभग 150वर्ष पहले अपने आराम के लिए पर्वतीय स्थलों को चुना था। वे जब ज्यादा गर्मी पडती थी। तब पर्वतीय

भागों में। स्थित आराम राहों में ही शासन करते थे। तो पर्यटन और पहाडी भू–भाग की ये भी एक विशेषता है। वह सुख भाान्ति का भी प्रतीक है।

पर्वतीय स्थान नैसर्गिक सौन्दर्य से परिपूर्ण होते है। ये मनोरंजन के लिए उपर्युक्त स्थल है। इसलिए पर्यटकों के मन में पर्वतीय स्थलों में भ्रमण करने की लालसा रहती है। इस स्थान को शरणगाह क्षेत्र भी कहा जाता है। विद्वानों तथा पर्यटकविदो ने इस प्रकार के स्थानों को 3R को बहुत अधिक महत्व दिया गया है।

- R = Rest (आराम)
- R= Relacation (विक्षान्ति)
- R= Recreation (मनोरंजन)

पर्वतीय भाग नदी, ग्लेशियर प्रपात बर्फ से ढकी चोटियां हिमनद आदि से युक्त होते हैं। इसकी सुन्दरता देखने के लिए कवि, लेखक, पर्यटक विद्वान पर्यटक आते रहते है। इस क्षेत्र में अतिथि देवो भव की सूक्ति पूर्णत काम करती है। इसलिए आर्थिक मजबूती के साथ–साथ सामाजिक पक्ष भी एक सम्मानित पक्ष माना जाता है इसलिए यहां पर्यटक अधिक मात्रा में आते रहते है। यह इस क्षेत्र तथा क्षेत्र की जलवायु, कृषि, जल, पशुसंसाधन, पर्यावरण सभी पर्यटन उद्योग को बढावा देने की जिम्मेदार है। और राष्टीय सम्पति के रूप से पर्यटन उद्योगों को बढावा मिलेगा। यह क्षेत्र भी राष्टीय सम्पति के रूप में अपना अहम योगदान देगा। इस शोध में ग्रामीण नगरीय, क्षेत्रीय, दीर्घकालीन, लघु कालीन समयानुसार आस्था पर लगाव रखने वाले सभी प्रकार के पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया। सभी प्रकार से आर्थिक लाभ प्राप्त किये जा सकते है। आवश्यकता है। सरकार का ध्यान केन्द्रित रहें। वे यातायात संसाधनों होट्लों, धर्मशालाओं निजी व्यवसायों को बार–बार जांच करें और उनमें जो भी पर्यटकों की मांग है। आवश्यकता अनुसार उसे पूर्ण करने का सतत प्रयास करे। यह क्षेत्र सदैव विश्व पर्यटकों का एक केन्द्र बिन्दु रहेगा। हिमालय क्षेत्र से लेकर एशिया महाद्वीप तक इसका अपना एक अर्थतन्त्र होगा जो रोजगार पर्यटन, स्थायी, अस्थायी, आवास, जलवायु, कृषि, फलोत्पादन, लघु–कुटीर उद्योगों में अपना स्थान बनाये रखेगा।

उपसंहार – इस शोध पत्र में क्षेत्रीय लोक संस्कृति और पर्यटन को अर्थव्यवस्था से जोड़ने की कोशिश की गयी है। कि वर्तमान में जनसँख्या इतनी अधिक बढ़ गयी है कि हमने अपने क्षेत्र की संस्कृति और लोक संस्कृति को भी आर्थिकी का आधार बना दिया है। इसलिए इस शोध पत्र में विश्व से लेकर क्षेत्रीय संस्कृति का वर्णन किया गया है। कि वर्तमान में मानव और उसकी आर्थिकी किन किन संसाधनों को संजोये है, और हमारी अर्थव्यवस्था कहाँ तक फैली हुई है। यही इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सांस्कृतिक भूगोल –डॉ. गायत्री प्रसाद प्रकाशन वर्ष २ १९, पृष्ठ संख्याः८२, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, यूनिवर्सिटी रोड़, आई.एस.बी.एन. ८१–८६२ ४– ८३*
2. *पर्यटन भूगोल– हरीश कुमार खत्री प्रकाशन वर्ष २०१९, पृष्ठ संख्याः५७, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।*
3. *आर्थिक भूगोल के मूल तत्व– जगदीश सिंह काशीनाथ सिंह प्रकाशन वर्ष २००९, पृष्ठ संख्याः५९, राधा पब्लिकेशन।*
4. *गढ़वाल का इतिहास, लोक संस्कृति– हरिकृष्ण रतूड़ी*
5. *पर्यटन भूगोल– शर्मा प्रकाशन वर्ष २००५, पृष्ठ संख्याः५५, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली।*
6. *पर्यावरण भूगोल– ए. के. शर्मा*
7. *पर्यावरण– एन. एस. विष्ट प्रकाशन वर्ष १९९५, पृष्ठ संख्याः९७, जुगल किशोर प्रकाशन देहरादून।*
8. *क्षेत्रीय स्वयं सर्वेक्षण–क्षेत्रीय स्वयं सर्वेक्षण, (प्राथमिक स्तर पर) २३ अक्टूबर से ३० नवम्बर २०२० तक।*
9. *गढ़वाली लोक साहित्य, विधायें, ग्रन्थ, कहानियाँ प्रकाशन वर्षः१९६७, पृष्ठ संख्याः९५, जुगल किशोर प्रकाशन देहरादून।*
10. *कुमाउँनी अखाड़े, कुमाउँनी कहावतें– प्रो. शेर सिंह विष्ट प्रकाशन वर्षः२ १८, पृष्ठ संख्याः१२४, अंकित प्रकाशन हल्द्वानी।*
11. *हिमालय कि लोक कथाएं – ओकले एवं तारादत्त प्रकाशन वर्षः१९८०, पृष्ठ संख्याः८५, आत्माराम एंड संस दिल्ली।*
12. *गढ़वाली भाषा और लोक साहित्य – डा. हरिदत्त भट्ट प्रकाशन वर्षः१९९५, पृष्ठ संख्याः१३७, मोहनी प्रकाशन देहरादून।*

19 वीं शताब्दी में पश्चिमी राजस्थान के प्रमुख खनिज : एक अध्ययन

डॉ. अनिल पुरोहित
सहायक आचार्य, महिला पी जी महाविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

खनिज मानव को एक वृहत् प्राकृतिक देन है। राजस्थान के विशेष भौगोलिक स्वरूप के कारण यहाँ खनिज पदार्थ वृहत् स्तर पर उपलब्ध थे। यहाँ पर स्थित अरावली पर्वत श्रृंखला, थार के रेगीस्तान और विभिन्न अन्य क्षेत्रों में अनेक मूल्यवान धातु और खनिजों के बड़े भण्डार आज भी उपलब्ध है। 19वीं भाताब्दी में पश्चिमी राजस्थान में खनिज धात्विक एवं अधात्विक दोनों रूपों में प्राप्त होता है। धात्विक खनिजों में यहाँ से तांबा, लोहा, टिन, सीसा, अभ्रक, जिप्सम, चांदी और अधात्विक खनिजों मे विभिन्न प्रकार के पत्थर यथा लाल पत्थर, सफेद पत्थर, विभिन्न किस्मों और रंगों के संगमरमर के पत्थर, चूने का पत्थर, खड़िया पत्थर, इत्यादि न्यूनाधिक मात्रा में मिलते है। पश्चिमी राजस्थान का खनिज व्यवसाय काफी विकसित था, किंतु आधुनिक काल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता के विस्तार के साथ-साथ यहाँ का खनिज व्यवसाय पतन की ओर अग्रसर हो गया। वस्तुतः ब्रिटिश रूचि यहां के उसी कच्चे माल और प्राकृतिक सम्पदा में थी, जो इग्लैण्ड स्थित उद्योगों के कच्चे माल की पूर्ति में सहायक होती थी। ऐसे अनेक दस्तावेज उपलब्ध है, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि, आधुनिक काल में पश्चिमी राजस्थान में खनिजों के दोहन में कमी आयी। यद्यपि पश्चिमी राजस्थान में विभिन्न खनिजों के व्यापक भण्डार थे, किंतु अधिक गहराई तक खनन करने की तकनीक के अभाव के कारण अधिक उत्खनन संभव नहीं हो पाया। इसके अतिरिक्त खानों से जल निकासी की भी कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। अनेक क्षेत्रों की खानें इस काल में बंद हो गयी थी। इससे खनिजों पर आधारित शिल्पों का भी विनाश हो गया। स्थानीय उत्पादन नष्ट होने से आयातीत धातु यहां की प्रजा के औपनिवेशिक शोषण का आधार बन गयी थी, जिससे धन-निष्कासन का मार्ग प्रशस्त हो गया था।

संकेताक्षर : *प्राकृतिक, राजस्थान, खनिज, धात्विक, अधात्विक, कुटीर उद्योग, खान, आर्थिक संसाधन।*

पश्चिमी राजस्थान की आर्थिक क्रियाओं में खनिज एवं संबंधित व्यवसायों का प्रमुख स्थान रहा है। यद्यपि ब्रिटिश प्रभुत्व के फलस्वरूप इन व्यवसायों में भारी गिरावट आयी, किंतु इनका पूर्णतः लोप नहीं हुआ। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि, 18 वीं सदी के अन्त तक राजस्थान में स्थानीय उद्योग-धन्धे पूर्णतः विकसित अवस्था में थे।[1] यद्यपि आधुनिक अर्थों में यहाँ पर बड़े उद्योगों की उपस्थिति नहीं थी, किंतु भारी संख्या में शिल्पकार एवं छोटे कारीगर उत्पादकों द्वारा कुटीर उद्योगों का संचालन किया जाता था। यहाँ के शासकों के संरक्षण में शिल्प और कुटीर उद्योग काफी फले-फूले थे। यहाँ की विशेष भौगोलिक एवं प्राकृतिक अवस्थाओं के कारण यहाँ पर खनिज पदार्थ भारी मात्रा में उपलब्ध रहे है। मध्यकाल में यहाँ का खनिज उद्योग काफी विकसित था। पश्चिमी राजस्थान में खनिज धात्विक एवं अधात्विक दोनों रूपों में प्राप्त होता है। धात्विक खनिजों में यहाँ से तांबा, लोहा, टिन, सीसा, अभ्रक, जिप्सम, चांदी और अधात्विक खनिजों मे विभिन्न प्रकार के पत्थर यथा लाल पत्थर, सफेद पत्थर, विभिन्न किस्मों और रंगों के संगमरमर के पत्थर, चूने का पत्थर, खड़िया पत्थर, इत्यादि न्यूनाधिक मात्रा में मिलते है। धात्विक – अधात्विक खनिजों पर आधारित अनेक कलात्मक शिल्पों एवं उद्योगों का विकास यहाँ पर हुआ।

खनिज एवं खान व्यवसाय

खनिज मानव को एक वृहत् प्राकृतिक देन है। राजस्थान के विशेष भौगोलिक स्वरूप के कारण यहाँ खनिज पदार्थ वृहत् स्तर पर उपलब्ध थे। यहाँ पर स्थित अरावली पर्वत श्रृंखला के गर्भ में अनेक मूल्यवान धातु और खनिजों के बड़े भण्डार आज भी उपलब्ध है। सिंधु घाटी सभ्यता के निवासी अनेक धातु राजस्थान से प्राप्त करते थे, जिनमें ताम्बा प्रमुख था।[2] आर्य सभ्यता के काल में भी राजस्थान ताम्बे का महत्वपूर्ण स्त्रोत था।[3] मध्यकाल मे राजस्थान के पत्थर सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय थे। मुगलों की अधिकांश इमारतों का निर्माण यहीं के पत्थरों से हुआ था।[4] मध्यकाल में पश्चिमी राजस्थान का खनिज व्यवसाय काफी विकसित था, किंतु आधुनिक काल में अंग्रेजों की सर्वोच्चता के विस्तार के साथ-साथ यहाँ का खनिज व्यवसाय पतन की ओर अग्रसर हो गया। वस्तुतः ब्रिटिश रूचि यहां के उसी कच्चे माल और प्राकृतिक सम्पदा में थी, जो इग्लैण्ड स्थित उद्योगों के कच्चे माल की पूर्ति में सहायक होती थी। ऐसे अनेक दस्तावेज उपलब्ध है, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि, आधुनिक काल में पश्चिमी राजस्थान में खनिजों के दोहन में कमी आयी। अनेक क्षेत्रों की खानें इस काल में बंद हो गयी थी। इससे खनिजों पर आधारित शिल्पों का भी विनाश हो गया। 19 वीं शताब्दी के मध्य तक इस क्षेत्र में संगमरमर और इमारती पत्थर के अतिरिक्त अन्य खनिजों का दोहन बंद हो गया।[5] यद्यपि पश्चिमी राजस्थान में विभिन्न खनिजों के व्यापक भण्डार थे, किंतु अधिक गहराई तक खनन करने की तकनीक के अभाव के कारण अधिक उत्खनन संभव नहीं हो पाया। इसके अतिरिक्त खानों से जल निकासी की भी कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं थी। फिर भी 19 वीं शताब्दी में इस क्षेत्र में लघु पैमाने पर खनन कार्य होता था।

प्रमुख खनिज

लोहा :– लोहे को राजस्थान में प्राप्त होने वाले खनिजों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अरावली की पर्वत श्रेणियों के गर्भ में लोहे के विपुल भण्डार उपलब्ध थे। पश्चिमी राजस्थान में जोधपुर के विभिन्न क्षेत्रों में लोहा पाया जाता था।[6] बीकानेर राज्य में भी लोहे की खानें थी तथा यहाँ के लोहे से निर्मित हथियार सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय थे।[7] 19 वीं शताब्दी के अन्त तक यहाँ की लोहे की खानों से स्थानीय भट्टियों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लघु पैमाने पर लोहा निकाला जाता था। नागौर के लोहार लोहा गलाने के लिए सम्पूर्ण राजपूतानें में प्रसिद्ध थे।[8]

ताँबा :– अलोह धातुओं में ताँबा एक महत्वपूर्ण खनिज था। यद्यपि पश्चिमी राजस्थान में ताँबे का खनन नहीं होता था, किंतु फलौदी के निकट छोटी खानों में न्यूनतम स्तर पर ताँबा मिल जाता था। इसके अतिरिक्त स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ताँबा, उदयपुर, अलवर इत्यादि स्थानों से मंगवाया जाता था।

सीसा एवं जस्ता :– सीसा-जस्ता प्रमुख रूप से अजमेर के निकट तारागढ़ की पहाड़ियों में मिलता था। पश्चिमी राजस्थान के मारवाड़ में जोधपुर के समीप कुछ स्थानों पर और सोजत में सीसा-जस्ता का खनन होता था।[9] सोजत में सीसा शोधन के अनेक भट्टियाँ कार्यरत थी।[10] 1812 ई. तक यह खानें अच्छी तरह कार्यरत थी, किंतु धीरे-धीरे इनमें खनन बंद हो गया।

अन्य धातु खनिज :– अन्य धात्विक खनिजों में जिप्सम एक अन्य प्रमुख खनिज था। यह नागौर के समीप और मारवाड़ के अन्य क्षेत्रों में मिलता था।[11] इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में मिलने वाले धात्विक खनिजों में अभ्रक, निकल, कोबाल्ट इत्यादि प्राप्त होते थे। यह खनिज ताँबे, लोहे आदि की खानों में उन खनिजों के साथ ही प्राप्त होते थे। धातु खनिजों के अतिरिक्त पश्चिमी राजस्थान में अधात्विक खनिजों के व्यापक भंडार थे। धात्विक खनिजों की अपेक्षा अधात्विक खनिजों की यहाँ अधिक संभावनाएँ मौजुद थी।

इमारती और आभूषण पत्थर :– पश्चिमी राजस्थान की विभिन्न चट्टानों से अच्छी कोटि का इमारती पत्थर प्राप्त होता था। इमारत निर्माण में काम में आने वाला चूना पत्थर जोधपुर तथा जैसलमेर में सर्वाधिक प्राप्त होता था, जिसे गलाकर चूना या कली बनायी जाती थी। इसी श्रेणी का घीया पत्थर एक मूल्यवान खनिज था, जो संगमरमर के नाम से भी जाना जाता है।[12] संगमरमर भी जोधपुर तथा जैसलमेर राज्यों में सर्वाधिक मिलता है। जोधपुर राज्य में मकराना की खानों से संगमरमर मिलता है। यह शुद्ध सफेद रंग का और किसी-किसी खान से भूरा या गुलाबी रंग का भी मिलता है। 1879 ई. में मकराना की खानों में लगभग 1,000 आदमी पत्थर को निकालने, कटाई तथा छंटाई के कार्य में संलग्न थे।[13] आगरा का ताजमहल तथा कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल हॉल यहीं के संगमरमर से निर्मित हुआ है।

जैसलमेर का संगमरमर भी काफी प्रसिद्ध था। यह हल्के भूरे रंग का पत्थर होता है तथा धूप में स्वर्ण-प्रभा बिखेरता है। इसका प्रयोग मुस्लिम धार्मिक स्थानों में मकबरे, मजार आदि के निर्माण में होता था।[14] इसका प्रयोग लिथोग्राफिक छपाई में भी होता था। पश्चिमी राजस्थान में बलुआ पत्थर की अनेक किस्में भी उपलब्ध थी। जोधपुर और बीकानेर राज्यों मे बलुआ पत्थर उच्चकोटि का मिलता है। जोधपुर राज्य के मालानी क्षेत्र में बलुआ पत्थर की खानें थी। पश्चिमी राजस्थान में विशेषतः बीकानेर में चिकनी पीली मिट्टी उपलब्ध थी। सतह से 5-6 फीट की गहराई तक इसकी पर्ते थी। इसे मुल्तानी मिट्टी के नाम से पंजाब और सिंध में निर्यात किया जाता था।[15]

कोयला :- 19 वीं शताब्दी के आते-आते कोयला ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्त्रोत बन गया था। पश्चिमी राजस्थान की एक मात्र कोयले की खान बीकानेर राज्य के दक्षिण-पश्चिम में पलाना नामक स्थान पर थी। यहाँ पर कोयले का वृहत्त भण्डार था। 1896 ई. में पलाना में एक कुँआ खोदते समय कोयले के इस भण्डार का पता चला था।[16] यहाँ पर विधिवत् रूप से उत्खनन का कार्य 1898 ई. में प्रारम्भ हुआ।[17] इस कोयले की खान से 1898 ई. में 500 टन प्रति वर्ष कोयले की प्राप्ति होती थी, जो 1904 ई. में बढ़कर 44,000 टन प्रतिवर्ष हो गयी।[18] प्रारम्भ में इस खान में मात्र 100 लोग ही कार्यरत थे, 1939 ई. में यह संख्याँ भी बढ़कर 250 हो गयी।[19] पलाना की कोयला खानों में कोयला 40 से 66 फीट की गहराई पर बालू, कंकर, पीली मिट्टी, मुल्तानी मिट्टी, बलुआ पत्थर आदि की परतों के नीचे उपलब्ध था। यहाँ उपलब्ध कोयले की परत 30 फीट मोटी थी।[20]

नमक :- पश्चिमी राजस्थान में नमक के भारी भण्डार है। नमक रासायनिक खनिजों की श्रेणी में आता है। यद्यपि अरावली पर्वत श्रेणी में नमक की खाने है, किंतु यह नमक अधिक लोकप्रिय नहीं था। पश्चिमी राजस्थान में नमक का मुख्य स्त्रोत खारे पानी की झीलें थी। जोधपुर राज्य में साम्भर, पचपदरा, डीडवाना, फलौदी आदि स्थानों पर खारे पानी की झीलें थी, जहाँ से नमक प्राप्त होता था।[21] इसके अतिरिक्त नमक कुछ नदियों के किनारों से प्राप्त क्षारीय-मिट्टी से भी प्राप्त होता था। भारत में यहाँ का नमक अत्यधिक लोकप्रिय था। नमक यहाँ का सर्वाधिक मूल्यवान खनिज था, जो अंग्रेजों की औपनिवेशिक लिप्सा का शिकार हुआ था।

खनिजों के इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि, पश्चिमी राजस्थान खनिज सम्पदायों की दृष्टि से काफी सम्पन्न था, किंतु इनके दोहन का समयानुकूल और उचित प्रबन्ध नहीं हो पाया। यदि इनका सही प्रयोग होता तो, यह यहाँ के निवासियों की जीविका का वैकल्पिक स्त्रोत बन सकता था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक प्रभावों के कारण यहाँ के खनिज उत्पादों में भारी गिरावट आयी। यूरोप से आयात किये जाने वाले सस्ते खनिज भी यहाँ के खनन पर विपरित प्रभाव डालने लगे। अंग्रेजों ने खान-स्वामियों से ली जाने वाली राजस्व राशि में भी अत्यधिक वृद्धि कर दी, जिससे खान-स्वामी इन खानों के प्रति उदासीन हो गये। खनिजों के खनन में कमी आने का एक अन्य कारण यह भी था कि, पश्चिमी राजस्थान में खनन करने की आधुनिक तकनीकों का अभाव भी था। इसके अलावा यहाँ का धनी वर्ग, जो खनन के विकास हेतु पूंजी लगा सकता था, वह वर्ग भी यहाँ से भारत के अन्य क्षेत्रों में व्यापार की अन्य संभावनाओं हेतु पलायन कर गया। खनिजों पर आधारित बड़े और मध्यम कारखानों का अभाव भी खनिज उत्पादन के विकास में बाधक बना। यद्यपि कुटीर उद्योगों में धातुओं एवं पत्थरों से वस्तुओं का निर्माण होता था। औपनिवेशिक प्रभाव से इन कुटीर शिल्प उद्योगों का भी पतन प्रारम्भ हो गया।

सारांशतः यही कहा जा सकता है कि, पश्चिमी राजस्थान में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के परिणामस्वरूप खनिज खनन का कार्य धीमा हो गया था और अन्ततः बंद ही हो गया था। अंग्रेजी नियंत्रण में यहाँ के आर्थिक संसाधन सीमित हो गये थे। यूरोप से माल के आयात से स्थानीय उत्पादन नष्ट होने लगे थे। स्थानीय उत्पादन नष्ट होने से आयातीत धातु यहां की प्रजा के औपनिवेशिक शोषण का आधार बन गयी थी, जिससे धन-निष्कासन का मार्ग प्रशस्त हो गया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान, आगरा, 1968 पृ. 302*
2. *डी.डी.कोशाम्बी, दि कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन ऑफ एन्शियंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आऊट लाइन, दिल्ली, 1977, पृ. 59*
3. *वही, पृ. 84*

4. डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास, जयपुर, 1993, पृ. 288
5. श्यामलदास, वीर विनोद, पृ. 108-109
6. दि राजपूताना गजेटियर, जिल्द-1, कलकता, 1879, पृ 13
7. वहीं, पृ. 15; दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, जिल्द XXI, पृ. 129
8. बी.एल.गुप्ता, ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान, जयपुर, 1997, पृ. 53
9. डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 294
10. वही.
11. नैणसी, मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग-2, पृ. 423-24
12. डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 298
13. दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, जिल्द XXI, पृ. 130
14. राजपूताना गजेटियर, भाग-1, पृ. 29-30
15. दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, जिल्द XXI, पृ. 130
16. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राजपूताना का इतिहास, जिल्द 5, भाग-1, पृ. 15
17. दि इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, जिल्द XXI, पृ. 128
18. वही.
19. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पूर्वोक्त, पृ. 15
20. डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 300-301
21. वही, पृ. 301

आजादी के बाद राजस्थान में भूमि सुधार के सरकारी प्रयास (1947 ई. से 1970 ई. तक)

निर्मल शर्मा
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान भूमि सूधार एक महत्वपूर्ण मुद्दा था। राजपूताना में अधिकांश भूमि जागीदार के अधीन थी, जागीरदार केवल भूमिपति नहीं थे। बल्कि काश्तकारों एवं भूमिहीन किसानों के जीवन पर उनका कठोर एवं व्यापक नियत्रंण था। ऐसे आर्थिक परिवेश में भूमि सधारों का लागू होना अत्यधिक महत्वपूर्ण था। आजादी के पश्चात् भूमि सूधार के प्रयास राजस्थान सरकार द्वारा किया गया क्रांतिकारी प्रयास था। इसके द्वारा भूधृति के स्वरूप एवं आधार को रूपान्तरित किया गया। ये सुधार राजस्थान में समाजिक एवं आर्थिक विषमताएँ कम करने की और सराहनीय प्रयास था, और ये सुधार असाधारण इसलिए भी है कि इन्हें पूर्ण अंहिसा या बिना किसी वर्ग-संघर्ष के लागू किया गया। अतः उपरोक्त दृष्टि से प्रस्तुत शोध पत्र अत्यधिक प्रासंगिक है।

संकेताक्षर : *जागीरदारी प्रथा, भूधारणा, जंमीदारी या बिस्वेदारी प्रथा, रैय्यतवाडी प्रथा, खालसा, नजराना, खातेदारी, काश्तकार, लागबाग, चकबन्दी, हदबन्दी, सहकारिता।*

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राजस्थान में भी अनेक किसान विद्रोह हुए, जिनका उद्देश्य भूमि सुधार था। आजादी के समय राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था गहरी असमानता लिये हुए थी, जमींदारी प्रणाली राजस्थान में सदियों से प्रबल थी। गरीब किसान जमींदारों के अत्याचारों के शिकार हुए। भारी मात्रा में भूराजस्व का भुगतान करने पर भी किसानों का भूमि पर कोई अधिकारी नहीं था। राजपूताने की विभिन्न रियासतें एक दूसरें से भिन्न थी। जिनमें आकार, जनसंख्या, राजनीतिक महत्व ओर प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से अनेक रूपता विद्यमान थी। इस सब रियासतों में दोहरा शासन था, और मध्ययुगीन परम्पराओं का बोलबाला था। इनकी अधिकांश भूमि ऐसे बिचौलियों के पास थी जिनसे भूमि उपज का बहुत कम हिस्सा खेतिहर एवं शहरी जनता के पास पहुँच पाता था, राज्य का गठन कुछ इस तरह का था, कि भूमि आय राज्य की आय होते हुए भी राज्य की आय नहीं थी। राज्य का स्वरूप सामन्तवादी था।

राजस्थान की इन अलग-अलग रियासतों में भूधारणा के अधिकार अलग-अलग थे ही, साथ ही हर रियासत की भौगोलिक स्थिति भी परस्पर विरोधी और भिन्न थी। तत्कालीन राजस्थान में काफी बड़े क्षेत्र ऐसे थे जहाँ कोई भू-मानन और बन्दोबस्त नहीं हुए थे, और भूमि अभिलेखों का भी कोई अस्तित्व नहीं था। दूसरी ओर यहाँ ऐसी रियासतें भी थी जिनमें लगान के लिए भूमि की पैमाइश और बन्दोबस्त के कार्य सम्पन्न हो चुके थे तथा बन्ददोबस्त में कई बार संशोधन भी किये जा चुके थे।[1] कुछ क्षेत्रों में व्यावहारिक दृष्टि से भूमि का कोई मूल्य ही नहीं था। जबकि दूसरे इलाकों में यदि अधिक नहीं तो भारत के अत्यन्त उपजाऊ भागों की भूमि के समान ही महत्त्व था।

वस्तुतः राजस्थान एकीकरण से पूर्व विषमताओं से परिपूर्ण था, और यह अलगाव पहली बार राजस्थान के एकीकरण के बाद टूटा। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान किसान आन्दोलन का मुख्य मुद्दा भूमि सुधार था, परन्तु आजादी के साथ ही यह माँग जोर पकड़ने लगी। अतः केन्द्र में बनी काँग्रेस सरकार ने इस दिशा में कार्य करने के लिए जे.सी. कुमारप्पा की अध्यक्षता में कृषि सुधार समिति का गठन लिया।[2] अतः कुमारप्पा समिति की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को भी कृषि सुधार के सम्बन्ध में दिशा-निर्देश जारी किये। वस्तुत : राजस्थान सरकार ने भी भूमि सुधारों के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य किये।

जागारदारी प्रथा : राजस्थान की स्थापना के समय राज्य में ऐसे विशाल क्षेत्र थे, जिनका भू-राजस्व विभिन्न श्रेणी के पट्टेदारों को दिया जाता था जो समाान्यतया जागीरदारों के नाम से जाने जाते थे। सम्पूर्ण राजस्थान की दृष्टि से पूरे क्षेत्र के 60 प्रतिशत भाग में जागीरदारी प्रथा थी। दूसरी तरह से देखें तो कुल 34,648 गाँवों में से 16,780 जागीरी गाँव थे।[3] जागीरी क्षेत्रों में जागीरदार सरकार को नजराना देने का जिम्मेदार था। इस नजराने के विभिन्न नाम थे। जागीरदार उपज के एक भाग को लगान के रूप में वसूल करते थे। विभिन्न इकाइयों में यह भग आधे से आठवें हिस्से तक भिन्न-भिन्न परिणामों में वसूल किया जाता था। ऐसे जागीर क्षेत्र जहाँ बन्दोस्त नहीं हुआ था। खातेदान जागीरदार का कृपापात्र था। जमीनें नीलाम की जाकर सबसे ऊँची बोली लगाने वालों को दे दी जाती थी, जिसके परिणामस्वरूप अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा चलती थी, लगाने बढ़ते जाते थे और भूमि की हालत बदत्तर होता जाती थी।

जमींदारी या बिस्वेदारी : जागीरदारी प्रथा के अतिरिक्त राजस्थान में मध्यस्थता की एक श्रेणी और थी। कुछ क्षेत्रों में उन्हें जमींदार और अन्य क्षेत्रों में बिस्वेदार कहा जाता था। जमींदारी या बिस्वेदारी प्रथा राजस्थान के 8 जिलों में फैले हुए 4750 गाँवों में पाई जाती थी।[4] यह प्रथा अधिकांशतः अलवर, भरतपुर और गंगानगर जिलों में थी। इसे 19वी शताब्दी में बन्दोबस्त अधिकारियों द्वारा चालू किया गया। ये जमींदार और बिस्वेदार सरकार को निश्चत भू-राजस्व देते थे किन्तु उनके काश्तकारों द्वारा जो लगान की रकम उन्हें अदा की जाती थी, वह भोक्ता कृषकों के रूप में इन्द्राज शुदा लोगों के मामले को छोड़कर, निर्धारित नहीं हो पाई थी। इसके विपरीत जमींदार और बिस्वेदार अपने काश्तकारों से मनमानी दरों पर लगान वसूल करने को स्वतंत्र थे। काश्तकार उनकी कृपा पर निर्भर थे और जमींदार और बिस्वेदारों की इच्छानुसार उन्हें बेदखली का शिकार होना पड़ता था।

रैय्यतवाड़ी क्षेत्र : राजस्थान का शेष क्षेत्र जहाँ जागीरदारी, जमींदारी और बिस्वेदारी के अधीन नहीं थी, रैय्यतवाड़ी प्रथा के अन्तर्गत थी। जहाँ सरकार का काश्तकार से सीधा सम्बन्ध था।

भूतपूर्व रियासतों के खातेदारी कानून : राजस्थान के निर्माण के समय अधिकांश भूतपूर्व रियासतों में खातेदारी कानून लिपिबद्ध थे। परन्तु ये अधिनियम दकियानूसी तरह के थे, जो केवल मौजूदा तौर-तरीकों को कानूनी रूप देने के लिए बनाये गये थे, तथा प्रत्येक रियासत में भिन्न-भिन्न थे। एक ही रियासत में जागीर क्षेत्र व खालसा क्षेत्र के काश्तकारों के अधिकारों मे अन्तर था। संक्षेप में, जयपुर रियासत में पट्टेदार काश्तकारों को बीकानेर रियासत में भोक्ता कृषकों को, उदयपुर, जोधपुर, बाँसवाड़ा और किशनगढ़ रियासतों में बापदीरों और खदमदारों को और प्रतापगढ़, टोंक व कोटा रियासतों मे ंखातेदारों को हस्तान्तरण का पूरा हक था। जबकि अन्य सभी काश्तकारों को भूमि हस्तान्तरित करने के अधिकार प्राप्त करने के लिए बंधी हुई रकम-प्रीमियम या 'नजराना' देना पड़ता था। जागीर क्षेत्रों के काश्तकारों को उपभोक्ता अधिकार बिलकुल नहीं थे, पेड़ो पर तथा भूमि विकास करने के अधिकार भी अलग-अलग रियासतों में अलग-अलग थे।

जागीरदारी एवं जमींदारी प्रथा का उन्मूलन

राजस्थान निर्माण के तुरन्त बाद राज्य सरकार ने भारत सरकार दिशा-निर्देश पर जागीरदारी प्रथा की समाप्ति के उलझे हुए प्रश्न को हल करने में सहयता देने के लिए ऐसी समिति नियुक्त की, जिसका काम उन जागीरदारी सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना था। अत : भारत सरकार के राज्य मंत्रालय ने राजस्थान और मध्य भारत में प्रचलित भूमि-भोगावधि प्रथाओं का अध्ययन करने तथा जागीरी उन्मूलन के लिए समुचित सिफारिशे पेश करने के उद्देश्य से अगस्त 1949 में राजस्थान-मध्य भारत जागीर जाँच समिति की स्थापना की। यह समिति आमतौर पर वेकटाचार समिति के नाम से जानी जाती है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट दिसम्बर, 1949 में पेश की जिसके आधार पर भूमि सुधार और जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम पारित हुआ।

जागीरों का पुनर्ग्रहण :- राजस्थान भूमि सुधार एवं जागरी पुनर्ग्रहण अधिनियम, 1952 को 18 फरवरी, 1952 से अमल में लाया गया।[5] इसके अन्तर्गत भूमि के पुनर्ग्रहण, भू-राजस्व के लिए उनके कर निर्धारण, जागीर भूमि में काश्तकारों को खातेदारी अधिकारों की स्वीकृति देने तथा जागीर भूमियों के पुनर्ग्रहण के बदले में मुआवजा देने का प्रावधान था।[6] किन्तु जागीरों के पुनर्ग्रहण की वास्तविक प्रक्रिया में दो वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने तक भी आरम्भ नहीं की जा सकी। कारण यह था कि कुछ जागीरदारों ने दस्तावेज देकर

राजस्थान हाईकोर्ट से स्थगन आदेश प्राप्त कर लिये। बाद में जागीरदारों ने सरकार से समझौता वार्ता आरम्भ की और इस बम्बन्ध में जिन मुद्दों पर फैसला न हो सका, उनको सुलझाने के लिए दोनों पक्षों ने भारत के प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू को पंच मान लिया।[7] पण्डित नेहरू ने नवम्बर, 1953 में अपना फैसला दिया। इसके फलस्वरूप जागीर पुनर्ग्रहण अधिनियम में कई महत्त्वपूर्ण संशोधन किये गये और 1954 का राजस्थान अधिनियम स. 23 प्रचारित किया गया। मुख्य संशोधनों में यह एक भी था, जिसके अनुसार 5000 रूपये से कम वार्षिक आमदनी वाली जागीरों को मुक्त रखे जाने का प्रावधान समाप्त कर दिय गया।

जागीरदार लोगों द्वारा सरकार में नजराना जमा कराने की परम्परा भी इस अधिनियम से समाप्त हो गई। इस अधिनियम में यह भी उल्लेख था, कि जागीरी को क्षेत्र का प्रत्येक किसान, जिसके पास काश्तकारी के पैतृक और पूर्ण हस्तान्तण के अधिकार है आगे भी अपने ऐसे अधिकारों का उपयोग करता रहेगा। अधिनियम में जागीरदार को उसकी खुद काश्त जमीनों (जागीरदार की खुद की खेती के अन्तर्गत भूमि) के लिए खाते दारी अधिकार प्रदान किये जाने का भी प्रवधान था। अधिनियम के अनुसार केवल उन जागीरों को छोड़कर जो मूलतः दान की गई है। और जिनकी आमदनी किसी धार्मिक पूजा के स्थान के निर्वाह में अथवा किसी धार्मिक सेवा के अनुष्ठान के लिए उपयोग में आती है। शेष सभी जागीरों का पुनर्ग्रहण किया जायेगा।[8] जागीरदारो को वास्तविक आमदनी का सात गुना मुआवजा दिया जायेगा, जो कि 24 समान वार्षिक किश्तों में अथवा जागीरदार की इच्छा हो तो 30 समान छमाही किश्तों में चुकायी जायेगी।

वस्तुतः जागीर पुनर्ग्रहण का कार्य जून, 1954 में आरम्भ हुआ, जब कि राजस्थान की सबसे बड़ी जागीर सीकर और खेतड़ी पुनर्ग्रहण की गई और जागीर पुनर्ग्रहण के कार्य को जल्दी ही पूर्ण कर लिया गया, हालाँकि इसमें कानूनी अड़चनें बनी रही। इस प्रकार जागीर पुनर्ग्रहण से सम्बन्धित आखिरी आदेश 21 जून, 1963 को जारी किया गया। इसके अनुसार सभी 2,98,896 जागीरें पुनर्ग्रहीत कर ली गई और जागीरदारों को मुआवजे के रूप में लगभग 46 करोड़ का भुगतान किया गया। वस्तुतः जागीरदारी प्रथा का उन्मुलन निसन्देह एक उल्लेखनीय सफलता थी।

जमींदारी और बिस्वेदारी प्रथा की समाप्ति : राजस्थान विधानसभा में जमींदारी व बिस्वेदारी को समाप्त करने का बिल अप्रैल, 1958 में प्रस्तुत किया गया, जिसे दिसम्बर, 1958 में पारित कर दिया गया। 1 नवम्बर, 1959 से राजस्थान जमींदारी और बिस्वेदारी समाप्ति अधिनियम, 1959 लागू हुआ।[9] इस अधिनियम के प्रभावाधीन सभी जमीदारी और बिस्वेदारी की जमीन सरकार के पास आ गई तथा जमीदारों और बिस्वेदारी पर कोई कर्ज हो तो उसकी देनदारी भी सरकार ने ली उसे राज्य सरकार मुआवजा देगी। जमींदारी या बिस्वेदारी के स्वामित्व सरकार को सौंपने के बाद जमींदार व बिस्वेदार अपनी खुदकाश्त जमीन का मालिक होगा और मालिक की हैसियत से खातेदार के सभी देनदारियों का देनदार भी होगा और बिस्वेदार और जमींदार जिनकी जमीन सरकार ने ले ली है। उसके काश्तकार खातेदार हो गये हैं।

वस्तुतः जागीरदारी और जमींदारी/बिस्वेदारी उन्मूलन अधिनियमों ने कृषकों के पहले से ही निजी स्वामित्व के अधिकारों को प्रभावित किये बिना राजस्थान लैण्ड रिफॉर्म एण्ड एक्वीसिशन ऑफ लैण्डआनर एस्टेट्स एक्ट, 1963 पास किया, जिसका उद्देश्य जमीन पर खातेदारों के अधिकारों को मजबूत करना था।[10] उल्लेखनीय है कि 1965 तक सरकार द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों के लागू होने में राजस्थान में जमींदारी एवं जागीरदारी प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन हो चुका था।

अजमेर क्षेत्र में मध्यस्थता प्रथा की समाप्ति : अजमेर क्षेत्र में 1 नवम्बर, 1956 को अजमेर भूमि सुधार और मध्यस्थता समाप्ति अधिनियम, 1955 के अधीन बड़े मध्यस्थ श्रेणी के लोगों की जमीन सरकार द्वारा ले ली गई थी। छोटे इस्तमरार और माफीदारों की जुलाई, 1957 में समाप्त कर दी गई। अजमेर में इस प्रकार 12537 जागीरें पुनर्ग्रहीत की गई।

काश्तकारी सुधार

जमींदारी उन्मूलन के बाद भी जमींदरी क्षेत्रों में मौखिक और बिना रिकॉर्ड वाले काश्तकारी के मसले बरकारार रहे, इसलिए भूमि सुधारों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य काश्तकारी से सम्बन्धित कानून बनाना था। राजस्थान के भू-भाग में राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी विविध थी, कि काश्तकारी कानूनों एवं उनके अमल में भारी अन्तर था।

वस्तुतः राजस्थान बनने बाद कृषकों की हालत में सुधार लोने के लिए अनेक नियम बनाये गये। वैसे तो 1949 से ही अध्यादेशों के जरिए सुधारात्मक एवं प्रगतिशील कदम इस दिशा में उठाये जाने लगे थे। किसानों को मनमानी बेदखली से बचाने के लिए जून 1949 में राजस्थान प्रोटैक्शन ऑफ टेनेट्स अध्यादेश जारी किया गया, इसी क्रम राजस्थान रिमूवल ऑफ ट्रीज अध्यादेश 1949 में जारी किये गये।[11] परन्तु अन्य काश्तकारी अधिनियम के पारित होने पर इनको निरस्त कर दिया गया।

राजस्व नियमों का एकीकरण : वृहत्तर राजस्थान के निर्माण को 1 महीना भी नहीं हुआ था, कि राजस्थान सरकार ने राजस्थान में सम्मिलित होने वाली विभिन्न रियासतों के राजस्थान नियमों के एकीकरण के लिए एक समिति नियुक्त की। श्री ए.ए. खैरी इस समिति के संयोजक थे। इस समिति ने जुलाई, 1949 के अंत में एक विस्तृत काश्तकारी विधेयक और सम्पूर्ण भूमि राजस्व विधेयक के प्रारूप सहित अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।[12] किन्तु 1955 के पहले एकीकृत काश्तकारी अधिनियम लागू नहीं हो पाया।

काश्तकारी संरक्षण अध्यादेश : जागीरदार, जर्मीदार और अन्य जमीन के मालिकों ने इस आशा में कि काश्तकारों को विधि-विहित अधिकार दिलाने वाले कानून बनाये जा रहे हैं। अपने किसानों को मनमाने तौर पर उनकी जर्मीनों से बेदखल करना अथवा कब्जा छीनना शुरू कर दिया। इन भारी संख्या में होने वाली बेदखलियों को रोकने के उद्देश्य से खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि के व्यापक हितों को दृष्टि में रखते हुए, जून 1949 में दूसरा अध्यादेश प्रचारित किया गया जिसका नाम काश्तकार संरक्षण आध्यादेश था।[13] इस अध्यादेश में उन किसानों को उनकी जमीन शीघ्र वापस दिलाने की व्यवस्था हैं। जिन्हे कानून के खिलाफ बेदखल किया गया या जमीनों पर से जिनका कब्जा छीन लिया गया था। इस प्रकार मनमाने तौर पर होने वाली बेदखलियों को अन्त करने की दिशा में राजस्थान संभवतः भारत में पहला राज्य था। सम्पूर्ण राजस्थान के काश्तकारों ने इस अध्यादेश से पूरा-पूरा लाभ उठाया। इससे उन्हें पूरी सुरक्षा प्राप्त हुई और स्वेच्छाचारितापूर्ण बेदखलियों और स्वत्वापहरणों का अंत हो गया।

राजस्व मण्डल : सम्पूर्ण राजस्थान के लिए नवम्बर, 1949 में एक एकीकृत रेवेन्यू बोर्ड कायम किया गया और भिन्न-भिन्न राज्यों में काम करने वाले सभी रेवेन्यू बोर्ड समाप्त कर दिये गये।[14] माली मामलों के सम्बन्ध में अपील, पुनर्विचार और निर्देश के लिए राजस्व मण्डल को राज्य में रेवेन्यू की सबसे बड़ी अदालत घोषित किया गया। माल की सभी अन्य अदालतें और अधिकारीगण पर इस मण्डल की सामान्य देखभाल और नियंत्रण हैं।

सम्पूर्ण राजस्थान के लिए एक विस्तृत कानून बनाये जाने तक राजस्व न्यायालयों और अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र और कार्यप्रणाली की व्यवस्था एवं नियमन के लिए एक अधिनियम जनवरी, 1951 में पारित किया गया।

खेती की पैदावार में जागीरदारों द्वारा वसूल किये जाने योग्य लगान के हिस्से के सम्बन्ध में सभी झगड़ों को सुलझाने और उक्त हिस्से को अधिकतम मात्रा निर्धारित करने के उद्देश्य से सरकार ने जून, 1951 में राजस्थान उपज में से ज्यादा से ज्यादा चौथाई हिस्सा जागीरदार को दिये जाने की व्यवस्था थी।[15]

कृषि भाटक नियंत्रण : राज्य के जर्मीदारी क्षेत्रों में जर्मीदार लोग काश्तकारों से बहुत अधिक लगान वसूल करते थे। लगान के भारी बोझ से किसानों की कमर टूट रही थी। सरकार ने इस अत्यधिक लगान वसूली के संकट से काश्तकारों को मुक्त करने के लिए 'राजस्थान कृषि भाटक नियंत्रण अधिनियम, 1952' बनाया। इस कानून के लागू होने से उक्त संकट का खात्मा हो गया। इस अधिनियम के अनुसार जर्मीदार किसानों से उतना ही लगान वसूल कर सकता है, जो सेटलमेंट द्वारा जमीन के लिए निर्धारित राजस्व की रकम से दुगुना होता हो।[16]

अस्थायी बन्दोबस्त : राजस्थान के उन क्षेत्रों में जहाँ कि बन्दोबस्त नहीं हुआ, अस्थायी तौर पर नकदी लगान पद्धति का विकास करने के लिए आवश्यकतानुसार अस्थायी बन्दोबस्त किया जाना लाभकारी समझा गया। सितम्बर, 1953 में राजस्थान भूमि अस्थायी बन्दोबस्त अधिनियम, 1953 पारित किया गयां। यह अधिनियम सरकार को बिना बन्दोबस्त वाले क्षेत्रों में अस्थायी बन्दोबस्त कराने का अधिकार प्रदान करता है।[17] तथा वेकटाचार समिति के सुझावो के अनुसार लगान को नगद रूपयों में वसूल करने की पद्धति के अन्तर्कालीन कदम की भाँति अपनाने का एक सरल तरीका प्रस्तुत करता हैं।

राजस्थान काश्तकारी अधिनियम : राजस्थान काश्तकारी विधेयक राजस्थान विधानसभा द्वारा सितम्बर, 1954 में पारित किया गया था तथा इसे 24 मार्च, 1955 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। यह 25 अक्टूबर, 1955 से लागू हुआ। यह अधिनियम ने केवल कृषि योग्य भूमि पर काश्तकारी से सम्बन्धित कानून में सुधार करके एकरूपता लाता हैं। बल्कि इसमें भूमि सुधार के निश्चित तरीको का उल्लेख है। इस अधिनियम की गणना भारत के श्रेष्ठतम प्रगतिशील काश्तकारी अधिनियमों में की जा सकती हैं।[18] राजस्थान में पहले जहाँ अनेक प्रकार के काश्तकार जैसे खातेदार काश्तकार, मालिक, खुदकाश्त खातेदार और गैर खातेदार काश्तदार रह गये हैं। इस अधिनियम के प्रचलित होने पर जो काश्तकार था, वह खातेदार काश्तकार बन गया। खुदकाश्त करने वाले काश्तकारों तथा शिकमी काश्मकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे जमीन के मालिक को मुआवजा देने पर खातेदारी प्राप्त करने के लिए आवेदन-पत्र दे सकते है। खातेदार को रहने के लिए घर बनाने के वास्ते उस गाँव की आबादी में जहाँ उसकी खेती बाड़ी है। मुक्त जमीन प्राप्त करने का भी अधिकार दिया गया था।

सभी काश्तकारों को विरासत सम्बन्धी अधिकार दिए गये हे। कोई भी खातेदार काश्तकार अपनी इच्छानुसार विरासत कर सकता है। खातेदार काश्तदार अपनी जमीन को 10 साल तक के लिए रहन भी रख सकता हैं और इस अवधि के बाद जमीन खातेदार को वापिस मिल जायेगी। एकजुट करने के लिए काश्तकार अपनी जमीन अदला-बदली भी कर सकते है। अधिनियम में कृषि स्वामित्व के समर्पण, त्याग तथा समाप्ति के सम्बन्ध में तथा सुधार लाने के लिए अधिकार के सम्बन्ध मे व्यापक रूप से उल्लेख हैं। अधिनियम में लगान को हल्का करने या दर में संशोधन करने तथा कृषि संकट की स्थिति में लगान की छूट देने और वसूली को आगे सरका देने के सम्बन्ध में भी सामान्य प्रावधान हैं इस अधिनियम में उपज भाटक नियमन अधिनियम, 1951 और कृषि भाटक नियंत्रण अधिनियम, 1952 की प्रासंगिक धाराओं का समावेश कर लिया गया।[19]

वस्तुतः अनेक बार अधिनियम में संशोधन किये गये। (राजस्थान काश्तकारी (संशोधन) अधिनियम, 1961) इन संशोधनों का मूल उद्देश्य काश्तकारी अधिकारों का विस्तार करना था। काश्तकारी अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावशाली बनाने के लिए विस्तृत नियम बनाये गये, ये नियम राजस्थान काश्तकारी (सरकारी) नियम, 1955 और राजस्थान काश्तकारी (राजस्व मण्डल) नियम, 1955 हैं।

भू-राजस्व अधिनियम : राजस्थान भू- राजस्व अधिनियम, 1956 पर मई, 1956 में राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और इसको 1 जुलाई, 1956 से लागू किया गया।[20] इस अधिनियम में भूमि से सम्बन्धित कानूनों का संशोधन एवं एकीकरण समाहित हैं। राजस्व न्यायालयों और राजस्व अधिकारियों की नियुक्तियाँ, अधिकार और कर्त्तव्य, नक्शें और भू-आलेखों की तैयारी और रख-रखाव, राजस्व और लगान का बन्दोबस्त जायदादों का बँटवारा तथा राजस्व का एकत्रीकरण एवं प्रासंगिक मामलों के सम्बन्ध में यह अधिनियम कानूनी दृष्टि सें पूर्ण प्रकाश डालता हैं।[21] अधिनियम के परिच्छेद 2 में राजस्व मण्डल, राजस्थान जो कि राजस्व की सर्वोच्च अदालत है, के सम्बन्ध और संदर्भ दिये गये हैं। एक राजस्व बोर्ड जिसमें एक अध्यक्ष एवं कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात अन्य सदस्य समाविष्ट हों, कि स्थानना के प्रावधान है।[22]

यह अधिनियम (राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956) भू- प्रबंध एवं भू-स्वराज की वसूली की कार्य-विधियों (प्रक्रियाओं) के गठन की व्यवस्था है। राजस्थान डिसकन्टीन्यूएन्स ऑफ सेसेज एक्ट, 1959 में उन विभिन्न उप-कारों की समाप्ति का प्रावधान है, जो कुछ अपवादों सहित कृषि भूमि पर लगान के अतिरिक्त वसूल किये जाते थे।[23]

इस अधिनियम के माध्यम से सरकार द्वारा अनधिकृत भूमि को भी भूमिहीन किसानों को आवंटन का प्रावधान रखा गया। राजस्थान काश्तकारी अधिनियम अधिनियम, 1955 और राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 दोनों का ही राजस्थान कानून (प्रसार) अधिनियम, 1958 आबू, अजमेर और सुनेल क्षेत्रों के अन्तर्गत प्रसारित कर दिया गया। इस प्रकार समस्त राजस्थान में एकरूप ये काश्तकारी एवं राजस्व कानूनों का पालन होने लगा।

लागबाग की समाप्ति : काश्तकारी अधिनियम में लागबान की वसूली के लिए लगाई गई पाबंदी के बावजूद राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकारकी लागबाग पुरानी रियासतों के कायदे कानूनों के

अन्तर्गत ली जा रही थी। इन लागबागों को समाप्त करने के लिए समय-समय पर विभिन्न अधिनियम पारित किये गये। इनमें से कुछ इस प्रकार है। डूँगरपुर कानून लेख (खण्डन) अधिनियम, 19561 राजस्थान हक-ए-मालिकाना समाप्ति अधिनियम, 1958 तथा राजस्थान लालबाग समाप्ति अधिनियम, 1959।

भूमापन, आलेख व बन्दोबस्त के कार्य : राजस्थान में अव भूमापन (सर्वे) आलेख (रिकॉर्ड्स) और बन्दोबस्त की स्थिति नितान्त संतोषप्रद हैं। भूमि आलेखों के संरक्षण के लिए एक समुचित संगठन राजस्थान में भूमि आलेख विभाग के रूप में काम कर रहा हैं। राजस्थान के लिए लैण्ड रिकॉर्ड्स मेन्युअल बनी हुई। जिसमें भूमि आलेखों को तैयार करने और उनकी रक्षा करने के सम्बन्ध में विस्तृत निर्देश है।[24]

कृषि ऋण सहायता : राजस्थान में कृषक ऋण समस्या की और राज्य सरकार का ध्यान प्रथम आम चुनावों के तत्काल पश्चात् आकर्षित हुआ। राजस्थान में उक्त विषय के कोई एक से नियम प्रचलित नहीं थे।

वस्तुतः कृषक ऋणों की समस्या को हल करने के प्रयोजनार्थ राजस्थान कृषि ऋण अधिनियम, 1956 पारित किया गया, जो 1957 से प्रभाव में आया। अधिनियम राज्य सरकार द्वारा कृषि प्रयोजनों के लियें दिये जाने वाले ऋण की राशि से सम्बन्धित कानून में संशोधन करता है। इसके द्वारा उन विभिन्न मदों की सूची भी तैयार की जाती है। जिनके लिये ऋण स्वीकृत किये जाते हैं और ऋणों की स्वीकृति की शर्तो भी।

भूमि वितरण : वैयक्तिक काश्तकार व भूमिहीन व्यक्तियों को गैर उपनिवेश, गैर परियोजना क्षेत्रों में भूमि देने का कार्य राजस्थान भू-राजस्व (कृषि कार्यो के लिए भूमि वितरण) नियम, 1957 के अन्तर्गत संचालित होता है। इन नियमों के अन्तर्गत वितरण कार्य गैर सरकारी व्यक्तिों की सलाहकार समिति के सुझावों पर होता है। दी गई भूमि के लिए मूल्य नहीं लिया जाता था, व प्राप्तकर्ता, कुछ रेगिस्तानी इलाकों को छोड़कर जहाँ तीन वर्ष के लिए भूमि दी जाती हैं अन्त में खातेदारों के अधिकार प्राप्त करने योग्य समझा जाता है। योजना व उपनिवेश क्षेत्रों के लिए अलग-अलग नियम थे। राजस्थान में प्रथम व द्वितीय पंचवर्षीय योजना व तृतीय योजना के नवम्बर, 1962 के तीसरे सप्ताह तक 12,91,800 एकड़ सरकारी कृषि भूमि उन खेतिहर मजदूरों में वितरित की जा चुकी हैं जिनके पास भूमि नहीं थी।[26]

जोतों की चकबन्दी

भारत में जोतों की चकबन्दी का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रथम तथा द्वितीय दोनों पंचवर्षीय योजनाओं ने इस समस्या पर समुचित ध्यान दिया और इनकी आवश्यकता को प्रतीत किया। भूमि की चकबन्दी का उद्देश्य किसी भू-स्वामी की विभिन्न स्थानों पर फैली व बिखरी भूमि को एक स्थान पर लाना था, जिसके द्वारा भूमि की उपयोगिता बढ़ सके। चकबन्दी में होने वाले व्यय के क्रमश : (ए (व) के अनुपात में राज्य सरकार, केन्द्र सरकार व भू-स्वामी भागीदार होते थे।[27] अनिवार्य रूप से चकबन्दी करने के लिए सरकार ने राजस्थान कृषि स्वामिव्व (चकबन्दी व खण्डल निरोध) अधिनियम, 1954 में बनाया। इस अधिनियम के लागू होने से आशा है कि खेतों के छोटे टुकडों से होने वाली हानि का अन्त हो जायेगा और जोतों की चकबन्दी का कार्यक्रम हाथ में लिया जा सकेगा। यह अधिनियम सरकार को खेतों का एक निश्चित आकार प्रकार निर्धारित करने सम्बन्ध अधिकार प्रदान करता है।[28]

अधिनियम के परिच्छेद 2 व 5, 11 दिसम्बर, 1954 से प्रभाव में आए जबकि अधिनियम के शेष परिच्छेद समय-समय पर राजस्थान के चुने हुए क्षेत्रों जैसे नदी घाटी योजनाओं में आने वाले इलाकों, सामुदायिक योजना क्षेत्रों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड़ों के अधीन क्षेत्रों में प्रयोग में लाये गये। कृषि स्वामित्व की चकबन्दी का वास्तविक कार्य मई, 1957 में प्रारम्भ हुआ और अप्रैल, 1963 तक चकबन्दी विभाग द्वारा 1746 गाँवों की लगभग 31,03,436 एकड़ भूमि की चकबन्दी की जा सकी। इसके अतिरिक्त 352 व 625 एकड़ भूमि की चकबन्दी क्रमशः संचालक, भू-एकत्रीकरण, बीकानेर व उप-निदेशक आयुक्त बीकानेर द्वारा की गई।[29]

कृषि स्मावित्व की हदबन्दी

कृषि स्वामित्व की हदबन्दी के आरोपण का प्रश्न अत्यन्त महत्तवपुर्ण है। दोनों प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में इस समस्या पर समुचित ध्यान दिया गया। राजस्थान काश्तकार अधिनियम, 1955 द्वारा पहले से ही हदबन्दी लागू कर दी गई। उसके अनुसार कृषि स्वामित्व की उच्चतम सीमा 30 एकड़ सिंचित भूमि और 90 एकड़ असिंचित भूमि हैं।[30]

इसी सन्दर्भ में सरकार ने कृषि स्वामित्व की हदबन्दी के नये मापदण्ड तय करने के उद्देश्य से नवम्बर, 1953 में सरकारी और गैरसरकारी सदस्यों की एक समिति नियुक्त की। इस सीमा निर्धारण समिति की एक उप-समिति ने राज्य में प्रचलित स्थितियों की नवीनतम जानकारी प्राप्त करने तथा भूमि, वर्षा, फसलों का रंग-ढंग उपज आदि में सम्बन्धित सही तथ्य एकत्र करने के उद्देश्य से राजस्थान का दौरा किया। इस उप-समिति ने कतिपय प्रस्ताव भी तैयार किये।[31]

वस्तुतः उक्त समिति के प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए, राजस्थान भूधृति (छठा संशोधन) बिल, 1959 एवं राजस्थान काश्तकार (भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारण) नियम, 1963 के आधार पर हदबंदी के नये मानक तय किये गये। जिसके अनुसार 30 एकड़ भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई, जो पाँच व्यक्तियों का एक परिवार अपने कब्जे में रख सकता है।[32] इससे अधिक भूमि राज्य सरकार को समर्पित करनी होती थी। समर्पित भूमि, भूमिहीनों को आंवटित की जाती थी।

सहकारी आन्दोलन

पचंवर्षीय योजनाओं में सहकारिता पर बहुत जोर दिया गया। राजस्थान में सहकारिता आन्दोलन की काफी प्रगति हुई। राज्य में 1958 तक 7500 सहकारी समितियाँ काम कर रही थी, जिनकी सम्पूर्ण सदस्य संख्या लगभग 45,000 तक हिस्सों की पूँजी करीब एक करोड़ थी। राजस्थान सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1953 सहकारी कृषि समितियों को नियमन करता है।[33]

जनवरी, 1959 में राजस्थान सरकार ने राजस्व मंत्री की अध्यक्षता में एक समिति, सरकारी भूमि व अधिकतम सीमा कानून के लागू करने पर प्राप्त होने वाली भूमि पर, सहकारी खेती प्रचलित करने के विषय पर जाँच करने को नियुक्त की थी। सहकारी समिति को भूमि वितरण करने के लिए मई, 1959 में राजस्थान सहकारी समिति भूमि अधिनियम, 1959 बनाया गया। उक्त नियमों के अर्न्तगत शीघ्र ही सहकारी समितियों को भूमि प्रदान करने का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया।[34]

राज्य भूमि आयोग

जो सुधार पहले से लागू कियें जा चुके थे, उनका अध्ययन करने और वे वास्तव में वहाँ तक कार्यान्वित हुए इसकी जाँच करने एवं उनकी कार्यान्विति के लिए अथवा ऐसे आगामी सुधारों के लिए जो कि आवश्यक हों, सिफारिशें प्रस्तुत करने तथा भूमि प्रबंध सम्बन्धी कानून कायदों का मसविरा बनाने की सितम्बर 1956 में एक राज्य भूमि आयोग नियुक्त किया। मुख्यमंत्री आयोग के अध्यक्ष और राजस्व मंत्री उपाध्यक्ष बनाये गये। श्री ए.ए. खैरी इसके सदस्य सचिव थे। भूमि सुधारों के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर जनता की राय जानने के लिए आयोग ने एक प्रश्नावली प्रचारिता की।[35]

भूमि सुधारों के उद्देश्य

राजस्थान में काश्तकारी और भूमि सुधार के जो कानून बनाये गये है। वे भारत के संविधान के चतुर्थ खण्ड में वर्णित सरकारी नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप है और इन सुधार कानूनों में योजना आयोग द्वारा प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में की गई सिफारिशों का भी ध्यान रखा गया। इन सुधारों का लक्ष्य सम्पत्ति और आय में विषमता को घटाना, शोषण का अन्त करना, काश्तकार और मजदूर को सुरक्षा प्रदान करना और अन्ततः ग्रामीण जनता के विभिन्न वर्गों को समान स्तर और अवसर से आश्वस्त करना। खेती की पैदावार में खेतिहर ढाँचें के तौर-तरीके से उत्पन्न होने बाली बाधाओं को दूर किया जा सके।

राजस्थान में लागू कियें गये भूमि सुधारों के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राज्य में सामन्तवाद का ही नहीं बल्कि उन अर्द्ध- सामन्ती सम्बन्धों का भी अन्त हो गया, जो औपनिवेशिक कृषि व्यवस्था की मुख्य विशेषता थी। भूमि को जोतने वाले काश्तकार और राज्य सरकार के बीच की मध्यस्थता की कड़ी समाप्त हो गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह सिफारिश की गई कि भूमि सम्बन्धी नीति ऐसी होनी चाहिए, जिससे लोगों की पूँजी एवं आय में अन्तर कम हो, शोषण समाप्त हो तथा काश्तकारों की सुरक्षा की रक्षा की जाए और ग्रामीण जनता के विभिन्न वर्गों को समान अवसर तथा स्तर प्रदान किया जाये।

वस्तुतः भूमि सुधारों में काश्तकारों के लिए न केवल लगान व भूमि को रखने की अवधि ही निश्चित की गयी, बल्कि अन्धाधुन्ध लगान भूतकाल की वस्तु बन गया। काश्तकारों को पैतृक भूमि प्राप्त करने और अधिकाशं मामलों मे हस्तान्तरण के अधिकार दे दिये गये। जैसलमैर जिले के कुछ रेगिस्तानी इलाकों को छोड़ करीब-करीब सम्पूर्ण राजस्थान का सर्वेक्षण हो चुका और सर्वेक्षण द्वारा नकद लगान निर्धारित किये

गये। अधिकार के सम्बन्ध में नियमित रिकॉर्ड तैयार किया गया और खसरा व जमाबन्दी इत्यादि के रूप में नियमित रजिस्टर रखे जाते हैं। अब काश्तकारों को उनके अधिकार व दायित्व सम्बन्धी कोई रिकॉर्ड़ के न होने की वजह से नुकसान नहीं उठाना पड़ता। पूँजी व आय के भेदभाव को कम करने के लिए तथा समान अवसर व स्तर प्रदान करने के लिए प्रयत्न के किया गया।

इस प्रकार बिना हिंसा का प्रयोग किए, आधुनिक जनतांत्रिक ढाँचें के तहत व्यापक भूमि सुधार किए गए। राज्य ने औपनिवेशिक काल के समान कृषि से अधिशेष लेने के बजाए अब खेती के विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। इन्हीं भूमि सुधारों का परिणाम था कि साठ के दशक के मध्य तक पूरे किए गए संस्थागत सुधारों और प्रमुख संस्थागत निवेशों के आधार पर राजस्थान ही नहीं बल्कि पूरा भारत तकनीकी सुधारों पर आधारित हरित क्रांति के रूप में कृषि परिवर्तनों के अगले महत्त्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
2. *चन्द्र बिपिन, आजादी के बाद का भारत।*
3. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
4. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
5. *वही।*
6. *राजस्थान जिला गजेटियर, चितौड़गढ़, 1987*
7. *Administration Report, Jagir Department, 1953-54*
8. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
9. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
10. *Gupta, L.C., Land Ceiling and After, Jaipur, 1994*
11. *राजस्थान जिला गजेटियर, सीकर, 1988*
12. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सर्म्पक कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
13. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
14. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
15. *वही, पृ. 7*
16. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
17. *Dool Singh, A Study of Land Reforms in Rajasthan, 1964*
18. *Gupta, L.C., Land Ceiling and After, Jaipur*
19. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
20. *वही, पृ. 14*
21. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
22. *वही, पृ. 15*
23. *राजस्थान जिला गजेटियर, सीकर, 1987*
24. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
25. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
26. *राजस्थान जिला गजेटियर, चितौड़गढ़, 1984, पृ. 267*
27. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
28. *राजस्थान जिला गजेटियर, भीलवाड़ा, 1984, पृ. 334*
29. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
30. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*
31. *वही, पृ. 15*
32. *राजस्थान जिला गजेटियर, भीलवाड़ा, 1984, पृ. 335*
33. *Administration Report, Government of Rajasthan, 1958-59*
34. *दशोरा, भँवरलाल एवं चतुर्वेदी भगवतशरण, राजस्थान प्रगति के पन्द्रह वर्ष, 1965*
35. *राजस्थान में भूमि सुधार, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय राजस्थान, जयपुर, 1958*

नरेंद्र कोहलीः व्यक्तित्व और कृतिव

दीक्षा गुप्ता
शोधार्थी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत विषय 'नरेंद्र कोहलीः व्यक्तित्व और कृतित्व' में वर्तमान सत्य को नरेंद्र जी के रचनाओं और उनके जीवन के माध्यम से भली-भांति समझने में सहायक सिद्ध होगी। नरेंद्र जी का जीवन ही साहित्यमय था, जिसके माध्यम से समाज में फैली बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, चापलूसी, दुराचार, भाषिक संघर्ष आदि की तफतीश की गई है।

संकेताक्षर : *ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्र, दाम्पत्य जीवन, हिंदी भाषा का महत्व, निम्न मध्य्वर्ग, व्यंग्य ।*

'महाकाव्यात्मक उपन्यास' विधा के आरम्भकर्ता नरेंद्र कोहली अपने आप में एक विशिष्ट नाम है। कोहली जी पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से वर्तमान सत्य को उजागर करते हैं, यह उनकी विशिष्टता है। लेखक पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों को खुद के कितने करीब और घुला मिला पाते थे, यह उनके दोनों बेटों के नाम से भी हम जान सकते हैं, उनके दोनों पुत्रों का नाम अगस्त्य और कार्तिकेय है। उनकी यह खासियत है कि इन्होंने लेखन कार्य को बहुत प्यार दिया इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने प्राध्यापक कार्य में सेवारत रहते हुए भी स्वैच्छिक लेखन के लिए 1995 में ही स्वयं अपने पद से इस्तीफा दे दिया। नरेंद्र कोहली जी का साहित्यिक अवदान बहुत अधिक है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण, आलोचना, व्यंग्य, नाटक आदि गद्य विधाओं पर अपनी कलम चलाई। उनकी रचनाएं हैं- उपन्यासः पुनरारंभ, आतंक, आश्रितों का विद्रोह, साथ सहा गया दुःख, मेरा अपना संसार, दीक्षा, अवसर, जंगल की कहानी, संघर्ष की ओर, युद्ध, अभिज्ञान, आत्मदान, प्रीतिकथा, बंधन, अभ्युदय, अधिकार, कर्म, निर्माण, साधना, धर्म, क्षमा करना जीजी, अंतराल, प्रच्छन्न, प्रत्यक्ष आदि हैं। कहानियों की बात करें तो लेखक ने बहुत सारी कहानियां लिखी हैं। उनके नाम हैं- परिणति, कहानी का अभाव, दृष्टि देश में एकाएक, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, नरेंद्र कोहली की कहानियां, संचित भूख, समग्र कहानियां, मेरी 13 कहानियां। उनके कुछ नाटक है- शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, समग्र नाटक, संघर्ष की ओर, किष्किंधा, अगस्त्य कथा। इनके कुछ व्यंग्य साहित्य हैं- एक और लाल तिकोन, पांच एब्सर्ड उपन्यास, जगाने का अपराध, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियां, परेशानियां, आत्मा की पवित्रता, गणतंत्रा का गणित, देश के शुभचिंतक, त्राहि-त्राहि, इश्क एक शहर का आदि। इनके कुछ निबंध भी हैं- नेपथ्य, माजरा क्या है, जहां है धर्म वही है जय, किसे जगाऊं? आदि। कुछ बाल साहित्य भी लेखक ने लिखे हैं- गणित का प्रश्न, आसान रास्ता, एक दिन मथुरा में, हम सब का घर, तुम अभी बच्चे हो, समाधान, कुकुर आदि। इनके संस्मरण है- बाबा नागार्जुन और प्रतिनाद। उन्हें कई पुरस्कारों और सम्मान से सम्मानित किया गया है वे हैं- राज्य साहित्य पुरस्कार 1975 से 76 (साथ सहा गया दुःख) शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार 1977 से 78(मेरा अपना संसार) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। इलाहाबाद नाट्य संघ पुरस्कार1978(शंबूक की हत्या) इलाहाबाद नाट्य संगम। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार 1979 से 80(संघर्ष की ओर) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ। मानस संगम साहित्य पुरस्कार 1978 कानपुर। श्री हनुमान मंदिर सहित अनुसंधान संस्थान विद्यावृति 1982, कोलकाता। साहित्य सम्मान 1985-86 हिंदी अकादमी, दिल्ली। साहित्यिक कृति पुरस्कार 1987 से 88 (महासभा 1, बंधन) हिंदी अकादमी, दिल्ली। कामिल बुल्के पुरस्कार 1989-90 राजभाषा विभाग, बिहार सरकार, पटना। चकल्लस पुरस्कार 1991 (समग्र व्यंग्य साहित्य), मुंबई।

अट्टहास शिखर सम्मान 1994 (समग्र साहित्य) साहित्यिक संस्थान, लखनऊ। शलाका सम्मान 1996 हिंदी अकादमी, दिल्ली। साहित्य भूषण 1998 (समग्र साहित्य) उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ।

नरेंद्र कोहली जी को समझने के लिए उनके जीवन के साथ उनकी रचनाओं का भी विषद अध्ययन करना जरूरी है। वे अपने साहित्य में अपनी रोजमर्रा की जिंदगी को किसी न किसी रूप में व्यक्त करते दिखाई पड़ते हैं। महेश दर्पण जी के शब्दों में– ''नरेंद्र कोहली यानी धनी खेत शाम दाढ़ी चश्मे के भीतर से बाहर का सब कुछ समेट लेने को आतुर आंखें और मित्रों में बेहद व्यावहारिक और प्रैक्टिकल व्यक्ति के रूप में चर्चित यानी घर के भीतर तो एक जिम्मेदार पिता और पति है ही बाहर भी एक बेहतर इंसान और जिम्मेदार सामाजिक के रूप में जाना जाता है या व्यक्ति जो सच पूछिए तो नीचे से ऊपर तक साहित्यिक है।''[1]

कोहली जी बाहर से बहुत ही हंसमुख विनोदी और जिंदादिल व्यक्तित्व वाले हैं, साथ ही वह एक बहुत ही अच्छे शिक्षक भी थे। वे अपने विद्यार्थियों को बड़े ही प्रेम से पढ़ाते थे और उनसे पढ़ाई के साथ–साथ उनकी निजी समस्याओं पर भी उन्हें सुझाव देते थे, उनका मार्गदर्शन करते थे। वह अपने विद्यार्थियों के बीच एक अच्छे शिक्षक के रूप में जाने जाते थे। उनके शिष्यों का कथन है– ''नरेंद्र कोहली जी के रूप में हमें वह गुरु मिले जो मनुष्य थे, ईश्वर नहीं, जो हमारे साथ हंस–हंसकर खेल सकते थे, साथ बैठकर खाना खिला सकते थे, हमारे प्रश्नों का समुचित उत्तर दे सकते थे और हमारी जिज्ञासाओं का पूर्ण समाधान कर सकते थे।''[2]

कोहली जी का व्यक्तित्व बहुत ही अद्‌भुत था। वह बहुत ही ईमानदार थे। लेखन अध्यापन अध्ययन पारिवारिक और सामाजिक संबंध सभी में उनकी ईमानदारी कायम रही। वे अपने लेखन में भी बड़ी ही ईमानदारी के साथ पौराणिक ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से वर्तमान सत्य को उजागर करते थे। उन्होंने स्वयं 'दीक्षा' उपन्यास की आधार भूमि में लिखा है– ''कह नहीं सकता कि यह एक मात्र संयोग ही था या मेरी मानसिक प्रक्रिया ही अनुकूल हो गई थी मुझे देश में घटित अनेक घटनाओं में तालमेल बैठता दिखाई पड़ने लगा। अपने समाज में छिपे राक्षस मेरे सामने प्रकट होने लगे, उनके पास शारीरिक शक्ति थी, क्रूर मस्तिष्क था, मानवीय मूल्य थे, अमर्यादित धन था और इन उपकरणों के माध्यम से उन्होंने राज्य सत्ता को निस्तेज बना रखा था।''[3]

अपने अध्यापन में सदैव विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते रहें तथा उनकी समस्याओं को समझते हुए उन पर अपना स्नेह बरसाते रहे। पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में भी वह बहुत उत्तरदायी भूमिका निभाते रहें। उनकी पत्नी का तो स्वयं कहना है कि वह एक अच्छे पति और एक अच्छे पिता थे। वे अपने समय में एक अच्छे विद्यार्थी भी थे, हालांकि उन्होंने अपने जीवन में कभी भी खेल के क्षेत्र में कोई पुरस्कार प्राप्त नहीं किया परंतु वे वाद–विवाद प्रतियोगिता, निबंध प्रतियोगिताओं में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त करते थे। वे पढ़ने में भी बहुत अच्छे थे। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कोहली जी का जीवन शुरू से लेकर आखिरी तक एक साहित्यिक जीवन ही था। वे बचपन से ही लिखना शुरू कर चुके थे। कोहली जी अपने बचपन में बहुत ही शांत और सरल स्वभाव के थे। वह बचपन में नटखट नहीं थे। उनकी मां को कभी पड़ोसियों से उनकी शिकायत नहीं सुननी पड़ी। वे अपना कार्य सही समय पर कर लेते थे।

नरेंद्र कोहली जी अपने जीवन के प्रथम अधूरे प्रेम, नौकरी, विवाह, संतान का जन्म और संतान की मृत्यु आदि घटनाओं से बहुत प्रभावित थे, इससे उनका साहित्य भी अछूता नहीं रह पाया। सन् 1966 में जब उनकी पहली संतान जन्म लेने के चार माह बाद ही चल बसी, उसके बाद ही उनमें व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ। उन्होंने उसी दौरान 'किरचे', 'दूसरी आया', 'साथ सहा गया दुख' आदि रचनाएं लिखीं।

कोहली जी की रचनाओं के केंद्र में निम्न मध्यवर्ग ही रहा है। उपन्यास हो या कहानी हो या व्यंग्य हो या नाटक हो या आत्मपरक निबंध हो या रचनात्मक निबंध हो या बाल साहित्य आदि सभी साहित्य कोहली जी का निम्न मध्य वर्ग और शोषितों के चित्रण से भरा पड़ा है। यह एक ऐसा वर्ग है, जो सदैव समस्याओं के बीच अपनी जिंदगी की गाड़ी को जीने के बजाय खींचता है या यूं कहें जिंदगी को काटने के लिए मजबूर दिखाई पड़ता है जिसका अपना कोई निश्चित व्यवसाय या नैतिकता नहीं है। यह वर्ग उच्च वर्ग जैसा बनना तो चाहता है पर बन नहीं पाता है। जीवन कश्मकश में ही बीतती दिखाई पड़ती है। लेखक इसी वर्ग पर अपना कलम अधिक चलाते दिखाई पड़ते हैं।

नरेंद्र कोहली जी ने अपना लेखन कार्य उर्दू भाषा से

शुरू किया परंतु बाद में उन्होंने अपनी समस्त रचनाएं हिंदी भाषा में ही लिखीं। उन्होंने विविध विषयों पर अपनी कलम चलाई। इनके उपन्यास बहुत ही समृद्ध विशाल तथा ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्रों पर आधारित दिखाई पड़ते हैं। उनकी कहानियां परंपरागत जीवन मूल्य पर आधारित है। इनका व्यंग्य साहित्य भी बहुत ही प्रौढ़ और समृद्ध दिखाई पड़ता है। इन्होंने बाल साहित्य भी लिखे हैं, जो मनोवैज्ञानिक धरातल पर खड़ा दिखाई पड़ता है।

कोहली जी हमारे समाज में फैली रूढ़ि, पाखंड, अंधविश्वास और कुरीतियों आदि के सख्त विरोधी थे। उन्होंने सदैव समाज की ऐसी रुढ़ियों और परंपराओं को तोड़ा है, जो हमारे समाज के विकास में बाधा प्रकट करती है।उनका विचार है कि समाज का विकास जड़ परंपराओं को तोड़कर ही हो सकता है। वे ऐसा केवल कहते ही नहीं थे बल्कि उन्होंने अपने जीवन में भी इस सिद्धांत को पूरे मन से अपनाया था।इसका प्रमाण उनकी रचना 'त्रासदियाँ' में देखने को मिलता है। वे लिखते हैं– ''जिस चीज का रिवाज था, अर्थात दहेज का– वह हमने लिया नहीं, क्योंकि हम पुराने रिवाजों को तोड़ना चाहते थे। यह क्रांति हमारे ससुराल वालों को बहुत भायी थी, पर हमारे मायके वाले कुछ विशेष प्रसन्न नहीं थे। हमने अपनी क्रांति के चक्कर में अपनी भाभियों और मौसियों–चाचियों को अपनी ससुराल से मिलने वाली साड़ियों से वंचित कर दिया था। तो पुरानी परंपराएं हमने तोड़ दी।''[4]

इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्रों के माध्यम से वर्तमान सत्य को प्रस्तुत किया गया है। 'महासमर' उपन्यास आठ खंडों में लिखा एक सबसे वृहत्तम पौराणिक उपन्यास है, जिसमें महाभारत की विविध कथाओं के माध्यम से जीवन सत्य, जीवन मूल्य, स्वार्थ, सत्ता, बाह्य और आंतरिक मनोदशा, प्रकृति और प्रवृत्ति की लड़ाई, जीवन और सृष्टि के बीच के सत्य को उजागर करने की कोशिश की है। इस उपन्यास को लिखने में लेखक को पंद्रह वर्ष लग गए थे। यह उपन्यास भीष्म से आरंभ होकर भीष्म पर ही समाप्त होता है। उपन्यास का आरंभ 'बंधन' से हुआ था और खत्म 'निर्बंध' पर होता है। 'तोड़ो कारा तोड़ो' उपन्यास स्वामी विवेकानंद के जीवन चरित्र पर आधारित है। इस उपन्यास में लेखक ने अपने अदम्य धैर्य का परिचय दिया है। लेखक ने इस उपन्यास में स्वामी विवेकानंद के आरंभिक जीवन से उनके निर्माण,साधना, परिव्राजक, निर्देश और संदेश को बड़ी सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। 'दीक्षा' उपन्यास में रामायण की कथाओं में से विश्वामित्र के आश्रम में राक्षसों के उत्पात, राम का विवाह और परशुराम के पराजय तक की कथा का वर्णन किया गया है। लेखक ने अपने इस उपन्यास में भी जन सामान्य पर हो रहे शोषण, समाज के प्रति बुद्धिजीवियों के कर्तव्य, समाज में नारी का स्थान, स्त्री–पुरुष संबंध, जाति और वर्ण की विशेषताओं, लोलुप और स्वार्थी बुद्धिजीवियों इत्यादि विषयों का बड़ा ही विशद और क्रांतिकारी विश्लेषण किया है। 'अवसर' उपन्यास अयोध्या कांड पर आधारित एक पौराणिक उपन्यास है, जिसमें यह दिखाया गया है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी प्रजा का भार स्वयं उठाना चाहिए और उस पर हो रहे अत्याचारों का भी विरोध करना चाहिए। 'संघर्ष की ओर' उपन्यास में लेखक ने राम कथा के माध्यम से आदिवासी जातियों के उत्थान और उन पर हो रहे शोषण को प्रस्तुत किया है। 'युद्ध' नामक उपन्यास दो खंडों में लिखित है जिसमें रामकथा को ही आधार बनाकर राजा के ऐश्वर्य गरीबों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। 'अभिज्ञान' उपन्यास कृष्ण और सुदामा की कथा पर आधारित है।

'साथ सहा गया दुःख' उपन्यास लेखक ने एक दंपत्ति के जीवन के उतार–चढ़ाव और उनके बीच के समझौतों, तनाव पर लिखा है। यह उपन्यास लेखक ने उस समय लिखा था, जब उनकी पहली बच्ची चार महीने जीने के बाद ही गुजर गई। इस उपन्यास के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने कहीं ना कहीं अपने ही जीवन में झेल रहे जद्दोजहद और तनाव को अमित और सुमन के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास हिंदी साहित्य की एक अत्यंत प्रौढ़ कृति है।

नरेंद्र कोहली ने अपने सभी साहित्यिक रचनाओं में व्यंग्य जरूर किया है, चाहे वह उपन्यास हो, कहानी हो, नाटक हो या निबंध हो। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से जनमानस पर व्यंग्य किए हैं। लेखक ने अपनी व्यंग्य रचना 'संस्कृति से बिछुड़ने का रोग' में एक बच्चे के रात भर रोने के माध्यम से देश की दुर्दशा पर व्यंग्य किया है। 'कथा पुरानी मैत्री की' व्यंग्य रचना में लेखक ने समाज पर तीखा व्यंग्य किया है, जो एक लड़का और लड़की को एक मित्र के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसके माध्यम से लेखक यह बताते हैं कि हमारा

समाज बहुत ही जड़ और रूढ़िवादी परंपराओं से घिरा हुआ है। 'हिडिंबा का घर' व्यंग्य रचना में समाज की गरीबी पर व्यंग्य किया है। 'एक और लाल तिकोन' व्यंग्य रचना में हिंदी को तुच्छ समझने वालों और अंग्रेजी को अच्छा समझने वालों पर करारा व्यंग्य किया गया है। लेखक इस रचना के माध्यम से यह कहते हैं कि लोगों में अंग्रेजी इस तरह रच-बस गई है कि वह हमारी राजभाषा हिंदी को कोई महत्व नहीं देते हैं, उन्हें अपना संपूर्ण विकास अंग्रेजी पठन-पाठन में ही दिखाई पड़ती है। 'रिसर्च एक्सपीरियंस' में नेताओं, चापलूसों पर व्यंग्य किया गया है। 'आधुनिक व्यक्ति की संहिता', 'कर्तव्यनिष्ठ पड़ोसी', 'अकाल पीड़ित देश और दूध का मेंढक' आदि इनके ऐसे ही कई व्यंग्य रचनाएं हैं।

लेखक के यहां हिंदी भाषा को दोयम समझे जाने वाले लोगों के लिए व्यंग्य और फटकार है। वे अपनी हिंदी भाषा से बहुत प्रेम करते थे। उनका मानना था कि हिंदी एक ऐसी भाषा है, जो भारत के सभी प्रांतों को आपस में जोड़ने का काम करती है। वह हमारी राष्ट्रभाषा-राजभाषा है, फिर भी उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है, जो गाहे-बगाहे अंग्रेजी को प्राप्त हो गया है। आज लोगों की मानसिकता यही है कि अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़े-लिखे विद्यार्थी ही ज्यादा सक्षम,काबिल और प्रतिभावान होते हैं। वहीं दूसरी ओर हिंदी माध्यम के स्कूलों में पढ़े हुए जाहिर है, आर्थिक रूप से कमजोर विद्यार्थियों को सक्षम, तुच्छ और अनपढ़ समझा जाता है, क्योंकि अंग्रेजी माध्यम से पढ़े हुए बच्चों की तुलना में इन्हें अंग्रेजी बोलना कम आता है। गांधी से लेकर बड़े-बड़े विद्वानों ने भी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण करने को महत्व दिया है, परंतु भारत का यह दुर्भाग्य ही है कि वह आज भी भाषा के मामले में आत्मनिर्भर नहीं बन पा रही है। सभी को लगता है कि अंग्रेजी में पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही नौकरी प्राप्त करने का अधिकारी है, भले ही वह सक्षम हो या ना हो उसमें काबिलियत हो या ना हो। कोहली जी ने हमारे भारतीय परिवेश में व्याप्त इस सत्य को अच्छी तरह समझते थे कि लोगों में अंग्रेजी के प्रति एक मोह पैदा हो गया है। उन्हें बिल्कुल भी पसंद नहीं था इसीलिए अपने एक व्यंग्य रचना में इस स्थिति का खुलकर पर्दाफाश किया है और लोगों को समझाया है कि हिंदी हमारी मातृभाषा है और प्रत्येक सफल देश का विकास अपनी मातृभाषा में ही हो सकता है।

नरेंद्र कोहली जी अपने समय के सबसे अधिक यथार्थवादी लेखक दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने समग्र युग को अपने साहित्य में उपस्थित करने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में मानव और मानव मन की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनका लिखने का ढंग, चरित्र चित्रण, भाषा, विधाओं के रूप, कथ्य, वास्तविकता की मौजूदगी, यथार्थ, पौराणिक और मिथक के माध्यम से वर्तमान की प्रस्तुति, ग्रामीण जीवन, स्त्री दशा, पहाड़ी जीवन, दांपत्य रिश्ता, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि सभी तत्वों का समग्र चित्रण एक साथ नरेंद्र कोहली जी की साहित्य में देखने को मिलता है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कोहली जी अपने समकालीनों में बहुत ही आगे थे और उनके साहित्य का जितना भी अध्ययन किया जाए हर बार कोई ना कोई हिस्सा छूट ही जाता है। उन्होंने इतना कुछ और इतनी समग्रता के साथ लिखा है कि उनके साहित्य का अध्ययन बार-बार और गहराई से करने की जरूरत है। इनके साहित्य में जीवन का सार और अनुभव का मोती है जिस से गुजरने की सभी को जरूरत है। लेखक ने अपने जीवन में जो भी होगा जो भी अनुभव प्राप्त किया उन सभी को अपने साहित्य में विषय बनाकर कथा के माध्यम से पाठकों के समक्ष रखा। कोहली जी ने अपनी कृतियों में बहुत-सी ऐसी समस्याओं पर सवाल उठाए हैं जिसके जवाब आज भी प्राप्त नहीं हो पाए हैं। अतः कोहली जी का जाना हमारे साहित्य जगत के लिए एक बहुत बड़ी क्षति है। पद्मश्री से सम्मानित नरेंद्र कोहली जी भले ही वह इस नश्वर शरीर का त्याग कर चुके हैं परंतु वह हमारे साहित्य संसार में और हमारे जीवन में अपनी रचनाओं के माध्यम से सदैव जीवित रहेंगे। उनकी विचारधारा सदैव हमारे बीच जीवित रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कोहली नरेंद्र, समग्र कहानियां, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2009, प्रस्तावना से ।*
2. *महेश ईशान, सृजन साधना, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-1 जनवरी 1995, पृष्ठ- 127*
3. *कोहली नरेंद्र, दीक्षा उपन्यास, पराग प्रकाशन, तृतीय संस्करण-1979, दिल्ली, आधार भूमि से ।*
4. *कोहली नरेंद्र, त्रासदियाँ, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण-1952, त्रासदी एक घर की, पृष्ठ संख्या-11*

सिक्खों के बीकानेर राज्य के साथ सम्बन्ध : ऐतिहासिक अध्ययन (20वीं शताब्दी में)

डॉ. रश्मि मीना
सहायक आचार्य, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पंजाब के दक्षिणी भू-भाग में स्थित होने के कारण बीकानेर में सिक्खों का निरन्तर आव्रजन की पृष्ठभूमि में धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियां निहित थीं। इसके प्रमाण विभिन्न ऐतिहासिक दस्तावेजों यथा – 'दयालदास की ख्यात', 'चिट्ठी व खतां री बही', 'सावा बही' इत्यादि में उल्लेखित हैं। परन्तु 26 अक्टूबर, 1927 ई. में बीकानेर महाराजा गंगासिंह जी के अथक प्रयासों से निर्मित 'गंग नहर' परियोजना ने मूर्त रूप धारण किया तथा इससे सिंचित होने वाले भू-भाग में बड़ी संख्या में सिक्ख काश्तकार बसते चले गये। गंग नहर क्षेत्र में सिक्ख आबादी निरन्तर बढ़ती गई। वर्ष 1931 की बीकानेर जनगणना रिपोर्ट के अनुसार सिक्ख आबादी 40469 थी, जो कि बीकानेर की कुल जनसंख्या का 4.3 प्रतिशत भाग था, जबकि सन् 1901 में बीकानेर में इनकी संख्या 1481 तथा 1911 में 8214 थी। बीकानेर में सिक्ख आव्रजन के विभिन्न राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभाव परिलक्षित होते हैं। समय के साथ गंग नहर क्षेत्र में निवासरत सिक्ख मजबूत राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित हो गये तथा अपने अधिकारों की रक्षा हेतु आन्दोलन करने लगे। कृषि एवं व्यापार के क्षेत्र में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। गंग नहर क्षेत्र में रबी व खरीफ की फसलों का व्यापक स्तर पर उत्पादन होने लगा तथा कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना भी हुई। व्यापारिक गतिविधियां बढ़ने के परिणामस्वरूप अब बीकानेर राज्य सड़क एवं रेलवे मार्गों से पंजाब से जुड़ गया, जिससे यहां सिक्खों का आवागमन और अधिक सहज हो गया। स्वंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1949 ई. में बीकानेर राज्य का विलय 'राजस्थान' में कर दिया गया। सिक्ख समुदाय बीकानेर राज्य के मजबूत आधार-स्तम्भ साबित हुए तथा बीकानेर राज्य के इतिहास में इनका अविस्मरणीय योगदान रहा।

संकेताक्षर : *गंग नहर, मि. रूडकिन, चक, पूगल, दीवान, फकीर।*

राजपूताना का दूसरा सबसे बड़ा राज्य 'बीकानेर' राजपूताना के सबसे उत्तरी भाग में स्थित था। इस राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमाएं बहावलपुर से, दक्षिण-पश्चिमी सीमाएं जैसलमेर राज्य से, दक्षिण-पूर्वी सीमाएं शेखावाटी क्षेत्र (जयपुर) से, दक्षिणी सीमाएं मारवाड़ राज्य से, पूर्वी सीमाएं लोहारू एवं हिसार से तथा उत्तर-पूर्वी सीमाएं फिरोज़पुर परगने से लगी हुई थीं।[1] बीकानेर राज्य की स्थापना मारवाड़ के राठौड़ शासक राव जोधा के छठे पुत्र राव बीका द्वारा, अपने चाचा रावत कांधल की सहायता से, वि.सं. 1529 (1472 ई.) में की थी।[2] राव जैतसी (1526-1542 ई.), राव कल्याणमल (1542-1574 ई.), रायसिंह (1574-1612 ई), अनूपसिंह (1669-1698 ई.), सरदारसिंह (1851-1872 ई.), डूंगरसिंह (1872-1887 ई.) तथा महाराजा गंगा सिंह (1887-1943 ई.) इस राज्य के प्रतापी शासक हुए, जिन्होंने राजपूताना के विभिन्न राज्यों की मध्य बीकानेर राज्य का सुरक्षित अस्तित्व बनाये रखा।

बीकानेर राज्य के, पंजाब के दक्षिणी भू-भाग में स्थित होने के कारण इस राज्य में सिक्खों का आव्रजन निरंतर होता रहा। सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव ने राजपूताना के विभिन्न भागों, यथा – पुष्कर, अजमेर, भीलवाड़ा इत्यादि की यात्रा की। गुरु गोविन्द सिंह जी ने नारायणा, नीमच आदि स्थानों की यात्रा की थी। 1708 ई. में गुरू गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद बन्दा बहादुर सिक्खों के राजनीतिक नेता बनें। उन्होंने मुगल सेना से अपने गुरू

गोविन्द सिंह व उसके पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिए स्थान-स्थान पर युद्ध किए। सिक्खों ने मुगल सेना को अनेक स्थानों पर भयानक पराजय दी, जिसके परिणामस्वरूप मुगल सेना का दवाब सिक्खों पर बढ़ने लगा। बादशाह फरूर्खसियर ने सन् 1716 ई. में बन्दा बहादुर को गुरूदासपुर में घेरकर पकड़ लिया व बाद में उनकी हत्या करवा दी। इसके बाद मुगल शासकों ने लम्बे समय तक सिक्खों पर अत्याचार किए। इन्हीं अत्याचारों तंग होकर सिक्खों को पंजाब से बाहर जाना पड़ा और इसी क्रम में वे मरूभूमि बीकानेर की तरफ आए। बिना किसी उचित प्रमाण के इस आगमन की निश्चित तिथि नहीं बताई जा सकती तथापि बड़ी संख्या में अनेकों सिक्ख लड़ाके उत्तरी राजपूताने के तरफ आए। कुछ ने राजकीय सेना और प्रशासन में अपनी जगह बनायी तो कुछ अन्य कृषि कार्यों में संलग्न हो गए।

बीकानेर राज्य में सिक्खों की उपस्थिति के उल्लेख विभिन्न ऐतिहासिक दस्तावेजों में मिलते हैं, जैसे – दयालदास री ख्यात, गैजेटीयर ऑफ दी बीकानेर स्टेट (पाउलेट), बीकानेर की चिट्ठी व खतां री बही (वि.सं. 1820, 1763 ई.), सावा बही, राजगढ़ (बीकानेर, वि. सं. 1863-64, 1817 ई.), कागद बही (बीकानेर, वि.सं. 1920, 1863 ई.) इत्यादि। इन बहियों में सिक्खों का राजकीय वित्त से दिये गये वेतन[3], सैनिकों के घायल होने पर राजकीय सहायता तथा अन्य आर्थिक मदद देने के उल्लेख मिलते हैं।[4]

नादिरशाह के भारत से जाने के एक वर्ष पश्चात् (1740 ई.) जाट एवं सिक्ख मिलकर सरहिंद की ओर बढ़े और वहां उत्पात मचाया। मुगल बादशाह मुहम्मद शाह को जब इसकी सूचना मिली तो उसने अज़ीमुल्ला खां को इनके पीछे भेजा। अज़ीमुल्ला खां सरहिंद की ओर बढ़ा तथा जाटों और सिक्खों को दबाकर वापस शाहजहानाबाद लौट गया। इसके साथ ही सिक्खों पर चारों तरफ से मुगल दबाव बढ़ा दिया गया तथा मुगल सरदार ने एक आदेश जारी कर कहा कि जो व्यक्ति सिक्खों को अपने यहां शरण देगा उनको मृत्यु दंड दिया जायेगा। इन आदेशों से सिक्खों के कष्ट बढ़ते गए तथा विवश होकर उन्होंने पंजाब के मैदानी इलाकों को छोड़ दिया और जम्मू और कांगड़ा पहाड़ियों, मालवा और बीकानेर के मरूस्थलों तथा लखों जंगल की ओर निष्क्रमण प्रारम्भ कर दिया।[5]

'बीकानेर राज्य का इतिहास' (ओझाकृत) में बीकानेर के महाराजा सूरत सिंह (1787-1828 ई.) के समय में सिक्खों के साथ सम्बन्धों का पता चलता है। बीकानेर राज्य के उत्तरी हिस्सों में भटिंडा व उनके समीपवर्ती सरदारों ने निरन्तर लूटपाट जारी रखी। इन लूटेरों ने भटिंडा से पांच कोस दक्षिण में फतहगढ़ का सुदृढ़ दुर्ग बना लिया। जार्ज टामस ने भट्टियों के साथ मिलकर फतहगढ़ पर अधिकार कर लिया। इस खतरे से निपटने के लिए बीकानेर की सेना को पटियाला के सिक्ख शासक से एक हजार सवारों की सैन्य सहायता प्राप्त हुई व भट्टियों तथा जार्ज टामस (जार्ज फिरंगी) को लौटना पड़ा। फतहगढ़ के युद्ध में बीकानेर की सेना में अन्य सरदारों के साथ सिक्ख टीकासिंह व साथी आसकर्ण भी सम्मिलित हुए। युद्ध में बीकानेर की सेना विजित रही। बाद में सिक्ख टीकासिंह व ज्ञानसिंह, 500 घुड़सवारों के साथ गढ़ पर ही रखे गये।[6]

भैया संग्रह के पत्रों के आलोक में यह दृष्टिगोचर होता है कि महाराजा सूरतसिंह ने स्थानीय चूरू, सांडवा, भूकरका, मैनसर, भटनेर, सीधमुख, नोहर के विद्रोही ठाकुरों के दमन के लिए पटियाला सिक्ख रियासत से सिक्ख सेना बुलाई। भैया संग्रह के ये पत्र, जो सन् 1815-16-17 ई. के आस-पास लिखे गये हैं, राजकीय आय-व्यय स्थिति व सिक्खों की सेना की रसद आपूर्ति और इससे बढ़ते राजकीय व्यय को इंगित करते हैं। ये पत्र बीकानेर दरबार के भैया जेठमल के व नोहर के हवलदार नाथमल के बीच समाचार व परिस्थानिक का वर्णन करते हैं।[7] ये पत्र इस प्रकार हैं –

बीकानेर से भैया जेठमल का नाथमल को पत्र

(भादवा सुदि 5 संवत् 1872, 1815 ई.)

सूचना : भादरा विजय के बाद सिक्ख सेना सीधमुख व दद्रेवा को नियंत्रित करेगी, फिर सीकर जायेगी।

दूसरे पत्र (भादवा बदि 7, संवत् 1872, 1815 ई.) में बीकानेर से मोहता अभयसिंह व मोहब्बतसिंह (दीवान) ने हुवलदार भैया नाथमल के पत्र के उत्तर में यह लिखा है, जिसमें पटियाला सिक्खों की फौज के गंधीली पहुंचने व इनसे शिष्टाचार रखने की ताकीद की गई है। अगला पत्र स्व. महाराजा सूरतसिंह के हस्ताक्षर से युक्त है जिसमें महाराजा ने नोहा के भैया नाथमल को आदेश दिया है कि वह गंधीली में उत्तरी पटियाले की फौज के साथ अच्छा शिष्टाचार रखे।[8] इन पत्रों के माध्यम से बीकानेर राज्य की कमजोर आन्तरिक स्थिति का आभास होता है कि राज्य को

विद्रोह दबाने व भट्टियों पर नियंत्रण के लिए सिक्ख सेना की आवश्यकता थी। लेकिन साथ ही सिक्ख सेना को देने के लिए पर्याप्त कोष का भी अभाव दृष्टिगत होता है। यह भी परिलक्षित होता है कि सिक्ख सैनिकों की ज्यादातियों के सहने के लिए राज्य कर्मचारी विवश थे।

महाराजा रत्नसिंह (1828–1851 ई.) के काल में लोढ़सर के विद्रोही बीदावत सरदार रूपसिंह को पकड़ने को भेजी गयी राजकीय सेना में ठाकुर भरतसिंह, भोपाल सिंहोत एवं रिसालदार सिक्ख अनूपसिंह आदि मारे गये।[9] महाराजा रत्नसिंह लाहौर के सिक्ख शासक रणजीत सिंह के समकालीन थे। दस्तूर कौमवार (जयपुर श्रृंखला) में लाहौर के सिक्खों को नियमित दस्तूर व नेग दिये जाने का उल्लेख है।[10] प्रथम आंग्ल–सिक्ख युद्ध (1845–46 ई.) के समय अंग्रेज सरकार ने बीकानेर से सेना व युद्ध सामग्री मंगवाई थी। अंग्रेज कैप्टन जैक्सन भटनेर (हनुमानगढ़) पहुंचा व वहां से बीकानेरी तोपें ऊँट तथा सेना आदि साथ लेकर मलोट की ओर गया। 30 मार्च, 1846 ई. को युद्ध अंग्रेजों के पक्ष में रहा और अंग्रेजों व लाहौर दरबार मे संधि हो गयी। अंग्रेज सरकार ने बीकानेर की सेना की बहादुरी व योगदान की प्रशंसा की और उनके लिए खिलअतें भेजी।[11] द्वितीय आंग्ल–सिक्ख युद्ध में भी बीकानेर की सेना ने सिक्खों के विरूद्ध अंग्रेजों की ही मदद की, अंग्रेज सरकार ने महाराजा को निर्देश दिए की भावलपुर (वर्तमान पाकिस्तान) व मुल्तान के मार्ग में थाने स्थापित कर दिया जाएं व मुल्तान के विद्रोही गवर्नर मूलराज की सम्पत्ति जब्त कर ली जाए, जो कि व्यापारियों के पास हो।[12] महाराजा रत्नसिंह ने तत्काल 100 ऊँट सवार फिरोजपुर भेज दिए। पुनः अगले निर्देश पर सेना के लिए आटे आदि का अच्छा प्रबन्ध किया गया। महाराजा ने अंग्रेजी सहायता के लिए बाघसिंह के साथ 55 सवार, 46 गोलंदाज, कई तोपें व सवार फिरोजपुर भेजे। इस मदद के लिए अंग्रेज सरकार ने पुनः बीकानेर राज्य को बधाई दी।[13] महाराजा सरदार सिंह (1851–1872 ई.) के समय में 1857 ई. के गदर के समय भी बीकानेर की सेना अंग्रेजी मदद के लिए भेजी गयी। हजारीपुर, हमीरपुर, जलालपुर, फजिल्का, बाठूल, मंगली (सभी पंजाब) आदि स्थानों पर राजकीय सेना और तोपें भेजी गयी। सर जार्ज सेन्ट पैट्रिक लारेंस (राजपूताने का एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल, 1857–1864 ई.) ने अपनी रिपोर्ट में 1857 के विद्रोह में अन्य सैनिकों के साथ बीकानेरी सेना के सिक्ख सैनिको के बड़ी संख्या में मारे जाने व घायल होने का उल्लेख किया है।[14]

1909 ई. में अंग्रेजी सरकार ने महाराज गंगासिंह को सेना में मानद लेफ्टीनेन्ट कर्नल बनाया। इसी वर्ष कपूरथला के महाराजा सर जगजीत बहादुर सिंह ने बीकानेर की यात्रा की तथा उन्हें राज्य में उचित राजकीय सम्मान दिया गया। 1910 ई. में महाराज गंगासिंह जी कपूरथला की यात्रा पर गये।[15] ध्यातव्य है कि पटियाला, नाभा, जिंद व कपूरथला के साथ बीकानेर भी अंग्रेजों के प्रति राजभक्त रियासतें थीं। अतः इनमें परस्पर संबंध भी काफी अच्छे थे। महाराजा गंगासिंह द्वारा अपने राज्यों के उत्तरी भागों में शिक्षा के लिए हाई स्कूल खोले गये। यहां धार्मिक अनुदान के तहत जैन मंदिर, गिरिजाघरों और मस्जिदों की मरम्मत के लिए 3600 रूपये दिये जाने का उल्लेख मिलता है।

19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत में अंग्रेजी सत्ता के सर्वाधिकार की प्रवृति में विभिन्न राजभक्त रियासतों के वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित होने लगे। राजपूताने की जोधपुर व जैसलमेर (भाटी) घरानों में सिक्खों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। बाद में ये सम्बन्ध जोधपुर, भरतपुर व पटियाला रियासत में भी बना। अब राजपूतान में विभिन्न राज्यों की सेना में सिक्ख सैनिकों की भर्ती होने लगी। पंजाब के अनेक सेनानायक (राजपूत जाटों के विरूद्ध) मराठों, पिण्डारियों व भट्टियों के आक्रमण या लूटपाट से सहायता के लिए राजपूताना में आने लगे। इससे इन सिक्ख सेनानायकों को पर्याप्त कोष भी मिलता था। भरतपुर व जयपुर रियासतों के पत्र व्यवहार में तीन सिक्ख जत्थों की निरन्तर जानकारी मिलती है।[16] पंजाब के पटियाला क्षेत्र के भी अनेक सिक्ख बीकानेर राज्य में लूटपाट के लिए आने लगे। उपरोक्त वर्णित सैनिक कारणों के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी सिक्खों का आव्रजन बीकानेर राज्य में होता रहा। 1911 ई. की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार बीकानेर राज्य में हो रहे पी.डब्ल्यू.डी. के कार्यों तथा बीकानेर–रतनगढ़ रेलवे लाईन के निर्माण कार्यों एवं सार्वजनिक निर्माण कार्यों में रोजगार प्राप्त करने के उद्देश्य से भी बड़ी संख्या में सिक्ख समुदाय के लोग बीकानेर आने के लिए प्रेरित हुए।[17]

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में टिब्बी परगने (हनुमानगढ स्थित) में बड़ी संख्या में हिसार (हरियाणा) के सिक्खों को बसाया गया था। ये प्रथम बड़ा सिक्ख नियोजन

था। मुंशी सोहनलाल बीकानेर राज्य के इस पुर्नवास अभियान के प्रमुख थे यह पुर्नवास बडी संख्या में भूखण्डों की उपलब्धता व सतलज से नहर आने की संभावना को देखते हुए राज्य के लिए फायदे का सौदा था।[18] 1885-86 ई. में बीकानेर राज्य ने कई बड़े पुराने गांवों को विभाजित कर चकों का निर्माण किया व इससे 50 से ज्यादा नये गांव अस्तित्व में आये। बीकानेर में आने वाले ये सिक्ख किसान अधिकतर पंजाब के फिरोजपुर, बहावलपुर, फरीदकोट व अन्य राज्यों से आये थे। जो बीकानेर के उत्तरी सूरतगढ़ परगने व हनुमानगढ़ में बसे व लगभग 2,70,000 एकड़ जमीन इन नये सिक्ख किसानों के अधिकार में ली गयी। जिसमें से 75,000 एकड़ जमीन पुराने बसे सिक्खों के अधिकार में थी।[19] 1911 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार बीकानेर राज्य में धर्म के आधार पर जनसंख्या का विवरण निम्नानुसार है -

सारणी I : बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट, 1911 के अनुसार जनसंख्या (धर्म के आधार पर)[20]

धर्म	1901 (जनसंख्या)			1911 (जनसंख्या)		
	व्यक्ति कुल	पुरुष	महिला	व्यक्ति कुल	पुरुष	महिला
हिन्दु	493534	260044	233490	575699	306659	269040
मुसलमान	66050	35258	30792	91929	49347	42582
जैन	23403	9967	13436	24858	10255	14603
सिक्ख	1481	1011	470	8214	5054	3160
क्रिश्चियन	95	62	33	151	97	54
आर्य	41	26	15	128	76	52
पारसी	23	16	7	4	1	3
कुल	584627	306384	278243	700983	371489	329494

उपरोक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जहां 1901 ई. में सिक्ख समुदाय की संख्या बीकानेर राज्य में 1481 थी, वहीं 1911ई. में बढ़कर 8214 हो गई। 1901 ई. में कुल 1011 पुरुषों के अनुपात में 470 सिक्ख महिलाएं थीं, तो 1911 ई. में यह अनुपात बढ़कर 5054 पुरुषों पर 3160 महिलाओं का हो गया, जो कि अब बीकानेर राज्य में आजीविका के अवसर बढ़ने एवं स्थाई रूप से निवास करने जैसी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप संभव हुआ।

बीकानेर के 21 वें शासक महाराज गंगासिंह जी बनें (31 अगस्त 1887 ई.)। परन्तु इस समय इनकी आयु मात्र 7 वर्ष थी तथा बीकानेर राज्य का शासन कार्य रीजेन्सी कौंसिल द्वारा संचालित हो रहा था। 16 दिसम्बर, 1898 ई. में (18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर) इन्हें बीकानेर राज्य के सम्पूर्ण अधिकार सौंप दिए गए।[21] इनका शासनकाल बीकानेर राज्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। क्योंकि इनके समय में बीकानेर राज्य ने प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति की। परन्तु इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य बीकानेर जैसे सर्वाधिक सूखाग्रस्त रेतीले मरुस्थलीय क्षेत्र में 'गंग नहर परियोजना' को मूर्तरूप देना था। वस्तुतः अपनी भौगोलिक संरचना के परिणामस्वरूप बीकानेर राज्य को कई बार भयंकर अकालों का सामना करना पड़ा, जैसे - 1764 ई., 1783-1785 ई., 1789 ई., 1803 ई. 1812-1815 ई., 1832-1834 ई. 1837-1838 ई., 1849 ई. एवं 1860 ई. इत्यादि। इनमें से 1898-99 ई. (विक्रम संवत् 1956) का अकाल, जिसे 'छप्पनिया अकाल' भी कहा जाता है, सबसे भीषण अकाल था। इस वर्ष राज्य में केवल 3.5 इंच वर्षा हुई, जिससे फसलें नष्ट हो गई तथा लगभग 22 प्रतिशत मनुष्य राज्य से बाहर चले गए।[22]

इन विकट भौगोलिक परिस्थितियों को देखते हुए महाराजा गंगासिंह जी ने अनुभव किया की जब तक राज्य में सिंचाई के कृत्रिम संसाधनों की व्यवस्था नहीं की जाएगी, तब तक अकाल की परिस्थितियां निरन्तर बनी रहेंगी। इस हेतु अपने प्रारम्भिक प्रयासों में 1897-98 ई. में पलाना में एक शक्तिशाली पम्प की

स्थापना कर कच्चे एवं पक्के कुओं का निर्माण, गढ़ एवं गंगापुरा में बांधों का निर्माण, गंगा सरोवर प्रोजेक्ट, कोडमदेसर बांध, गजनेर झील पर बांध का निर्माण इत्यादि महत्वपूर्ण सिंचाई कार्य सम्पन्न करवाए गए। परन्तु ये प्रयास पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए। अतः अब नहरों द्वारा सिंचाई प्रबन्धन पर विचार हुआ। सर्वप्रथम पुरानी फिरोजशाह कैनाल (जो पश्चिमी यमुना नहर से जुड़ी हुई थी) से पानी प्राप्त करने हेतु पंजाब सरकार से बार-बार आग्रह करने पर बीकानेर की भादरा तहसील की 460 एकड़ भूमि को इस नहर से सिंचाई सुविधा प्राप्त हो गई।[23] सन् 1906 ई. में उत्तरी व दक्षिणी घग्घर नहरों में पानी की आवक बढ़ाने के लिए पंजाब सरकार व बीकानेर राज्य के मध्य पुनरीक्षित समझौते भी किए गए। परन्तु पंजाब सरकार द्वारा अपेक्षित सहयोग न मिलने के कारण बीकानेर राज्य का सिंचित क्षेत्र 33 प्रतिशत से घटकर 20 प्रतिशत रह गया।[24] अन्ततः 4 सितम्बर, 1920 ई. को पंजाब सरकार, बीकानेर राज्य तथा बहावलपुर राज्य के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार बीकानेर राज्य को रबी की फसल के लिए (15 अक्टूबर - 1 अप्रैल तक) 5 लाख एकड़ भू-क्षेत्र (16.5 प्रतिशत) की सिंचाई हेतु तथा खरीफ की फसल के लिए 2144 क्यूसेक (14.7 प्रतिशत) पानी दिया जाना तय हुआ।[25] 5 दिसम्बर, 1925 से अक्टूबर, 1927 ई. की अवधि में 'गंग नहर' का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ तथा 26 अक्टूबर, 1927 ई. को इसका विधिवत शुभारंम्भ हुआ। 'गंग नहर' परियोजना, महाराजा गंगा सिंह द्वारा, बीकानेर राज्य के इतिहास में अविस्मरणीय योगदान रहा है। इस परियोजना की मुख्य नहर की लम्बाई फिरोजपुर हैडवर्क्स से शिवपुर तक 84.5 मील थी तथा इसकी फीडर्स व डिस्ट्रीब्यूटर सहित इसकी कुल लम्बाई 568 मील थी। इस परियोजना की निर्माण लागत लगभग 8 करोड़ रूपये मानी गई।[26] जिसका प्रबंध करना बीकानेर राज्य के लिए सरल कार्य नहीं था। इस धन की व्यवस्था हेतु महाराजा गंगासिंह जी ने इस सिंचाई परियोजना से सिंचित होने वाले संभावित एक हजार वर्गमील क्षेत्र का कोलोनाईजेशन सर्वे मि. रूडकिन की सहायता से पूरा करवा लिया। इस योजना के अन्तर्गत 25-25 बीघा भू-क्षेत्र के 'वर्ग' बनाए गए तथा प्रत्येक वर्ग की एक भुजा की लम्बाई 825 फुट रखी गई। सिंचित होने वाले सम्पूर्ण भू क्षेत्र को 913 चकों में विभाजित किया गया तथा उनके वॉटर कोर्सेज बना दिए गए।[27] इनमें से 475 चक राज्य के पुराने काश्तकारों को तथा शेष 438 चक नए काश्तकारों को निश्चित दरों पर आवंटित किए गए। भूआवंटन में सिक्ख काश्तकारों को विशेष महत्व प्रदान किया गया। भूमि के विक्रय तथा 'नजराना' (आवंटितों को खातेदारी व सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार देने के बदले लिया जाने वाला शुल्क) आदि मिलाकर राज्य को 89533919 रूपयों की आमदनी प्राप्त हुई, जिसमें से 9553919 रूपये का अतिरिक्त लाभांश राज्य को प्राप्त हुआ।[28]

तत्कालीन दस्तावेजों से जानकारी मिलती है कि गंग नहर क्षेत्र में 3400 काश्तकारों द्वारा भूमि खरीदी गई थी, जिनमें से 1800 सिक्ख थे, जबकि 1100 हिन्दू तथा 500 मुसलमान थे।[29] लगभग 1000 वर्गमील के गंग नहर सिंचित क्षेत्र में लगभग 500 गांव अस्तित्व में आ गये। 1931 ई. की सेंसस रिपोर्ट, चैप्टर II में गांवों की संख्या में वृद्धि भी गंग नहर क्षेत्र में सिक्ख आबादी के बढ़ते हुए स्वरूप को इंगित करती है-

सारणी II : बीकानेर जनगणना रिपोर्ट, 1931 (गांवों की संख्या)[30]

निजामत	गांवों की संख्या	
	1921	1931
1 बीकानेर	508	509
2 सुजानगढ	486	500
3 रेणी	628	627
4 सूरतगढ	324	423
5 श्रीगंगानगर	195	683

उपरोक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्ष 1931 में श्रीगंगानगर में 488 तथा सूरतगढ़ निजामत में 99 गांवों की वृद्धि पूरे राज्य में सर्वाधिक दशकीय वृद्धि थी। इनमें भी सर्वाधिक सिक्ख आबादी थी, जो मुख्यतः पंजाब के फिरोजपुर, बहावलपुर, फरीदकोट आदि क्षेत्रों से आकर गंग कैनाल क्षेत्र में बस गये थे। 1931 की बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट के अनुसार धार्मिक आधार पर जनसंख्या की स्थिति एवं घनत्व निम्नानुसार था -

सारणी III : बीकानेर राज्य जनगणना रिपोर्ट, 1931 के अनुसार जनसंख्या (धर्म के आधार पर)[31]

क्र.सं	धर्म	1931 की जनसंख्या	घनत्व/10 हजार जनसंख्या	प्रतिशत
1	हिन्दू	725084	7745	77.4
2	जैन	28773	307	3.07
3	सिक्ख	40469	432	4.3
4	मुसलमान	141578	1512	15.1
5	पारसी	16	--	0.13
6	क्रिश्चियन	298	3	
	कुल	936218		100

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 1931 में सिक्ख आबादी का प्रतिशत एवं घनत्व राज्य में तृतीय स्थान पर था। इस समय बीकानेर राज्य का घनत्व 40 व्यक्ति/वर्गमील था, जो अनुमानतः 31 हिन्दू, 6 मुस्लिम, 2 सिक्ख एवं 1 जैन धर्म के अनुयायी व्यक्ति की स्थिति को दर्शाता है।[32] स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य के सिक्ख आबादी की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। जनसंख्या घनत्व की दृष्टि से देखा जाए तो प्रति 10 वर्ग मील पर सिक्ख आबादी की स्थिति निम्नलिखित थी –

सारणी IV रू जनसंख्या घनत्व बीकानेर राज्य (सिक्ख आबादी प्रति 10 वर्गमील)[33]

वर्ष	1891	1901	1911	1921	1931
घनत्व/10 वर्ग मील	8	25	117	125	432

1931 ई. की जनगणना के प्रावासन के आंकड़ों के विश्लेषण से भी ज्ञात होता है कि बीकानेर राज्य में 156624 व्यक्ति ऐसे निवासित थे, जिनका जन्म राज्य से बाहर हुआ था तथा उनमें भी सर्वाधिक 98288 व्यक्ति पंजाब से आये थे। इनमें सर्वाधिक संख्या सिक्खों की तथा मुसलमान नागरिकों की भी थी। 1931 की जनगणना में सिक्खों की जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण गंग नहर सिंचित क्षेत्र में सिक्ख कृषक समुदाय को बसाया जाना था। गंग नहर सिंचित क्षेत्र में सिक्ख आबादी को बहुत ही व्यवस्थित ढंग से बसाया गया था। यहां सड़कें, कुएं, रेलवे लाईनें, गुरुमुखी भाषी स्कूल व गुरुद्वारे इत्यादि का समुचित प्रबंध किया गया था। हनुमानगढ़ से लेकर गंगानगर, करणपुर, रायसिंह नगर होते हुए सूरतगढ़ तक 160 मील लम्बी रेलवे लाईन बिछाई गई थी। गंगानगर, रायसिंह नगर, करणपुर, पदमपुर, केसरीसिंह पुर तथा बिफाई नगर में व्यापारिक मंडियां भी स्थापित की गईं।[34] यहां चार जिनिंग फैक्ट्रियां, तीन प्रैसिंग फैक्ट्रियां तथा दो शुगर मिल भी स्थापित की गईं। एक दर्जन से अधिक आटा मिल तथा तेल निकालने की मशीनें भी लगाई गईं।[35] धीरे-धीरे इस क्षेत्र में पंजाबी संस्कृति हावी होती चली गई तथा शिक्षित किसानों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया जिसने आगामी वर्षों में यहां होने वाले किसान आन्दोलनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अक्टूबर, 1917 में महाराजा गंगासिंह जी ने राज्य परिषद में सिक्ख समुदाय को प्रतिनिधित्व प्रदान किया। इन सिक्ख कृषकों ने अपनी मेहनत एवं कृषि में नवीन प्रयोगों से इस क्षेत्र में कृषि पैदावार में बहुत अधिक वृद्धि की तथा यह क्षेत्र बीकानेर राज्य का सबसे समृद्ध क्षेत्र बन गया। 1931 की बीकानेर राज्य की जनगणना रिपोर्ट, चैप्टर XIV (आर्थिक सर्वेक्षण) में बीकानेर राज्य की फसलों की जानकारी उपलब्ध है, जो निम्नानुसार है –

सारणी V : बीकानेर जनगणना रिपोर्ट, 1931 चेप्टर XIV (आर्थिक सर्वेक्षण)[36]

क्र. सं.	तहसील	बाजरी	मोठ	मूंग	तिल	ग्वार	ज्वार	कपास	गन्ना	गेहूं	चना	जौ	सरसों
1.	बीकानेर	1	2	2	2½	1¼							
2.	लूणकरणसर	1	1	½	½	1¼							
3.	सुरपुरा	1	¾	1/8	¼	1¼							
4.	सुजानगढ़	1	1	1	1	1							
5.	सरदारशहर	1	1	--	--	1							
6.	रतनगढ़	1	1	1	1	1							
7.	डूंगरगढ़	1	1	¾	3	1							
8.	राजगढ़	1	1	1	--	1	1				2		
9.	चूरू	½	¾	½	1	1							
10.	भादरा	1	½	3/8	--	1	1¼				2	2	3
11.	रेनी	½	½	½	--	½							
12.	नोहर	2	2	--	--	3					5		
13.	सूरतगढ़	1	1	1	2	2					2	2	2
14.	हनुमानगढ़	2	2	1	1	3	2			3½	5	4	2
15.	अनूपगढ़	2	1	1	1	3	2	5	30	5	4	5	4-5
16.	गंगानगर	5	1	3	5	5	4	5	20	5	8	4	4-5
17.	करणपुरा	5	5	5	2	2	7	4	5	20	8	4	4-5
18.	रायसिंह नगर	3	2	2	2	2	4	3	4	14	9	9	4
19.	पदमपुरा	8	8	8	7	7	7	7	8	30	12	8	8

उपरोक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि गंग नहर क्षेत्र (सूरतगढ़, हनुमानगढ़, अनूपगढ़, गंगानगर, करणपुरा, रायसिंह नगर, पदमपुरा) में खरीफ की फसलों (बाजरी, मूंग, मोठ, कपास, तिल, ग्वार, ज्वार, गन्ना, आदि) तथा रबि की फसलों (गेहूं, चना, जौ, सरसों, इत्यादि) का उत्पादन बीकानेर राज्य के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक था। पर्याप्त कृषि उत्पादन के परिणामस्वरूप यहां कृषि आधारित उद्योगों (कॉटन मिल, गन्ना मिल, इत्यादि) की स्थापना को प्रोत्साहन मिला। इससे रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई तथा सिक्ख आव्रजन इस क्षेत्र में निरन्तर बढ़ता गया। आर्थिक समृद्धि ने शिक्षा, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन भी समुन्नत किया तथा यहां के निवासी अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए तथा समय-समय पर सिक्ख कृषक आन्दोलनों के माध्यम से बीकानेर राज्य पर दबाव बनाकर अपनी मांगों को पूरा करवाने में सफल रहे।

बीकानेर राज्य एवं पंजाब के मध्य व्यापारिक मार्गों के कारण भी सम्पर्क स्थापित हुआ। उत्तर के व्यापारियों को अपनी व्यापारिक वस्तुएं दक्षिण में गुजरात व मारवाड़ तक ले जाने के लिए बीकानेर से गुजरना पड़ता था। 12वीं-13वीं सदी में यह प्रमुख व्यापारिक मार्ग (दिल्ली से गुजरात तक) रेणी होकर गुजरता था। 18वीं शताब्दी का प्रमुख व्यापारिक मार्ग दिल्ली से पाली (मारवाड़) का था, जो भिवानी, राजगढ़, रेणी, चूरू, रतनगढ़, सुजानगढ़, नागौर, जोधपुर से पाली पहुंचता था।[37] 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक बीकानेर राज्य में रेणी, राजगढ़, चुरू, नोहर, लूणकरणसर, बीकानेर, अनूपगढ़, रतनगढ़, सुजानगढ़, पूगल, महाजन, हनुमानगढ़ व भादरा व्यापारिक केन्द्रों के रूप में विकसित हो चुके थे। पंजाब से बीकानेर होकर गुजरने वाले कुछ प्रमुख व्यापारिक मार्ग निम्नलिखित थे -

• कश्मीर से बीकानेर	कश्मीर–अमृतसर–भटिंडा–सिरसा–हिसार–राजगढ़– चूरू–रतनगढ़–सुजानगढ़–फलौदी–नागौर–जोधपुर –पाली[38]
• कश्मीर – पाली (मारवाड़)	कश्मीर–अमृतसर–भटिंडा–सिरसा–हिसार–राजगढ़– चूरू–रतनगढ़–सुजानगढ़–फलोदी–नागौर–जोधपुर –पाली[39]
• दिल्ली – अहमदाबाद	दिल्ली–हिसार–भिवानी–राजगढ़–चुरू–सुजानगढ़ लाडनूं–डीडवाना–नागौर–जोधपुर–पाली– पालनपुर–अहमदाबाद[40]

इन व्यापारिक मार्गों के माध्यम से बीकानेर–पंजाब के मध्य मारवाड़ी–सिक्ख व्यापारियों का आवागमन बना रहा। बीकानेर राज्य में रेलवे के विकास ने इन व्यापारिक सम्पर्को को और मजबूती से स्थापित किया। बीकानेर राज्य को अपनी रेलवे लाईनें बिछाने तथा उनके प्रशासन के स्वतंत्र अधिकार प्राप्त हुए। इस समय बीकानेर सीमा का निकटवर्ती बड़ी लाईन का स्टेशन भटिण्डा था। बीकानेर दरबार ने उसे बीकानेर से जोड़ने का निश्चय किया। 9 सितम्बर, 1902 को सूरतगढ़ से भटिण्डा तक 141.60 किमी लम्बी रेलवे लाईन खोल देने से बीकानेर राज्य का पंजाब से सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया। अब उत्तरी क्षेत्र में 322.6 किमी लम्बी रेलवे लाईनें स्थापित हो चुकी थीं। एक अन्य रेलमार्ग 'हनुमानगढ़ से श्रीगंगानगर–केसरीसिंहपुरा–रायसिंह नगर–अनूपगढ़' तक तैयार किया गया।[41] राजधानी दिल्ली से जुड़ने के लिए बीकानेर से रतनगढ़ तक, 85 मील लम्बा रेलवे मार्ग बनाया गया, जिसे 1912 ई. में यातायात के लिए खोल दिया गया। 1937–38 ई. में बीकानेर महाराजा ने जयपुर राज्य से किए गए समझौते के तहत झुन्झुनु से लोहारू तक (जयपुर राज्य द्वारा) रेलवे लाईन का निर्माण करवाया गया। जिससे बीकानेर के सिंचित क्षेत्र का सम्पर्क सीधा जयपुर के साथ स्थापित हो गया। यह सम्पर्क आर्थिक दृष्टि से बीकानेर राज्य के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ।[42] इस प्रकार 1943 ई. तक बीकानेर राज्य में रेलवे लाईनों की कुल लम्बाई 1394.75 किमी हो गई, जिसमें पंजाब राज्य में 121.04 किमी की रेलवे लाईनें भी सम्मिलित हैं। रेल मार्गों के विकास से परम्परागत व्यापारिक मार्गों से पशुओं का निर्यात भी पड़ौसी राज्यों को किया जाता था। साथ ही बाजरा, मोठ, सब्जी, मुल्तानी मिट्टी, अंग्रेजी क्षेत्र सिरसा, फाजिल्का व हिसार में भेजी जाती थीं। बीकानेर से बहावलपुर मार्ग पर माल लाने व ले जाने का कार्य सिक्ख जाति के लोग करते थे, जिन्हें 'दीवाना फकीर' कहा जाता था।[43] बीकानेर से मुख्यतः ऊन, ऊनी वस्त्र, मिर्ची, गुड़, गोंद, घी, गुंवार, धान, तिल, नमक, बैल, सांड, भेड़, चमड़े का सामान, सूखा मेवा, फिटकरी, गलीचे, कम्बल, बाजरा इत्यादि का निर्यात किया जाता था। बीकानेर राज्य अमृतसर से चावल, गर्म कपड़े, पश्मीना, शॉल, सिरसा से गेहूं, घी, मुल्तान से घोड़े, मेवे, जीरा, हींग, लाख, इत्यादि का आयात करता था।[43] इस प्रकार बीकानेर एवं पंजाब के मध्य महत्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध निरन्तर बने रहे।

1943 ई. में महाराजा गंगासिंह जी के मृत्योपरान्त, उनके पुत्र सार्दुलसिंह बीकानेर के शासक बने। भारत विभाजन के समय फिरोजपुर (गंग कैनाल हेड वर्क्स) के पाकिस्तान में सम्मिलित होने की संभावना से बीकानेर राज्य आशंकित हो गया। क्योंकि इससे बीकानेर राज्य की जीवन रेखा गंग नहर परियोजना को नुकसान हो सकता था। अतः बीकानेर राज्य के प्रधानमंत्री ने सरदार वल्लभ भाई पटेल को वस्तुस्थिति से अवगत करवाया गया। महाराजा सार्दुलसिंह ने वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल को 3 जुलाई, 1947 ई. को टेलीग्राफ भेजकर निवेदन किया कि पंजाब के विभाजन के समय बीकानेर राज्य के हितों एवं अधिकारों का भी ध्यान रखा जाये। 25 जुलाई, 1947 ई. को बीकानेर राज्य की ओर से लाला कंवर सेन (मुख्य अभियन्ता, सिंचाई विभाग, बीकानेर) तथा बक्शी टेकचंद ने श्री रेडक्लिफ (पंजाब सीमा आयोग, लाहौर के अध्यक्ष) के समक्ष बीकानेर राज्य का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। अन्ततः इन प्रयासों के परिणामस्वरूप फिरोजपुर तहसील का भारत में सम्मिलित होना तय हुआ तथा बीकानेर राज्य की गंग नहर परियोजना को सुरक्षित कर लिया गया।[44] 1947 ई. में भारत के 'इन्स्ट्रूमेंट ऑफ एसेशन' (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर करने वाला बीकानेर प्रथम

राज्य बना।[45] 1949 ई. में राजस्थान में इसका विलय कर दिया गया।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि विविध परिस्थितियों, यथा – भौगोलिक, सैनिक, आर्थिक, राजनीतिक, कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं, आजीविका के साधनों की खोज इत्यादि ने बीकानेर राज्य एवं सिक्ख समुदाय के मध्य मजबूत सम्बन्ध स्थापित किए। सिक्ख समुदाय ने भी अपनी मेहनत और लगन से गंग नहर क्षेत्र को आबाद किया तथा बीकानेर की अर्थव्यवस्था के मजबूत आधार स्तम्भ बन गये। वे अपने साथ सिक्ख परम्परा, संस्कृति, रीति-रिवाजों को भी लाये तथा शिक्षा, समाज एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी उन्नति के नए प्रतिमान स्थापित किए। ये सिक्ख समुदाय शीघ्र ही बीकानेर राज्य का अभिन्न हिस्सा बन गया एवं बीकानेर के इतिहास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अर्सकिन, के.डी. : इम्पीरियल गैजेटीयर ऑफ इंडिया, प्रोविन्शियल सीरीज, राजपूताना (पुर्नमुद्रित), जोधपुर, 2007, पृ. 399*
2. *वही, पृ. 401*
3. *सावा बही, राजगढ़, (1863-64 ई.), पृ. 128-131, रा.रा.अ., बीकानेर*
4. *सावा बही, राजगढ़, संवत् (1868-1871 ई.), पृ. 125, रा.रा.अ., बीकानेर*
5. *गुप्ता, हरिराम : हिस्ट्री ऑफ सिक्ख्स (1739-1768 ई.), पृ. 9-10*
6. *डॉ. शशि अरोड़ा : राजस्थान की राजनीति में सिक्ख शक्तियों का हस्तक्षेप (1780-1818 ई.), बीकानेर राज्य के संदर्भ में (शोध पत्र), सिक्ख सोसायटी, कल्चर एण्ड पॉलिटी इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव (सम्पादक प्रो. बी.एल. गुप्ता), जयपुर, 2008, पृ. 144*
7. *जी.एस.एल. देवड़ा : ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान (सम्पादित), बीकानेर, 1980, पृ. 54-56*
8. *पूर्वोक्त, डॉ. शशि अरोड़ा : राजस्थान की राजनीति में सिक्ख शक्तियों का हस्तक्षेप (1780-1818 ई.), बीकानेर राज्य के संदर्भ में (शोध पत्र), पृ. 146*
9. *पाउलेट, गैजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, बीकानेर, 1932, पृ. 74, रा.रा.अ.,बीकानेर*
10. *दस्तूर कौमवार, जयपुर रिकॉर्डस, वि.सं. 1864, पृ. 307, रा.रा.अ.,बीकानेर*
11. *गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग II, अजमेर, 1940, पृ. 70*
12. *वही, पृ. 72*
13. *पाउलेट, गैजेटीयर ऑफ दी बीकानेर स्टेट, पृ. 86, रा.रा.अ., बीकानेर*
14. *गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग II, अजमेर, 1940, पृ. 130*
15. *गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग II, अजमेर, 1940, पृ. 481*
16. *डॉ. जी.एस. शर्मा : सोर्सेज ऑफ सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, बीकानेर, 2005, पृ. 266-272*
17. *सेंसस रिपोर्ट ऑफ इंडिया – बीकानेर, 1911, पृ. 12, रा.रा.अ., बीकानेर*
18. *वही, पृ. 12*
19. *डॉ. एस.सी. मिश्रा : सिक्ख इमिग्रेशन इन नॉर्थ राजस्थान : बीकानेर क्वेस्ट फॉर कल्चरल आईडेन्टीटी, सिक्ख सोसायटी, कल्चर एण्ड पॉलिटी इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव (सम्पादक प्रो. बी.एल. गुप्ता), जयपुर, 2008, पृ. 123*
20. *सेंसस रिपोर्ट ऑफ इंडिया – बीकानेर, 1911, पृ. 12, रा.रा.अ., बीकानेर*
21. *अर्सकिन, के.डी. : इम्पीरियल गैजेटीयर ऑफ इंडिया, प्रोविन्शियल सीरीज, राजपूताना (पुर्नमुद्रित), जोधपुर, 2007, पृ. 399*
22. *वही, पृ. 411*
23. *मिश्रा, एस.सी. : प्रोग्रेस ऑफ इरीगेशन ड्यूरिंग दी पीरियड ऑफ महाराजा गंगासिंह (शोध लेख), जी. एस.एल. देवड़ा (सं.) : महाराजा गंगासिंह शताब्दी ग्रंथ, बीकानेर, 1980, पृ. 37*
24. *वही, पृ. 37*
25. *राजवी, अमरसिंह : मिडीवल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम I, बीकानेर, 1997, पृ. 727*
26. *वही, पृ. 733*
27. *भनोत, डॉ. शिव कुमार : उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में गंग कैनाल प्रोजेक्ट एवं सिक्ख उपनिवेशवाद (1898-1931 ई.) (शोध लेख) सिक्ख सोसायटी, कल्चर एण्ड पॉलिटी इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव (सम्पादक प्रो. बी.एल. गुप्ता), जयपुर, 2008, पृ. 161*

28. पूर्वोक्त, राजवी, अमरसिंह : मिडीवल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम I, बीकानेर, 1997, पृ. 733

29. वही, पृ. 734

30. सेंसस रिपोर्ट ऑफ इंडिया – बीकानेर, 1931, चेप्टर प्प, पृ. 21 रा.रा.अ., बीकानेर

31. सेंसस रिपोर्ट ऑफ इंडिया – बीकानेर, 1931, चेप्टर IX, पृ. 101 रा.रा.अ., बीकानेर

32. वही, पृ. 102

33. वही, पृ. 108

34. पूर्वोक्त, राजवी, अमरसिंह : मिडीवल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम I, बीकानेर, 1997, पृ. 735

35. पन्निकर, के.एम. : हिज हाईनेस दी महाराजा ऑफ बीकानेर – ए बायोग्राफी, ऑक्सफोर्ड, 1937, पृ. 302

36. सेंसस रिपोर्ट ऑफ इंडिया – बीकानेर, 1931, चेप्टर XIV, पृ. 133, रा.रा.अ., बीकानेर

37. शर्मा, डॉ. गिरीजा शंकर : मारवाड़ी व्यापारी, बीकानेर, 1988, पृ. 20

38. मुंशी सोहनलाल : तवारीख राज श्री बीकानेर, 1898, पृ. 69, रा.रा.अ., बीकानेर

39. देवड़ा, डॉ. जी.एस.एल. : ए स्टडी ऑफ ट्रेड रिलेशन बिटवीन राजस्थान एण्ड सिंध – मुल्तान (शोध पत्र), इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, 1979, पृ. 585

40. पूर्वोक्त, मुंशी सोहनलाल : तवारीख राज श्री बीकानेर, 1898, पृ. 69–70, रा.रा.अ., बीकानेर

41. फोर डिकेट्स ऑफ प्रोसेस इन बीकानेर, ए स्टेट पब्लिकेशन, बीकानेर, 1937, पृ. 99

42. वही, पृ. 99

43. पूर्वोक्त, शर्मा, डॉ. शंकर : मारवाड़ी व्यापारी, बीकानेर, 1988, पृ. 21

44. पूर्वोक्त, राजवी, अमरसिंह : मिडीवल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, वॉल्यूम I, बीकानेर, 1997, पृ. 740

45. सहगल, के.के. : राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गैजेटीयर, बीकानेर, गवर्नमेंट ऑफ राजस्थान, जयपुर, 1972, पृ. 21

पातोला महादेवः भौगोलिक पर्यटन और भौगोलिक सर्वेक्षण का महत्त्वपूर्ण केन्द्र

अभिषेक श्रीवास्तव
सहायक आचार्य, संगम विश्वविद्यालय, भीलवाड़ा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पातोला महादेव भीलवाड़ा शहर के निकट पुर कस्बे में स्थित एक रमणीक स्थल है। यह संपूर्ण क्षेत्र कटोरेनुमा गर्त में स्थित है। धरातल से काफी गहराई अर्थात् पाताल में स्थित होने के कारण स्थानीय स्तर पर इसे पातोला महादेव नाम से पुकारा जाने लगा। यह न सिर्फ भौगोलिक पर्यटन की दृष्टि से अपितु भौगोलिक सर्वेक्षण की दृष्टि से भी एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक स्थल है। स्थानीय व अन्य जिलों के पर्यटक यहाँ सैर करने आते हैं। प्राकृतिक सौंदर्य व भौगोलिक संरचना की विविधता से परिपूर्ण इस क्षेत्र को प्रकृति ने भिन्न-भिन्न प्रकार के मन को लुभाने वाले सुंदर जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों व शैल संरचनाओं से सजाया है। इस क्षेत्र में पुर-बनेड़ा समूह की प्राचीन शैलें मौजूद हैं जिनका व्यापक स्तर पर भू-सर्वेक्षण किया जाना अभी शेष है। इस क्षेत्र में भौगोलिक पर्यटन के विकास की भरपूर संभावनाएँ मौजूद हैं। प्रस्तुत लेख में इस क्षेत्र की भूसंरचना तथा पर्यटन विकास के दृष्टिकोण से उसके संभावित लाभार्जन पर प्रकाश डाला गया है।

संकेताक्षर : *भौगोलिक पर्यटन, भीलवाड़ा, पातोला महादेव, रोजगार, आर्थिक।*

प्रसिद्ध अमेरिकी भूगोलवेत्ता कुमारी ऐलन चर्चिल सैम्पल ने मानव को पृथ्वी की उपज तथा स्वभाव से चंचल कहा है।[1] मानव मन की जिज्ञासा ही उसे चंचल बनाती है। इसी जिज्ञासा को शांत करने हेतु वह इस भूमण्डल के विभिन्न स्थानों की यात्रा करता है और नवीन तथ्यों का संकलन करता है। मानव के भ्रमण-विचरण की यह प्रवृत्ति ही पर्यटन कहलाती है। यह मानव की रुचिकर गतिविधियों में से एक है।

पर्यटन न केवल मनोरंजन एवं भ्रमण का माध्यम है अपितु यह रोजगार एवं विदेशी मुद्रा के अर्जन का भी स्रोत है। यदि राजस्थान के संदर्भ में बात करें तो यहाँ पर्यटन एक सशक्त उद्योग के रूप में स्थापित है। राजस्थान सरकार ने वर्ष 1989 में पर्यटन को उद्योग का दर्जा प्रदान किया और इसी क्रम में पर्यटन को एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि के रूप में स्वीकार कर लिया गया।[2]

राजस्थान का लगभग प्रत्येक जिला पर्यटन के दृष्टिकोण से अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। भीलवाड़ा जिला भी इस लिहाज़ से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु सही मायने में पर्यटन विकास की दिशा में राज्य सरकार की ओर से यहाँ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। भीलवाड़ा जिला अपनी भौगोलिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहर को संजोए हुए है जो कि पर्यटकों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट करती है। जिले की धरोहरों में से एक है पुर कस्बा जो कि भीलवाड़ा शहर से करीब 10 किमी दूर उदयपुर को जाते राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या-758 पर स्थित है। यह कस्बा ''पहलवानों की नगरी'' के नाम से विख्यात है। यहाँ के पहलवानों ने राज्यस्तरीय व राष्ट्रीय कुश्ती प्रतियोगिताओं में अपना परचम लहराया है। पुर की रबड़ी और मलाई के लड्डू भी अपने स्वाद के लिए जिले भर में प्रसिद्ध हैं। यहाँ के शिवालय व अन्य धार्मिक स्थल स्थानीय वातावरण को आध्यात्मिक शांति से परिपूर्ण बनाते हैं।

पातोला महादेव

भीलवाड़ा जिले के पुर कस्बे में स्थित यह स्थान 25°19' उत्तरी अक्षांश तथा 74°33' पूर्वी देशांतर के प्रतिच्छेदन बिन्दु पर स्थित है। लगभग 3 किलोमीटर लंबे सर्पिलाकार सड़क मार्ग के जरिए यह पुर कस्बे से प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ

है। नैसर्गिक सौंदर्य से परिपूर्ण यह रमणीक स्थल एक कटोरेनुमा गर्त में स्थित है जो कि अपनी विभिन्न प्रकार की स्थलाकृतिक विविधताओं के लिए जाना जाता है। यहाँ भूमि से काफी नीचे अर्थात् पाताल स्थित एक गुफा में अति प्राचीन शिवालय है। इसी वजह से यह स्थान ''पातोला महादेव'' के नाम से पुकारा जाने लगा। पातोला महादेव पुरवासियों के आराध्य देव हैं। चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियों व वनस्पतियों से घिरे इस स्थान पर भगवान शिव के अलौकिक स्वरूप का साक्षात्कार किया जा सकता है।

पातोला महादेव स्थित गुहा मंदिर

प्राकृतिक सरोवर

यहाँ स्थित प्राकृतिक सरोवर का मनोरम दृश्य वर्षाऋतु में देखते ही बनता है, जब यह जल से लबालब भरा होता है। स्थानीय बच्चे यहाँ जलक्रीड़ा का आनन्द लेने आया करते हैं। सरोवर का जल निर्मल होने के साथ-साथ पेयजल व सिंचाई का स्रोत भी है। सरोवर के जल में जलमुर्गियों, जलसर्पो, कछुओं, मछलियों व अन्य जलीय जीवों को विचरण करते देखा जा सकता है। सरोवर की गहराई को बढ़ाकर इसे झील का स्वरूप दिया जा सकता है ताकि इसमें वर्षा जल का अधिकाधिक संग्रहण कर जलक्रीड़ा व नौकायन जैसे साहसिक पर्यटन की सुविधाओं को विकसित किया जा सके।

पातोला महादेव स्थित प्राकृतिक सरोवर

जैव-विविधता

पातोला महादेव में जीवन की अद्भुत विविधता दिखाई देती है। एक छोटे से क्षेत्र में इतनी प्रचुर जैव-विविधता किसी आश्चर्य से कम नहीं है। यहाँ पाया जाने वाला जैव-वानस्पतिक समुदाय इस प्रकार है-जरख (*Hyena*), जंगली बिल्ली (*Felis chaus*), साँप (*Echis*), लोमड़ी (*Vulpes bucapù*), नीलगाय (*Boselapbns tragocamales*), नेवला (*Herpestidae*), झाऊ चूहा (*Erinaceidae*), खरगोश (*Oryctolagus*), जलमुर्गी (*Gallinula*), बाज (*Falcon*), कछुए, बेलपत्र (*Aegle marmelous*), चिरमी (*Abrus precatorius*), बड़ (*Ficus benghalensis*), पीपल (*Ficus religiosa*), आँक (*Calotropis gigantea*), धतूरा (*Datura inoxia*), धौंक (*Anogeissus pendula*), रोंझ (*Acacia leucophloea*), बेर (*Ziziphus mauritiana*), पालाश (*Butea monosperma*) आदि। सर्पो की यहाँ इतनी बहुलता है कि स्थानीय स्तर पर यह स्थान ''सर्पो की शरणस्थली'' भी कहलाता है।

गार्नेट भण्डार

पातोला महादेव परिसर में मुख्यतः ''पुर-बनेड़ा आग्नेय शैल समूह'' की शिलाएँ पाई जाती हैं जिनमें गार्नेट का विशाल भण्डार मौजूद है।[3] गार्नेट लाल रंग का एक बहुमूल्य पत्थर होता है। इसे ''तामड़ा, नगीना अथवा रक्तमणि'' भी कहा जाता है। इसका प्रयोग आभूषणों में विशेष रूप से अंगूठी में नग के रूप में किया जाता है। यहाँ की शिलाओं में अभ्रक की अधिकता होने के कारण वे चाँदी की सी चमकती प्रतीत होती हैं जिनमें जड़ित गार्नेट इनकी खूबसूरती को और भी अधिक बढ़ा देता है।

शैल में मौजूद दानेदार गार्नेट

यारडंग

पातोला महादेव के शीर्षस्थ भाग पर एक विशाल यारडंग स्थित है जो किसी ''साँप के फन'' जैसा

दिखाई देता है। यारडंग वास्तव में पवनकृत अपरदन जनित चट्टानी संरचना है जिसका शीर्ष भाग हवा में स्वतंत्र रूप से निकला होता है तथा आधार भाग भूमि में धँसा होता है।[4] यारडंग का अवतल भाग प्रवाहित पवन के सामने जबकि उत्तल भाग विपरीत दिशा में स्थित होता है। चूँकि यह यहाँ का शीर्षस्थ भाग है इसलिए यहाँ से पातोला महादेव के संपूर्ण परिसर का हरा-भरा विहंगम दृश्य दिखाई देता है। इस यारडंग के ठीक सामने ''गोरखनाथ जी की धूनी'' है जहाँ किसी समयमें उन्होंने तपस्या की थी। यह धूनी एक मानव निर्मित इमारती परिसर के भीतर स्थित है। यह इमारती परिसर प्रस्तरों को एक के ऊपर एक रखकर बनाया गया है जिसमें कहीं भी चूने व सीमेन्ट का प्रयोग नहीं किया गया है। यहाँ के पुजारी से प्राप्त जानकारी में पता चला कि यह इमारती परिसर वास्तव में एक मठ है जिसमें कभी योगी और तपस्वी ठहरा करते थे।[5]

पातोला महादेव स्थित विशाल यारडंग

मरू वार्निश

यहाँ पाई जाने वाली शिलाओं की सतह पर अपक्षय के कारण लौह ऑक्साइड तथा सिलीका की लाल व भूरे रंग की कोटिंग देखी जा सकती है जिसे ''मरू वार्निश''

शोधकर्त्ता द्वारा खोजी गई मरुवार्निश

कहते हैं।[6] मरू वार्निश वैसे तो किसी भी महीने में दिखाई दे जाती है किन्तु वर्षाऋतु के उपरान्त शीतकाल के आगमन के साथ ही इसे अधिकता में देखा जा सकता है, ऐसा इसलिए क्योंकि यह समय शिलाओं पर अपक्षयन गतिविधि हेतु सर्वाधिक आदर्श होता है।

क्षिप्तिका

कोमल और कठोर शैलों की अनुप्रस्थ दिशा में स्थिति के कारण तथा जल जनित अपरदन के चलते कोमल शैलों का शीघ्र अपरदन हो जाता है। प्रवाहित जल के ढाल पर ''एक सोपानाकार संरचना'' का निर्माण हो जाता है जिसे क्षिप्तिका कहते हैं।[7] यह क्षिप्तिका प्राकृतिक सीढ़ियों जैसी ही दिखाई देती हैं जिनका प्रयोग यहाँ पर्यटकों द्वारा यारडंग तक पहुँचने हेतु किया जाता है।

पातोल महादेव स्थित एक क्षिप्तिका

ट्रैकिंग

यहाँ स्थित ऊँची-नीची पहाड़ियाँ एडवेन्चर पसंद लोगों के लिए माउंटेन ट्रैकिंग की सुविधा प्रदान करती हैं। प्रायः युवाओं को यहाँ ट्रैकिंग करते देखा जा सकता है। यदि यहाँ रोप-वे सुविधा का विकास कर दिया जाए तो यह क्षेत्र निश्चित रूप से पर्यटकों के आकर्षण का प्रधान केन्द्र बन सकता है।

समस्याएँ और सुझाव

- पातोला महादेव परिसर के निकट की जा रही खनन और विस्फोटकारी गतिविधियों के कारण चट्टानों में दरारें पड़ने लगी हैं और स्थानीय जैव-वानस्पतिक समुदाय के आवास का ह्रास होने लगा है। बढ़ती खनन गतिविधियों से ध्वनि प्रदूषण का स्तर भी तेजी से बढ़ने लगा है।
- बिजली की हाई टेन्शन लाइन को इस परिसर के

ऊपर से गुजारा गया है जिसके कारण करंट से आगजनी का खतरा भी बना रहता है। कहीं–कहीं तो यह निकटवर्ती वृक्षों के काफी नजदीक से गुजर रही है। प्रयास किए जाएँ कि जिन वृक्षों के पास से यह लाइन गुजर रही है वहाँ इसे सुरक्षित ऊँचाई तक बढ़ा दिया जाए।

- पातोला महादेव न सिर्फ भौगोलिक अपितु धार्मिक दृष्टि से भी पर्यटन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। प्रचार–प्रसार के अभाव में अभी तक यह केवल स्थानीय व समीपवर्ती जिलों के पर्यटकों को ही अपनी ओर खींच पाया है। यदि सुनियोजित और सुव्यवस्थित प्रचार–प्रसार सामग्री का प्रयोग किया जाए तो इसे एक लाभकारी पर्यटन स्थल के रूप में परिवर्धित किया जा सकता है। शोधार्थियों, शिक्षकों व स्थानीय विद्वानों के सहयोग से तथा सोश्यल मीडिया, शोध–पत्रिकाओं, कॉन्फ्रेंस, सेमिनार, डॉक्यूमेन्ट्री फिल्म्स जैसी प्रचार–प्रसार सामग्री के प्रयोग से दूर–दराज के पर्यटकों को भी अधिकाधिक संख्या में यहाँ आकृष्ट किया जा सकता है।
- चूँकि पातोला महादेव पुर कस्बे के निकट ही स्थित है इसीलिए इसके नैसर्गिक सौंदर्य को न छेड़ते हुए पुर कस्बे में ही पर्यटकों के ठहराव व भोजन की व्यवस्था हेतु बेहतर होटल आदि की सुविधा विकसित की जा सकती है। एडवेन्चर पसंद लोगों के लिए पातोला महादेव परिसर की ऊँची पहाड़ियों पर स्थायी टेन्ट की व्यवस्था प्रदान की जा सकती है।
- पातोला महादेव के समग्र विकास हेतु इसके आस–पास संचालित कारखानों व उद्यमों से ''कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व'' के अंतर्गत विकास राशि प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं विधायक व सांसद कोष से भी विकास राशि जुटाई जा सकती है। चढ़ावे में प्राप्त धन–राशि के प्रबंधन हेतु एक धर्मादा ट्रस्ट बनाया जा सकता है।
- स्थानीय लोगों के आराध्य देव होने के कारण पातोला महादेव में प्रतिवर्ष शिवरात्रि को व श्रावण मास में मेला भरता है जिसमें रेहड़ी वाले पूजन सामग्री, अर्पण सामग्री, फल–फूल, मिठाई, चाट–पकौड़े, खिलौने आदि को बेचने आया करते हैं। दर्शनार्थियों की भीड़ जुटने लगती है और इन रेहड़ी वालों को अस्थायी रोजगार मिल जाता है। यदि इस कार्य को सुनियोजित ढंग से किया जाए तो यहाँ स्थायी रोजगार के अवसर सृजित हो सकेंगे।
- पुर कस्बे को ''पहलवानों की नगरी'' भी कहा जाता है। अनेक राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय दंगल प्रतियोगिताओं में यहाँ के पहलवान अपनी विजय–पताका फहरा चुके हैं। इस दृष्टि से यहाँ खेल पर्यटन के विकास की भी भरपूर संभावनाएँ मौजूद हैं। राज्य खेल विभाग व जिला खेल अधिकारी के सहयोग से यहाँ कुश्ती, कबड्डी, मलखंभ व तैराकी जैसी साहसिक खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जा सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यदि पर्यटन विकास को सही दिशा व त्वरित गति प्रदान करनी है तो शोधार्थियों के माध्यम से राज्य सरकार को पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नवीन स्थलों को उचित मंच प्रदान कराना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *हुसैन माजिद, 2018, भौगोलिक चिन्तन का इतिहास, रावत पब्लिकेशंस, पृ. सं. 189*
2. *Srivastava Abhishek राजस्थान में पर्यावरण और पर्यटन के अंतर्संबन्धों का भौगोलिक अध्ययन, International Journal Of Multidisciplinary Educational Research, Vol-10, Issue-2 (5), February-2021, पृ. सं. 226*
3. *Sharma Pooja, Kumar Arun, Srivastava Neeraj, Geological Settings, Mineralization and Genesis of Iron Ore Deposit at Pur-Banera Belt of District, Bhilwara, Rajasthan (India), SSRG International Journal Of Geo-informatics and Geological Science, Vol-07, Issue-2, May-Aug-2020*
4. *सविन्द्र सिंह, 2008, भौतिक भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ.सं. 290*
5. *पातोला महादेव के पुजारी भागुनाथ के लिए गए साक्षात्कार (3 दिसंबर 2020) से प्राप्त जानकारी के अनुसार*
6. *वही, 2008, भौतिक भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर, पृ.सं. 288*
7. *खुल्लर डी आर, 2017, भूगोल, चेन्नई, मैक्ग्रा हिल एज्यूकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड प्रकाशन, पृ.सं. 1.54*

हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री लेखन की परम्परा

डॉ. प्रवीण चन्द
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य मानवीय संवेदनाओं और मनुष्य के विचारों को अभिव्यक्त करने का श्रेष्ठ माध्यम है। आधुनिक नारी की विडम्बनाओं और उसकी स्वाधीन चेतना की अभिव्यक्ति उपन्यासों में हुई है, उतनी साहित्य की किसी अन्य विधा में नहीं देखी जा सकती है। स्त्री साहित्य के साम्राज्य में सदैव ही अधिष्ठित और प्रतिष्ठित रही है। आज का स्त्री लेखन अब महिलाओं की आम पारिवारिक संवेदना तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह हमारे वर्तमान समय के आम जन-जीवन के सुख-दुःख, रहन-सहन, रीति-रिवाजों, वर्तमान व्यवस्था, बाजार, मीड़िया और सत्ता की असलियत तक अपना प्रश्रय पा चुका है।

संकेताक्षर : *आरम्भिक काल, स्वतंत्रतापूर्व काल, स्वातंत्र्योत्तर काल, राष्ट्रवादी काव्यधारा, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन, स्त्री मुक्ति तथा पितृसत्तात्मकता आदि।*

हिन्दी कथा साहित्य में यह तथ्य निर्विवाद है कि स्त्री लेखन की उपस्थिति इसके आरम्भिक काल से ही रही है, चाहे वह इतना मुखर नहीं दिखाई पड़ता है। हिन्दी कथा लेखन के आरम्भिक काल में पुरुष रचनाकारों के साथ ही बंग महिला जैसी स्त्री लेखिकाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी थी। स्त्री लेखन की प्रथम महिला लेखिका श्रीमती राजेन्द्रबाला घोष (बंग महिला), जिनकी प्रथम मौलिक कहानी 'दुलाईवाली' (1907), 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, जिसमें स्त्री मन की छटपटाहट दिखाई देती है।

जगदीश चतुर्वेदी के अनुसार – "बंग महिला का मौलिक अवदान यह है कि उन्होंने पहली बार आधुनिक ढंग की कहानी लिखी। देशप्रेम, सामाजिक सुधार एवं स्त्री मत की विभिन्न झांकियों को उन्होंने बड़ी खूबसूरती से रचा है।"[1]

आरम्भिक समय की पत्रिकाओं में 'चांद', 'माधुरी', 'सरस्वती' आदि में अनेक महिला लेखिकाओं के लेख छपते रहे थे, जिनके संदर्भ में 'चांद' पत्रिका के सम्पादक ने स्त्री महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है "आज हम 'चांद' को इस देश की स्त्रियों के चरणों में अर्पित करते हैं कि वह इस बालक की जिस प्रकार उचित सेवा लेना चाहे ले।"[2]

स्वतंत्रता पूर्व की स्त्रियां पुरुषों की तरह अधिकार सम्पन्न न होते हुए भी साहित्य क्षेत्र में अपनी भागीदारी बराबर निभा रही थी। उस समय सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियां इनके अनुकूल नहीं थी, फिर भी सन् 1930 के आसपास महिला लेखिकाओं की एक पूरी पीढ़ी उत्साहपूर्वक साहित्य रचना के क्षेत्र में आगे आई। हिन्दी साहित्य की आधुनिक मीरा कही जाने वाली विदुषी महादेवी वर्मा की इस क्षेत्र में अग्रणी भूमिका रही है। जिन्होंने रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिक्षा आदि काव्य संकलनों में नारी की वेदना की हृदयस्पर्शी एवं संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की है। स्त्री विमर्श की महत्वपूर्ण रचना 'श्रृंखला की कड़ियां' में महादेवी जी ने स्त्री विमर्श के विभिन्न पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक चिंतन किया है। इसके संबंध में मृदुला जुगरान ने कहा है कि – "श्रृंखला की कड़ियाँ' जो स्वतंत्रता से पूर्व लिखी जाने पर भी स्त्री विमर्श का सुन्दरतम दस्तावेज है। यह रचना स्त्री का स्त्रीत्व से साक्षात्कार है।"[3]

महादेवी वर्मा ने नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी साहित्य के क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान किया है। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से सामन्ती मानसिकता पर करारा प्रहार किया है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवादी काव्यधारा के अन्तर्गत सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम अग्रणी रहा है जिन्होंने देश भक्ति से ओतप्रोत कविताओं की रचना की। उनके काव्य में नारी चेतना के स्वर भी सुने जा सकते हैं।

"राष्ट्रभक्ति, वीर रस और स्त्रीवादी चेतना का इनकी कविताओं में सुन्दर सामंजस्य मिलता है।"[4]

''कविता की भांति ही हिन्दी कथा साहित्य के आरम्भिक काल में शैल कुमारी देवी का उपन्यास 'उमा सुन्दरी' दि.सं. 1926 एक महिला द्वारा लिखा गया संसार का मौलिक उपन्यास है।"[5]

हिन्दी कथा साहित्य के आरंभिक युग की महिला उपन्यासकारों में यशोदा देवी ने 'सच्चा पति–प्रेम', हेमेन्द्र कुमारी चौधरी ने 'आदर्श माता', सती साध्वी ने 'पति प्राणा अबला', 'सुहासिनी', गोपाल देवी ने 'दयावती', गिरजा देवी ने 'कमला कुसुम', प्रियादेवी का 'लक्ष्मी', कुटुम्ब प्यारी देवी ने 'हृदय का नाप', ज्योतिर्मयी ठाकुर ने 'मधुवन' तथा सरस्वती देवी मैया ने 'उषा के क्षितिज के पार' आदि अनेक उपन्यासों की रचना की जिनमें सामाजिक जीवन के आदर्श, कुरुतियों, पति–प्रेम व भाई–चारा, त्याग तथा बलिदान आदि विषयों की सार्थक प्रस्तुत हुई है।

हिन्दी कथा लेखन के शुरूआती दौर में उषा देवी मित्रा ने सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास रचने का प्रयास किया। इन्होंने 'वचन का मोल', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान', 'पथचारी', 'सोहनी' आदि उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में इन्होंने आदर्श मूल्यों की स्थापना के साथ ही नारी मन की दुर्बलताएं और उनके संघर्ष का यथार्थ चित्रण किया है।

"उषा देवी मित्रा के उपन्यासों में नारी के अंतरमन की कोमलता और प्रेम की टीस का यथार्थवादी चित्रण मिलता है।"[6]

स्वतंत्रतापूर्व स्त्री लेखन पर्याप्त रूप से नहीं हो पाया। इस संबंध में डॉ. उर्मिला गुप्ता ने महिला लेखिका की इस कमी का कारण "शिक्षा की अपर्याप्तता, अध्ययन की सीमाएं, कार्य क्षेत्र में व्यापकता का अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्व, समाज और परिवार का विरोध, प्रोत्साहन का अभाव आदि बातों को बताया है।"[7]

अतः अधिकारों की कमी तथा सामाजिक बंधन और पारिवारिक दायित्व आदि परिस्थितियों के होते हुए भी स्वतंत्रता पूर्व का स्त्री लेखन अपनी अहम् भूमिका अदा करता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री जागृति के कारण स्त्री में शिक्षा और पारिवारिक जीवन के बाहरी रूप और विभिन्न क्षेत्रों के प्रति जाग्रति उत्पन्न हुई। "नगरों और महानगरों में शिक्षित एवं नवचेतना युक्त स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया जो समाज के विविध क्षेत्रों में अपनी कार्यक्षमता प्रमाणित करने के लिए इच्छुक था। देश की बागडोर इन्दिरा गांधी के हाथों में आयी तो इस वर्ग की महत्वकांक्षाएं भी बलवती होने लगी। उसके हाथों की कलम स्त्री का स्त्री से साक्षात्कार कराने लगी। उसकी कुशाग्र मेधा ने सर्जनात्मकता की अपनी अपार क्षमताओं को पहचाना और स्त्री विमर्श का साहित्य परिप्रेक्ष्य स्वचेतना की बाह्य धाराओं से संचित होने लगा।"[8]

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर काल के जीवन मूल्यों में व्यापक परिवर्तन हुआ। महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यह परिवर्तन प्रखरता के साथ प्राप्त होता है। साथ ही परम्परागत जीवन मूल्यों एवं आधुनिक जीवन मूल्यों के बीच संघर्षरत नारी की मानसिकता का चित्रण भी इन उपन्यासों का प्रमुख विषय रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में "नारी मुक्ति से जुड़े अनेक प्रश्न, उन प्रश्नों से जुड़ी उसकी सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक बेबसी और उससे उत्पन्न स्त्री की मनःस्थिति का चित्रण अनेक स्तरों पर हुआ, क्योंकि उसने घर से बाहर कदम रखा था। अतः स्त्री की रचनात्मकता में अन्तर्जगत की व्यथा का मात्र प्रकटीकरण ही नहीं वरन् बाह्य जगत की कठोर मुक्ति पर हो रहे संघर्ष की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार महिला लेखन की मूल संवेदना स्त्री मुक्ति के प्रश्नों से बड़ी गहराई के साथ जुड़ गयी है।"[9]

इस प्रकार आज की स्त्री पुरुष वर्चस्व वाली इस व्यवस्था में हो रहे शोषण से अपने को मुक्त करने के लिए जो प्रयास कर रही है उसे महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। इन्होंने नारी मन के अनेक पहलुओं, समस्याओं, स्त्री–पुरुषों के बदलते संबंधों, तनावग्रस्त मानसिकता, जीवन की अनुभूतियां, घुटन, पीड़ा आदि का सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है।

समकालीन महिला लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, शिवानी, मृणाल पाण्डे, मालती जोशी, कृष्णा अग्निहोत्री, राजी सेठ, मंजुल भगत, ममता कालिया, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, अलका सरावगी, मधु कांकरिया आदि लेखिकाओं ने अनेक संघर्षशील पात्रों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों पर अपने लेखन के द्वारा वर्तमान जीवन की विसंगतियों का यथार्थ रूप में चित्रांकन किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं में सर्वप्रथम रजनी पनिकर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके उपन्यासों में 'ठोकर', 'पानी की दीवार', 'मोम के मोती', 'प्यासे बादल', 'जाड़े की धूप', 'सोनाली दी', 'एक लड़की', 'अपने-अपने दायरे', 'दो रूप', 'महानगर की मीता' आदि प्रमुख उपन्यास है। इनके उपन्यास 'ठोकर' की भूमिका में भगवती चरण वर्मा ने लिखा है "मुझे इस स्वस्थ और मनोवैज्ञानिक उपन्यास को पढ़कर प्रसन्नता के साथ-साथ संतोष भी हुआ कि हिन्दी साहित्य की चेतना का वास्तविक साहित्यिक सृजन के प्रति सजग है।"[10]

इनके उपन्यासों में नारी के मानसिक संघर्षों, स्त्री की पारिवारिक समस्याओं, उसके नौकरी पेशा रूप के साथ ही बदलते प्रेम संबंधों का वर्णन प्रमुखता से मिलता है। इनके उपन्यास 'महानगर की मीता' में नारी की अपनी क्षमता और उसके आत्मविश्वास का उत्कृष्ट उदाहरण मीता के रूप में हमारे सामने आता है। प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक नारी जीवन पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। "टूटते हुए भारतीय परिवारों में प्रेम विवाह और तलाक की जो समस्या पैदा हो गई, उसी को लेखिका ने उठाया है और अत्यंत सहज भाव से परिणति की ओर ले गई है। हमारे वर्तमान चिंतन के खोखलेपन को जहां हर आदमी दूसरे के लिए उनकी जिन्दगी जीने की कोशिश करता है, प्रकट करते हुए लेखिका ने मीता के रूप में एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है जो अपने लिए जीवन को जीना जानती है।"[11] इस प्रकार मीता के चरित्र के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट किया कि नारी अन्याय सहने के लिए नहीं है।

इस काल की दूसरी प्रमुख लेखिका शांति जोशी ने 'उदास पन्ने', 'मेरा मन वनवास दिया सा', 'शून्य की बांहों में', 'मछली और मरा जल' तथा 'एक और बात' नामक उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों में पति-पत्नी संबंध, नारी हृदय की पीड़ा तथा नारी मन की विवशता एवं युवा वर्ग का आक्रोश चित्रित हुआ है। अन्य लेखिकाओं में लीला अवस्थी ने 'दो राहें' उपन्यास में मध्यम वर्ग का सापेक्षिक चित्रण प्रस्तुत किया है। "इस उपन्यास में भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं पाश्चात्य संस्कृति के खोखलेपन को चित्रित किया गया है।"[12]

इस उपन्यास के अलावा लेखिका के 'बिखरे कांटे' और 'बदरवा बरसन आये' दो अन्य उपन्यासों में भी नारी जीवन के अनेक पक्षों पर सार्थक प्रकाश डाला गया है।

बंसत प्रभा ने 'सांझ के साथी' और 'अधूरी तस्वीर' उपन्यासों में सामाजिक विषमताओं और पारिवारिक उलझनों को अभिव्यक्ति दी है।

इसी समय अन्नपूर्णा तांगडी ने 'निर्धनता का अभिशाप', 'चिता की धूल', 'मिलनाहुति' तथा 'विजयनी', विमलदेव ने 'ज्योतिकिरण', 'अर्चना' तथा 'असली हीरा नकली हीरा', शकुन्तला शुक्ल ने 'अंधेरे उजाले के फूल', 'पथ का जला' आदि उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर नारी जीवन की विडम्बनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

शशिप्रभा शास्त्री ने 'वीरान रास्ते', 'झरना', 'नावें', 'सीढ़ियां', 'परछाइयों के पीछे', 'परसों के बाद' आदि उपन्यासों में घर परिवार व मानव मन की बारीकियों का यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

हिन्दी कथा लेखन के क्षेत्र में कृष्णा सोबती प्रख्यात लेखिका रही है। इनके लेखन में काव्य की सी कोमलता, माधुर्य तथा विलक्षण खुलापन और बेबाक सहजता समाहित है। इनके प्रमुख उपन्यासों में 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो-मरजानी', 'यारों के यार', 'तिन पहाड़', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'जिंदगीनामा', 'दिलो-दानिश' और 'समय सरगम' प्रमुख है।

इन उपन्यासों में नारी जीवन की कड़वाहटों का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत हुआ है जिसमें आधुनिकता बोध, काम वासना, नारी जीवन की पीड़ा, घुटन और सामाजिक समस्याओं का चित्रण बहुत ही मार्मिक ढंग से अंकित हुआ देखा जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी कथा लेखिका मन्नू भण्डारी का 'एक इंच मुस्कान' (राजेन्द्र यादव सह लेखन), 'महाभोज', 'आपका बंटी' आदि प्रमुख उपन्यास है जिनमें वृहत्तर सामाजिक आयाम को अपनाकर व्यापक जीवन दृष्टि का परिचय मिलता है।

शिवानी ने अनेक उपन्यासों और लघु उपन्यासों की

रचना की है। जिनमें 'मायापुरी', 'कृष्णकेलि', 'भैरवी', 'विष कन्या', 'चल खुसरो घर आपने' आदि प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में स्त्री के प्रेमिका रूप, सती रूप, पत्नी रूप तथा मानवीय देह सौन्दर्य और चित्तवृत्तियों का सजीव चित्रण देखा जा सकता है।

उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'अन्तवशी' 'भया कबीरा उदास' आदि प्रमुख उपन्यास हैं जिनमें महानगरीय जीवन के संत्रास और विदेश मे बसे पति के साथ जीवन यापन करने वाली भारतीय स्त्री के सुख–दुःख को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है।

"बुद्धिजीवी नारी के जीवन की उदासीनता को उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है और रूढ़ियों, रूढ़ मान्यताओं और मृत परम्पराओं पर चोट की है। उषा प्रियंवदा भारतीय एवं विदेशी समाज की संगतियों–विसंगतियों को समान स्तर पर अनुभव करने वाली लेखिका है।"[13]

नारी की उदासी, अकेलापन, ऊब और घुटन आदि भावों को उषाजी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है।

हिन्दी कथा साहित्य में मुस्लिम मध्यमवर्गीय चेतना की कथा लेखिका मेहरून्निसा परवेज का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके 'आंखों की दहलीज', 'कोरजा', 'अपना घर' और 'अकेला पलाश' प्रमुख उपन्यास है, जिनमें वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की असंगतियों को आधार बनाकर नारी जीवन की विषमताओं का विशेष रूप में प्रस्तुतीकरण हुआ है।

दिनेश नंदिनी डालमिया हिन्दी साहित्य में गद्य–गीतकार, उपन्यासकार तथा कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध लेखिका है। "समाज में कटुक्तियों तथा व्यंग्य के हलाहल को हलक से उतारकर इन्होंने रचनामृत प्रदान किया है, उसका महत्व असंदिग्ध है।"[14]

इनके द्वारा रचित प्रमुख उपन्यास 'मुझे माफ करना', 'आहों की बैसाखियां', 'कंदील का धुआं', 'आंखमिचौली' तथा 'मरजीवा' आदि प्रमुख हैं, जिनमें जीवन यथार्थ के विभिन्न पहलुओं का कलात्मक प्रस्तुतीकरण देखा जा सकता है।

आठवें दशक की प्रारम्भिक लेखिका में निरूपमा सेवती का प्रमुख स्थान है। इनके द्वारा 'पतझड़ की आवाजें', 'बँटता हुआ आदमी', 'मेरा नरक अपना है' तथा 'दहन के पार' रचे गए प्रमुख उपन्यास हैं जिनमें समाज की समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण हैं साथ ही उन परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं, विसंगतियों एवं दर्द की अनुभूतियों की जीवंत प्रस्तुति देखी जा सकती है।

मृदुला गर्ग का स्त्री लेखन के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा रचित उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'चित्तकोबरा', 'मैं और मैं' तथा 'अनित्य' प्रमुख है। इन उपन्यासों में वैवाहिक समस्या, सैक्स समस्या, नारी शोषण, करूणा और संत्रास तथा राजनीतिक चिंतन प्रमुख विषय रहे है।

समकालीन सामाजिक यथार्थ को आधार बनाकर स्पष्ट रूप से उल्लेखित करने वाली लेखिका ममता कालिया ने अपने 'बेघर' तथा 'नरक–दर–नरक' उपन्यासों में सामाजिक अलगाव, शारीरिक संबंधों तथा जीवन की आर्थिक समस्याओं को स्पष्ट रूप से चित्रित किया है।

इनके अतिरिक्त दीप्ति खंडेलवाल कृत 'पिया', 'कोहरे' तथा 'प्रतिध्वनि', मालती जोशी कृत 'सहचारिणी' एवं 'राग विराग', मंजुल भगत कृत 'तिरछी बौछार', बिन्दु सिन्हा कृत 'सागरपाखी', चन्द्रकांता कृत 'अंतिम साक्ष्य', 'ऐलान गली जिंदा है', कांता भारती कृत 'रेत की मछली', कुसुम अंसल कृत 'उदास आंखे', 'नींव का पत्थर', 'अपनी–अपनी यात्रा', मीनाक्षी पुरी कृत 'जाने पहचाने अजनबी', सूर्यबाला कृत 'पटरंगपुरपुराण', ज्योत्स्ना मिलन कृत 'अपने साथ', कृष्णा अग्निहोत्री कृत 'बात एक औरत की', 'कुमारिकाएं', सुधा भटनागर कृत 'मिलन मुक्ति', अनामिका कृत 'पर कौन सुनेगा', प्रभा सक्सेना कृत 'टुकड़ों में बंटा इन्द्र धनुष', आदि उपन्यासों में स्त्री को केन्द्र में रखकर नारी की त्रासद स्थिति और बदलते जीवन मूल्यों को समग्र रूप से चित्रित होते देखा जा सकता है।

स्त्री लेखन पर अर्चना वर्मा ने लिखा है कि "स्थिति जितनी ही विकल्पहीन रूप से अकर्मण्य होती है, उतनी ही पीड़ा के महिमा मण्डन और हाहाकार का अनुपात अधिक होता है, मानो उसे स्वयं ही अपनी उपस्थिति की असहनीयता का विश्वास दिलाने की जरूरत हो। यानि पीड़ा का स्रोत स्थिति में कम, विकल्पहीनता में अधिक है।"[15]

निष्कर्ष – इस प्रकार हिन्दी कथा लेखन जगत में महिला कथा लेखिकाओं ने प्रमाणित कर दिया है कि वे पूर्व की भांति अपने रचनात्मक लेखन में किसी दायरे

मे सिमटी हुई नहीं है, बल्कि आज महिला कथा लेखन की स्थिति उसके विपरित है। वर्तमान समय में महिला लेखन हिन्दी कथा के हर युग वाद और विचारधारा से जुड़ा रहा है। आज स्त्री लेखन जितना अधिक हो रहा हैं, वह उतना ही अपनी साहित्यिक और सामाजिक गुणवत्ता भी रखता है। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक स्त्री लेखन निरन्तर बदलते समय, समाज और जीवन मूल्यों के संदर्भ में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है तथा वस्तुपरकता की दृष्टि से प्रासंगिक भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *स्त्रीवादी साहित्य विमर्श – जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 131*
2. *महिला कथा लेखन : एक विकास यात्रा – समीक्षा लेख, लेखिका – पुष्पा जौहरी, पृ. 214*
3. *नारी विमर्श की पुरोधा : महादेवी वर्मा – आजकल पत्रिका, मई 2004, लेखिका मृदुला जुगरान, पृ . 14*
4. *स्त्रीवादी साहित्य विमर्श – जगदीश चतुर्वेदी, पृ. 132*
5. *स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में यथार्थ के विभिन्न रूप – नीहार गीते, पृ.7*
6. *हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – डॉ. उषा यादव, पृ.46*
7. *स्वातंत्र्योत्तर महिला कथा लेखिकाएं – डॉ. उर्मिला गुप्ता, पृ. 11*
8. *हिन्दी अनुशीलन – डॉ. राजकमल राय, सं. डॉ. यतीन्द्र तिवारी, पृ. 63*
9. *वही, पृ. 63*
10. *पानी की दीवार – भूमिका से – रजनी पनिकर, पृ.7*
11. *कादंबिनी – जुलाई 1970, पृ. 196*
12. *हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना– डॉ. उषा यादव, पृ. 55*
13. *आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप – सं. डॉ. मुदिता चन्द्रा, डॉ. सुलक्षणा टोप्पो, पृ. 447*
14. *हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना– डॉ. उषा यादव, पृ. 80*
15. *बीसवीं सदी की हिन्दी कहानी का स्त्री अध्ययन – अर्चना वर्मा, शताब्दी कथा साहित्य, पृ. 181*

मध्यकालीन मारवाड़ में पुरुष एवं स्त्री आभूषण

गरिमा
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश फोर्ट, जोधपुर में स्थित जवाहर खाना की बही से भी स्त्रियों के विभिन्न आभूषणों की जानकारी मिलती है। सूरज प्रकाश, राज विलास, संयोगबत्तीसी, अभय विलास, बांकीदास री ख्यात, गजगुणरूपकबंध, अर्ष रामायण, दस्तूर कौमवार, नाम मंजरी आदि ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों से भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों के बारे में जानकारी मिलती है। चन्द्रकृत 'आभूषण-बत्तीसी' तो पूरी तरह से आभूषणों को समर्पित ग्रन्थ है।

संकेताक्षर : *शिरोभूषण, कर्णाभूषण, गले के आभूषण, कमर के आभूषण, बाहू के आभूषण, पैरों के आभूषण, अंगुलियों के आभूषण।*

मध्यकालीन मारवाड़ में महिला एवं पुरुष द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों की तो परम्परायें भी अनोखी थी। ये परम्परायें मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ सौन्दर्य की वृद्धि के लिए विकसित होती गई। ये आभूषण सोने व चाँदी में बनते थे। मध्यकालीन मारवाड़ में धातुओं के आभूषण को धारण करने से नारियों में नई आभा दिखती है। ये आभूषण सौन्दर्य को निखारने का कार्य भी करते हैं। वेदों व पुराणों में इसके महत्व पर प्रकाश डाला गया है। उनका मानना था कि सिर से पैर तक शरीर में प्राण शक्ति का आवरण रहता है जो पूरे शरीर में एक तंत्र का कार्य करता है।

आलोच्यकालीन मारवाड़ क्षेत्र में भी आभूषणों के प्रति विशेष आकर्षण था। यहां का मानव सौन्दर्य प्रेमी रहा है, शरीर को सुन्दर एवं आकर्षक बनाने के लिए पुरुष एवं स्त्रियां दोनों ही विभिन्न प्रकार के आभूषणों को धारण करते थे। यद्यपि मारवाड़ क्षेत्र में धन की विपुलता नहीं रही है, फिर भी यहां पर गहनों के प्रति असाधारण लगाव रहा है। इसका मुख्य कारण यह रहा है कि गहना बनवाना आर्थिक सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना जाता रहा है । इस सम्बन्ध में एक कहावत भी प्रसिद्ध है-

गेणा भूखे रो भोजन अर धायाँ रो सिणगार हवे।[1]

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर की फाईलों से ज्ञात होता है कि रानियां, उप पत्नियां एवं पासवाने विभिन्न प्रकार के सुन्दर गहनों से सजी - संवरी रहती थी। अभिजात्य वर्ग के स्त्री-पुरुष सोने-चांदी एवं कीमती पत्थरों के आभूषण पहनते थे, जिसमें हीरा, पन्ना, माणक, मोती, पुखराज, फीरोजा, नीलम विशेष तौर से प्रयोग में लाये जाते थे। लाख, शंख, हाथीदांत, पुष्पराग, गोमेद एवं प्रवाल रत्न के आभूषण भी बनाये जाते थे, जिन्हें स्त्री एवं पुरुष बडे ही चाव से पहनते थे । आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति पीतल के आभूषण पहने थे।

सूरज प्रकाश, राज विलास, संयोगबत्तीसी, अभय विलास, बांकीदास री ख्यात, गजगुणरूपकबंध, अर्ष रामायण, दस्तूर कौमवार, नाम मंजरी आदि ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों से भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों के बारे में जानकारी मिलती है। चन्द्रकृत 'आभूषण-बत्तीसी' तो पूरी तरह से आभूषणों को समर्पित ग्रन्थ है।[2] महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश फोर्ट, जोधपुर में स्थित जवाहर खाना की बही से भी स्त्रियों के विभिन्न आभूषणों की जानकारी मिलती

है। इस प्रकार मारवाड़ क्षेत्र में श्रृंगार पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

मारवाड़ की महिलाओं की प्रसाधन प्रियता प्राचीन काल से चली आ रही है। ऐसे कई आभूषण है जो यहाँ के जन–जीवन में प्रचलित है, जिनकी बनावट व सौन्दर्य अद्‌भूत है। साधारण स्त्रियाँ काँसे, पीतल, ताँबा, कौड़ी, सीप अथवा मूँगे के गहनों से ही संतोष कर लेती थी। हाथी दाँत से बने गहनों का प्रयोग होता था। पहली और दूसरी सदी की पकाई हुई मिट्टी से निर्मित मूर्तियों में आभूषणों के प्रकार देखने को मिलते हैं।

मारवाड़ में औसियाँ, किराडू के मन्दिर में नारियों की कई आभूषण उत्कीर्ण मूर्तियां मिलती हैं।[3] इन मन्दिरों में अनेक अप्सराओं एवं नायिकाओं के मूर्ति फलक है, जो तत्कालीन समय के आभूषणों एवं सौन्दर्य प्रसाधन को दिग्दर्शित करते हैं।

मध्यकालीन मारवाड़ में स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले आभूषण–

शिरोभूषण–

शीशफूल :– यह सुन्दर स्वर्णाभूषण सिर के पिछले भाग में चाली में पहना जाता था। इसमें बहुमूल्य जवाहरात जड़े होते थे यह सिर फूल, सूरज आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता था।

टीका :– यह लगभग 2 इंच परिधि वाला आभूषण सोने के गोल पती का होता था। इसके ऊपर 'छिलाई' का सुन्दर कार्य किया होता था तथा मूल्यवान नगीने जड़े होते थे।[4] यह गोल आभूषण एक स्वर्ण निर्मित चैन से जुड़ा होता था। यह चैन माँग के मध्य एक हूक द्वारा अटका दी जाती थी।

सिर–मांगः– मारवाड़ की स्त्रियाँ अपने बालों की पट्टी (मांग) मैं इसे पहनती थी। यह चैननुमा हुआ करती थी और उसमें छोटे बड़े कई बहुमूल्य नगीने जड़े होते थे। स्त्रियाँ अपनी माँग को बहुमूल्य मोतियों से भी सजाया करती थी।

बोरः– यह सोने और चाँदी दोनों धातुओं में बनाया जाता था । इसके अग्र भाग में छोटे–छोटे दाने उभरे हुए होते थे तथा पृष्ठ भाग में एक हुक लगा होता था जिसमें धागा बाँध कर स्त्रियाँ इसे अपने मस्तक पर गुंथा करती थी इसकी आकृति 'बेर' के समान होने के कारण इसे 'बोर' और बोरला भी कहते थे। सोने का बोर सम्पन्न वर्ग की महिलाओं द्वारा पहना जाता था एवं चाँदी से बना बोर साधरण महिलाओं द्वारा पहना जाता था।

रखड़ीः– स्वर्ण आभूषण सुहाग का चिह्न समझा जाता था गोलाकार में अनेक आभूषण के अग्र भाग में सुन्दर जवाहरात जड़े होते थे तथा पृष्ठ भाग में एक हुक सा होता था जिसमें धागा बाँधकर इसे ललाट पर स्थिर किया जाता था।

झेलाः– सोने या चाँदी की दो तीन लड़ी सांकले जो दोनों और कनपटियों में होकर बालों में अटकाई जाती थी, 'झेला' कहलाती थी इनका प्रयोग उच्च वर्ग साधारण वर्ग की स्त्रियों में बहुत होता था

कर्णाभूषण

कर्णफूलः– कान के निचले भाग में पहना जाने वाला यह आभूषण कर्णफूल के नाम से जाना जाता था इसके मध्यभाग में सुन्दर नगीना होता था। इसके पृष्ठ भाग में एक कील होती थी, जो कान में बने छेद में दूसरी ओर तक पाली जाती थी। यह कर्णफूल स्थानीय स्त्रियों का बड़ा प्रिय आभूषण था। यह चाँदी तथा स्वर्ण का बनाया जाता था।

ओगन्याः– कानों के ऊपरी छोर पर पान के पत्ते की आकृति के समान सोने व चाँदी के आभूषण को 'ओगन्या' कहा जाता था।

झूमकाः– कान में पहने जाने वाले इस आभूषण के ऊपरी भाग कर्ण फूल जैसा ही होता था। इसके नीचे की ओर सोने के गोल बुन्दे जुड़े होते थे। इसमें चैनों का प्रयोग करके इसकी बनावट में कई परिवर्तन किये जाते थे। इन झुमकों में मूल्यवान जवाहरात जड़े होते थे।

नथः– सिलाई की छोटी सूई जैसे मोटे स्वर्णतार से बनी 'नथ' नाक में पहना जाने वला एक प्रिय आभूषण था।[5] इसकी परिधि 1 इंच से 2 इंच तक की होती थी किंतु कहीं–कहीं इससे भी अधिक परिधि वाली नथ पहनी जाती थी। इसके मध्य एक स्वर्ण पत्र जड़ा होता था, जिसमें छोटे–छोटे सुन्दर नगीने जड़े होते थे। कभी–कभी नाक पर इसके भार को कम करने के लिए इसे कान के पीछे की ओर बालों के जुड़े से धागे अथवा चेन से बाँध दिया जाता था।' नथ पहनने का वैज्ञानिक दृष्टि कोण यह है कि इससे पेट स्वस्थ रहता है।

लोंग (लवंग):– नाक में पहना जाने वाला यह आभूषण लोंग सदृश होता था। इसके ऊपरी भाग में स्वर्ण की चार छोटी–छोटी 2 पत्तियां होती थी, जिनके मध्य एक लाल नंग होता था।

हार :– गले में विभिन्न प्रकार के हार पहने जाते थे ये हार स्वर्ण पतरों में बनाये जाते थे, जिनमें बहुमूल्य

जवाहरात जड़े होते थे। ये हार विभिन्न नामों से पुकारे जाते थे। उनमें चम्पाकली, कंठश्री, चन्द्रहार, उर्वसी आदि प्रमुख थे। इनको पहने के वैज्ञानिक लाभ यह है कि इससे दिमाग व सरवाइकल को आराम मिलता है।

मुक्तामालाः– बड़े घराने की स्त्रियाँ अधिकांशतः गले में मोतियों की माला पहना करती थी। यह शुद्ध बहुमूल्य मोतियों की बनाई जाती थी। मोतियों की एक विशेष प्रकार की माला 'सुमी' नाम से प्रसिद्ध थी। यह सुमर्णी स्वर्ण मोतियों की भी बनी होती थी।

हंसलीः– ठोस स्वर्ण अथवा रजत निर्मित हंसली अधिकांश ग्रामीणों का मुख्य आभूषण रहा था। नगर अथवा कस्बों में बालकों को पहनाई जाती थी, जिसके पीछे यह उद्देश्य रहता था कि इसके पहनाने से बालकों को हंसली नामक हड्डी नहीं खिसकती, इसके मध्य भाग में 'छिलाई' का सुन्दर कार्य किया होता था।

बाहू के आभूषण

कंगनः– भारी स्वर्ण का बना यह आभूषण कलाई में पहना जाता था। या रिंग की तरह गोलाकार होता था जिसके ऊपरी भाग में गोल–गोल दाने उभरे हुए होते थे। गरीब परिवार की स्त्रियाँ चाँदी के कंगन पहना करती थी ।

चुड़ियाँः– यह स्वर्ण अथवा रजत की बनी होती थी। यह वृताकार आभूषण हाथों की कलाइयों में पहना जाता था। इसके ऊपरी भाग में छोटे – छोटे दाने उभरे हुए होते थे। यह ठोस तथा खोखली दोनों ही तरह की बनाई जाती थी। कलाई मे चुड़ियों के साथ–साथ गजरा, नोगरी तथा गोखरू आदि भी पहने जाते थे। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से चुड़ियाँ व कंगन पहनने से दिल, सांस, गला, गर्दन, मस्तिष्क, प्रोस्टेट, यूटरस, कमर के निचले हिस्से का दर्द, ओवरी इत्यादि स्वस्थ रहते हैं।

मुद्रिका (मुंदड़ी):– ये अंगूठियाँ हाथों की उंगलियों में पहनी जाती थी ये सोने अथवा चाँदी की बनाई जाती थी जिसमें सुन्दर नगीने जड़े जाते थे अथवा उनके ऊपर छिलाई काम होता था। ये अंगुठियां एक से अधिक उंगलियों में भी पहनी जाती थी। इनके कई नाम प्रचलित थे यथा मुद्रीय, मुद्रिका, अंगुठी। 'नवनग' नामक विशिष्ट प्रकार की अंगुठी भी पहनी जाती थी इसमें नवग्रह के नगीने जड़े होते थे इसके पहिनने का यह उद्देश्य रहता था कि इससे ग्रहों का प्रभाव कम होगा।''[6] अन्य वैज्ञानिक कारणों का सम्बन्ध सीधे उद्देश्य से होता है, इसीलिए विवाह की अंगूठी को इसी अंगुली में पहनाया जाता है। अनामिका में अंगूठी पहनने से आँखे व चेहरा सुन्दर बनता है तथा तंत्रिका तंत्र को आराम मिलता है।

सोवनपानः– हथेली के ऊपरी भाग में पहना जाने वाला यह आभूषण पान अथवा पुष्पाकार होता था। अतः इसे सोवनपान या हथफूल के नाम से जाना जाता था। ये सोने अथवा चाँदी के बनाये जाते थे। स्वर्ण निर्मित आभूषण में सुन्दर जवाहरात भी जड़े होते थे।

बाजुबंधः– बाजुबंध महिलाओं द्वारा बाजू में पहना जाता था। दोनों तरफ से गोल नाके वाली सीको को एक–दूसरी के पास ग्रंथित करके बनाया जाता था जिसमें रेशमी रंग–बिरंगे बूंदे और हरी, लाल गुच्छों को पिरोकर लटकाये जाते थे।

करधनीः– सोने के तारों का बना यह आभूषण कमर के इर्द–गिर्द पहना जाता था। इसमें सोने की छोटे–छोटे घुँघरियाँ लगी होती थी, जो स्त्रियों के चलते समय मधुर–मधुर आवाज किया करती थी। इसे मेखला, कटिमेखला, कन्दोरा आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता था।[7]

सटकाः– यह सोने व चाँदी के छल्लों से निर्मित आभूषण होता था। इसे लहँगे के 'नेफे' में अटकाकर लटकाया जाता था।

कड़ा व लंगरः– चाँदी के बने कड़े अधिकांश मारवाड़ की महिलाओं के द्वारा पैरों में पहना जाता था। ये कड़े ठोस अथवा खोखले होते थे। पाँव में पहनने के बाद इन्हें वापस खोलना आसान नहीं था। वजन में भी ये सामान्यतः 2 पौड से कम के तो रहे होंगे। कड़ों के नीचे पहना जाने वाला आभूषण व 'लंगर' चाँदी के मोटे–मोटे तारों को मुड़ाकर बनाया जाता था। यह वजन में भारी हुआ करता था। इन कड़ों व लंगर का देशों में वैज्ञानिक महत्व यह है कि इनसे पेट, कमर, पैर, पिण्डली, कल्ले के दर्द से आरम मिलता है।

आंवला व नेवराः– कड़े के साथ पहना जाने वाला यह आभूषण आँवला ठोस चाँदी का हुआ करता था। इसके बाहरी भाग में छिलाई का काम किया होता था इसके अतिरिक्त कड़ों के साथ एक अन्य आभूषण 'नेवरा' भी पहना जाता था।[8] यह भीतर से खोखला हुआ करता था तथा इसके बाहरी भाग पर छिलाई का काम किया जाता था।

पैरों के आभूषण

झांझर तथा नूपुरः– पैरों में पहने जाने वाला यह आभूषण चाँदी के बनाये जाते हैं। इनकी विशेषता घुँघरियों के कारण थी जो नारियों के चलने पर झुन–झुन करती थी।

अंगुठा (गोल्या) और बिछियाँः– पैरों में अंगूठे के समान पहना जाने वाला आभूषण अंगुठा अथवा गोल्या कहलाता था। इसे छल्ला नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। अंगूठे तथा उंगलियों की अंगुठियों से जुड़ी चैनों में घुँघरियाँ लगाकर पहना जाने वाला आभूषण बिछियाँ कहलाता था।[9] इनका वैज्ञानिक महत्व यह है कि इससे रीढ़ की हड्डी, पिण्डलियों के दर्द, जननांगों में दर्द, पेट दर्द, वक्ष व सिर दर्द में आराम मिलता है तथा इसके कारण नाभि भी नहीं टलती है।

पुरुष आभूषण

शिरोभूषण

अभिजात्य वर्ग के पुरुष सिर पर चूड़ामणि धारण करते थे। यह स्वर्ण की खोल में जड़ित लाल मणि होती थी, जिसे मुकुट, साफे एवं नंगे सिर बालों के ऊपर भी धारण किया जाता था। कान के आभूषण के नमूने धार्मिकता पर आधारित थे, जिनमें तीर, पीपल और ध्वज उल्लेखनीय है। पुरुष कान में सोने के कुण्डल, मुरकियां, गोखरु, लोंग धारण करते थे। लोंग में लाल एवं सफेद रंग के रत्नों का भी प्रयोग होता था जिन्हें स्थानीय बोली में ''सतलिखी'' लोंग कहते थे। जिनका प्रचलन इस क्षेत्र के मेघवाल एवं राजपूत जाति के पुरुषों में अत्यधिक था।[10]

गले के आभूषण

पुरुष प्रायः गर्दन में कण्ठसूत्र और निष्क पहनते थे । निष्क में आठ सौ दाने होते थे। गर्दन से लेकर वक्षस्थल से होती हुई कमर तक लटकने वाली सोने, चांदी, मोती अथवा फूलों की बनी हुई माला धारण किया करते थे।[11] गले में सोने एवं चांदी का डोरा भी पहनते थे। इसके अलावा तुलसीमाला, रुद्राक्षमाला, मणिमाला, स्फटिकमाला भी पहना करते थे। कमीज में सोने के बटनों का प्रयोग भी करते थे।

कमर के आभूषण – पुरुष कमर पर स्वर्णसूत्र धारण करते थे, जिसे दाम या मेखला कहा जाता था।

बाहू के आभूषण – पुरुष भुजाओं में केयूर अथवा अगद धारण करते थे।[12] वे हाथों में सोने एवं चांदी के कड़े पहनते थे इनमें व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार हीरे एवं मणियां भी जड़वा लेते थे। यहां पर धार्मिक दृष्टिकोण से भी अपने इष्टदेव के नाम का चांदी का कड़ा भी धारण किया जाता था।

अंगुलियों के आभूषण– अंगुलियों में सोने एवं चांदी की अंगुठियां या मुद्रिका पहनने का प्रचलन था।

यहां की लोक गाथाओं में अंगुला का उल्लेख मिलता है इसे स्थानीय बोली में ''बीन्टी'' भी कहते है, जिस पर यह लोकगीत आधारित है–

''बिंटी म्हारी सोने री हती,
बीन्टी म्हारी रूपे री हती।''[13]

जहां एक तरफ नवयुवक विभिन्न रत्नों से जड़ित अंगुठियां पहनते थे, वहीं बुजुर्ग रत्नरहित अंगुठियां पहनते थे। जिन्हें ''ठप्पे'' वाली अंगूठी कहते थे।[14] सगाई के अवसर पर भी अंगूठी भेजने का रिवाज था। जीजा द्वारा साली को अंगूठी उपहार स्वरूप भेंट की जाती थी।

पैरों के आभूषण–अभिजात्य वर्ग के पुरुष पैरों में सोने के कड़े पहनते थे । कमजोर आर्थिक स्थिति वाले व्यक्ति पैरों में चांदी एवं पीतल के कड़े पहना करते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *स्थानीय लोक कहावत*
2. *डॉ. विक्रम सिंह राठौर, मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर,1996 पृ.68*
3. *स्वर्ण सुदर्शन, धर्मसी प्रकाशन समिति, बाड़मेर, 2000, पृ. 32.*
4. *डॉ. विक्रम सिंह राठौर, मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर,1996 पृ.68*
5. *वही पृ.68*
6. *वही पृ.68*
7. *डॉ.गोपीनाथ शर्मा, 2014, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ .90, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर*
8. *वही पृ.90*
9. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा, 2014, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 90, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर*
10. *स्वर्ण सुदर्शन, धर्मसी प्रकाशन समिति, बाड़मेर, 2000, पृ. 33.*
11. *वही पृ.33*
12. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा, 2014, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 90, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर*
13. *स्थानीय लोक गीत*
14. *भेटवार्ता भूरोमल गढवीर से, बाडमेर दि 15.7. 2016*

मुंहणोत नैणसी और उनके ऐतिहासिक ग्रंथ : एक अध्ययन

डॉ. मीनाक्षी बोराणा
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

साहित्य धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भारत वर्ष अपनी एक अलग और निराली पहचान रखता है। ऐसी ही पहचान लिए हुए राजपुताना इतिहास हमें एक हाथ में तलवार और दुसरे में हमेशा कलम धारण किये हुए नजर आता है। ऐसे ही कलम के धनी थे मारवाड़ रिहासत के नर रत्न प्रसिद्ध साहित्यकार मुहंणोत नैणसी जो कि कुशल देश दीवान, नामवर योद्धा तो थे ही साथ ही साथ वे मारवाड़ के इतिहासकार एवं साहित्यकार भी थे। राजस्थान में समय-समय पर राजवंशों के, रजवाड़ो के, इतिहास पुरूषो के लिए वंशावलियां, ख्याते, पीढ़िया, विगत, बात और हकीकत लिखने की आदि परम्परा रही है। मुहंणोत नैणसी का साहित्य भी दो रूपों में सामने आता है। एक काव्य रूप और दूसरा इतिहास लेखन रूप इतिहास की दृष्टि से नैणसी ने दो प्रमुख ग्रंथो की रचना की है। नैणसी की ख्यात वि.स. 1709 में रचित बहुत ही महत्वपूर्ण ख्यात है। जिसमें तत्कालीन समाज संस्कृति, रीति, रिवाज, परिवेश, युद्ध, सेना, हथियार, समाजिक, धार्मिक,राजनैतिक और कला संबंधी विषयों का बड़ा ही सटीक वर्णन किया गया है। मारवाड रा परगना री विगत एक क्रमबद्ध इतिहास ग्रंथ है। जिसमें मारवाड़ के राठौड राजघराने की राजधानी मण्डोर और जोधपुर राज्य के प्ररगना में मारवाड़ के राजनैतिक इतिहास का पूरा विगतवार वर्णन किया गया है। नैणसी एक प्रमाणिक इतिहास लेखक आला दर्ज के गद्य पद्य रचियता थे। जिस पर आज भी राजस्थानी भाषा के हितैशी और विद्वान गर्व है और इसी कारण इतिहासकारों ने मारवाड के अबुल फजल की उपाधि प्रदान की है।

संकेताक्षर : *मुहंणोत नैणसी, मारवाड,. परगना, विगत, ख्यात, दीवान, इतिहासकार, राजस्थानी भाषा।*

साहित्य धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भारतवर्ष अपनी अलग एवं निराली पहचान रखता है। यहां के प्रत्येक प्रांत के इतिहास की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय साहित्य और सांस्कृतिक चेतना की अद्‌भुत गौरव गाथा है। राजपूताना के एक हाथ में तलवार और दूसरे में हमेशा कलम रही हैं। तलवार के कारण आने वाले दुश्मनों को भगाकर देश की रखवाली की तथा कलम से काव्य रचना करते हुए यहां के साहित्य को आगे बढाया। राजस्थानी साहित्य का यहां के इतिहास के साथ गहरा संबंध रहा है। यहां के साहित्यकारों, ने इतिहास की घटनाओं को बात, ख्यात, विगत, वचनिका, रासो, रूपक, प्रकाश इत्यादि काव्य विधाओं में लिखकर हमेशा के लिए अजर अमर कर दिया।

राजस्थान के ऐसे नर रत्नों में कलम और तलवार के स्वामी मुहता नैणसी का नाम सभी में प्रमुख है। नैणसी कुशल देश दिवान, नामवर योद्धा, तो थे ही इसके साथ-साथ ही वे मारवाड़ के इतिहासकार व साहित्यकार भी थे। इस कारण इतिहासकार उनको मारवाड़ के अब्दुल फजल की उपाधि देते है।

मुंहणोत नैणसी जयमल जी के पुत्र थे। ''नैणसी का जन्म 9 नवम्बर, 1601 ई. (वि.सं. 1667 मार्गशीर्ष सुदी 4) को हुआ।''[1] आपके माता का नाम सरूपदे था। प्रतापी पिता के सारे गुण आप में थे। इस कारण महाराजा गजसिंह जी के समयसे नैणसी अपने पिता जयमल जी के साथ प्रत्येक युद्ध में जाते थे। वि.सं. 1689 से लेकर 1715 तक आप कई छोटे-बड़े युद्ध किए और उनमें जीत हासिल कर विजय का सेवरो धारण किया। आपके पराक्रम और सेवा से प्रसन्न होकर महाराजा जसवंतसिंहजी 1714 में देश दीवान की पदवी इनायत कर नैणसी का मान बढाया। महाराजा

जसवंतसिंह जी का आप पर पूरा विश्वास था। इस पर महाराजा मारवाड़ में जन्में नैणसी राजस्थानी, हिन्दी और डिंगल के जानकार थे। उनकें मारवाड़ के राजदरबार में कवियों का बहुत मान-सम्मान था। नैणसी डिंगल काव्य से अच्छी तरह परिचित थे। सफल हाकम और देश दीवान होने से उन्हें राजकाज और शासन चलाने का गहरा अनुभव था।

नैणसी मारवाड़ के प्रसिद्ध साहित्यकार माने जाते है। उनका लिखित साहित्य दो रूपों में हमारे सामने आता है। एक काव्य रूप और दूसरा इतिहास लेखन रूप। नैणसी रचित फुटकर राजस्थानी काव्य मिलता है। इस हेतु खोज होती है तो शायद उनका लिखा और साहित्य मिल सकता है क्योंकि नैणसी कृत जो छंद आज तक पढ़ने में आये है उनसे उनकी काव्य प्रतिभा का साफ परिचय मिलता हैं। जब कभी भी मारवाड़ से बाहर जाते जब महाराजा रियासत का सभी कार्य नैणसी को सौंपते थे।

इतिहास की दृष्टि से नैणसी की दो प्रमुख ग्रंथ है-

मुंहणोत नैणसी री ख्यात
मारवाड़ रा परगनां री विगत

दोनों ग्रंथ अपनी प्रमुख खूबियों के कारण अनूठे है। दोनों ग्रंथ में ख्यात बहुत प्रसिद्ध है। नैणसी ने अपनी ख्यात में जिन तथ्यों का संकलन किया वे प्रमाणिकता की कसौटी पर खरे उतरे है। पूरी ख्यात टकसाली राजस्थानी भाषा में लिखी हुई है। नैणसी ख्यात में छोटे-बड़े प्रसंगों को अलग-अलग नाम दिए है जैसे-वार्ता, हकीकत, साख हवाला आदि। राजस्थान की रियासतों और राजवंशों के सिवाय दूसरी रियासतों के इतिहास के लिए नैणसी ख्यात में बहुत सारी जानकारीदी है। कोट, नगर, रीति-रिवाज, धर्म इत्यादि का पूरा विवरण, वर्णन इस ख्यात में मिलता है। इस प्रकार इतिहास के लिए ख्यात में सभी सामग्री पढने में आती हैं। जो अभी के इतिहासकारों के लिए बहुत काम की है।

नैणसी री ख्यात

राजस्थान में समय-समय पर अलग-अलग राजवंशों रजवाड़ों और इतिहास पुरुषों के लिए वंशालियां, ख्यात, पीढ़ियां, विगत, बात और हकीकत लिखने की आदू परम्परा रही है। इन सभी गद्य रचनाओं में ख्यात व विगत उमदा वर्णन शैली के कारण प्रमुख महत्व रखती है। मारवाड़ के राठौड़ राजघरानों की ख्यात और विगत बहुत काम की और गिनाने योग है। ये ग्रंथ इतिहास की दृष्टि से तो प्रमाणिक है ही साथ ही इसमें उस समय के समाज के लिए बहुत सारी सामग्री पढ़ने को मिलती है।

ख्यात साहित्य की इस परम्परा में मुंहणोत नैणसी द्वारा वि.सं. 1709 में लिखी ख्यात बहुत महत्वपूर्ण है। नैणसी री ख्यात में बहुत बड़ी-बड़ी बातें है जो कई पृष्ठों तक चलती है। मुंहणोत नैणसी जयमलोत लिखित ये ख्यात उस समय के समाज और संस्कृति का सांगोपाग चित्रण करती है। इसमें गुजरात, कांठियावाड़, बुंदेलखंड, मालवा के मध्य भारत का इतिहास भी मिलता है। इसमें मानव जीवन का उज्ज्वल पक्ष जगह-जगह पर देखने को मिलता है। कायरों की अपकीर्ति प्रसंग ख्यात में चित्रित है। युद्ध, सेना, हथियार, मर्यादा, पालन, शरणागत, साख सगपण, रियासतों के आपस में संबंध इत्यादि का सुंदर वर्णन इस ख्यात में मिलता है। काल सुगाल, शुगन, अपशगुन, खानपान, परिवेश, तीज-त्योंहार, रीति-रिवाज, शाका जौहर इत्यादि बातों के विवरण से ख्यात भरी पड़ी है। नगर कोट किला, कुएं, बावड़ियों और कुल देवियों का विवरण ही पढने के लायक है। इसके अलावा सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और कला संबंधी विषयों का वर्णन ख्यात में मिलता है। जैसे एक उदाहरण दीपावली त्योंहार का देखिए, जिसमें इस दिन जुआ खेल का वर्णन किया गया है-''तिण समै खांपरो चोर नै काळौ चोर नांवजा दीक छै। तिकै दीवाळी रै दिन जूवे रमियां, तरै खांपरै तो राजा जैसिंघ देरो चढण रो पटिहड़ो घोड़ो कोड़ीधज आडियो नै काळै काइक बीजी बस्त आंडी छै।''[3]

मारवाड़ रा परगनां री विगत

नैणसी लिखित ये दूसरा प्रमुख इतिहास ग्रंथ है। नैणसी का विचार प्रमुख राजपूत राजघरानों व इतिहास लिखने का था। इस कार्य में सर्वप्रथम अपनी जन्मभूमि और राठौड़ राजघराने का इतिहास लिखने की इच्छा जाहिर की।नैणसी लिखित 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' एक अनूठा सर्वे ग्रंथ है। इसमें नैणसी ने मारवाड़ के प्रमुख परगनों के गांव, गांव की आमदनी, रेख चाकरी, घर और जाति की गिनती, इकसाखियां, दुसाखियां शाखा का हवाला, तलाब, बेरा बावड़ियां इत्यादि बातों की पूरी विस्तार से विगत दी है। इससे नैणसी के संपर्क का सहज पता लगता है कि उनकी पहुंच आम आदमी से लेकर महाराजा तक थी। प्रत्येक आदमी से इस के लिए जानकारी लेने के पश्चात् उस परख को विगत में उतारा था।

मारवाड़ रा परगनां री विगत एक क्रमबद्ध इतिहास ग्रंथ है जिसमें मारवाड़ के राठौड़ राजघराने की राजधानी मंडोर और जोधपुर राज्य के परगनों में मारवाड़ के राजनैतिक इतिहास दिया गया है। सर्वप्रथम मारवाड़ में राठौड़ राजवंश की स्थापना से लेकर जसवंतसिंह जी तक के इतिहास का विगतवार विवरण दिया गया है। राठौड़ राजवंश की स्थापना के बाद राज्य का विस्तार चूंडा का मंडोर लेना, जोधा का जोधपुर किला बनाकर नगर बसाने, मुसलमान और पड़ौसी राजाओं से युद्ध, उदयसिंह के बाद मुगलों की अधीनता स्वीकार करने इत्यादि बातों की विगत में पूरी जानकारी मिलतीह।

'मारवाड़ रा परगनां री विगत' पश्चिमी राजस्थान के पूरे इलाके के लिए कई तरह की महत्वपूर्ण जानकारी देने वाला ग्रंथ है। इस विगत में उस समय के मारवाड़ राज्य के राजाओं के अधीन आने वाले परगनों का विवरण शामिल है। इसमें जिन सात परगनों का विवरण है उनमें जोधपुर, सोजत, जैतारण, फलोदी, मेड़ता, सिवाणा व पोकरण आदि प्रमुख है। इन परगनों की राजनैतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक तथ्यों की महत्वपूर्ण जानकरी इसमें मिलती है।

एक उदाहरण देखिए जिसमें मेड़ता परगने के नामकरण की जानकारी कुछ इस प्रकार चित्रित की गई है–''परगनो मेड़तो आद सैहर छै, राजा मानधातां रौ बसायौ, यूं सको कहै छै। कोहिक दिन यूं पण सुणियो थो.....एक बार कान्हड़दे रौ अमल हुवौ छै। तठां पछै घणां दिन आ ठौड़ पाली सुनी रही छै। पछै राव जोधा बेटा बरसिंघ दूदो ने कहो–म्है थांनु मेड़तौ दां छां, थे जाय बसो।''[4]

विगत में विभिन्न परगनों की जातियों की आबादी, कृषि व्यवस्था, गांवों की स्थिति, राजस्व व्यवस्था, युद्ध प्रणाली, धर्म एवं संस्कृति की भी महत्वपूर्ण जानकारी भी मिलती है।

इस गद्य शैली के कारण ये कहा जा सकता है कि नैणसी अपने समय के कुशल गद्य लेखक थे। खुद की लिखी बात उस समय के आम आदमी के समझ में आ जाए इसके लिए वे इस गद्य शैली में अपनायी नैणसी तत्सम, तद्भव और अरबी फारसी शब्दों का सहज रूप में अपने इस ग्रंथों में किया है। इन ग्रंथों में विवरण और आंकड़ों की भरमार है। राजकाज, हासल बंदोबस्त राज की लागबाग हेतु शब्दों की प्रधानता है। उस समय फारसी भाषा का संपूर्ण भारत में दबदबा था पर फारसी शब्द राजस्थानी में आकर जिस प्रकार बदले उनके सुंदर उदाहरण इन ग्रंथों में मिलता है। सही जगह पर ओखाणां, कहावतों और छंदों का लेख आता है। कुछ उदाहरण कहावतों–मुहावरों के दृष्टव्य है–

बात करतां बार लागै।[5]
दिन दिन जोर चढ़णो।[6]
अगत सूं अगत करणौ।[7]
चढ़तो कांटौ छै।[8]

इसी कारण नैणसी का विवरण विस्तार शैली में सुंदर अंकन नजर आता है। इन ग्रंथों की शब्दावली न सिर्फ भाषा विज्ञान के जानकारों के लिए पर शास्त्र ज्ञाताओं के अध्ययन के लिए पूरी जानकारी देता है।

इतिहास लेखक के साथ ही नैणसी राजस्थानी काव्य का अच्छे जानकार थे। कवि लोगों को पूरा मान सम्मान देते थे। इसी कारण राजस्थानी काव्य के कवियों में नैणसी और उनके घराने का बहुत बखांन किया गया है। नैणसी खुद राजस्थानी के अच्छे कवि थे। ये बात नैणसी रचित दूहो और गीतों में मठोठ से साबित होता है। हालांकि कवि रूप में नैणसी की थोड़ी रचनाएं ही मिलती है पर उनकी काव्य शैली से उनकी काव्य प्रतिभाउजागर होती है। अपने बंदी जीवन काल में नैणसी ने भगवान से इन शब्दों में करुण प्रार्थना की है–

''सदा श्रीनाथ जिण नाम असरण तरण, तारिया गयंद जल मांझ तारण तरण हाथ मत छोडियौ जेण वेला हरण, तो गिरधरणं गिरधरणं गिरधणंकूड़ संसार बिखसिंधु भरियौ ,कहर, लोभ ची लहर मुजाद सुक्रत लहरनयणसी भज सोदूनाथ करिवा निजण, तो सांच हरि सांच हरि सांच हरि।''

इस गीत और दूहो की वर्णन शैली से ये बात सहज हीकही जा सकती है कि नैणसी की काव्य रचने में सुंदर पकड़ थी। वे साधारण कवियों की गिनती में नहीं गिना जा सकता। इस तरह नैणसी इतिहासकार, उमदा गद्य लेखक और प्रसिद्ध कवि थे।

महाराजा जसवंतसिंह जी अपने दीवान नैणसी का बहुत मान रखते थे। वे अपनी तरफ से दीवान जी को भरपूर मान–सम्मान दिया करते थे। ऐवज में नैणसी मारवाड़ के कामकाज को पूरी तन्यमता और कुशलता से निभाया।

नैणसी प्रजा के पूरे हितैषी थे। राजकाज संभाला जब उन्हें लगा कि प्रजा पर राज्य की तरफ से वाकई कर बहुत लगे हुए जो गरीब प्रजा के लिए भारी पड़े। जब

महाराजा से प्रार्थना कर उन करों में कमी कर छूट दिरायी। इस तरह वे मारवाड़ की प्रजा के हितों का पूरा ध्यान राखते थे। इसी तरह मुगल राज्य की रीति–नीति पर लगातार पूरी चौकसी से नजर रखते थे। नैणसी जैसे कुशल व सावचेत दीवान मिलने से जसवंतसिंह जी राजकाज की तरफ से बेफिक्र हो गये। क्योंकि नैणसी मारवाड़ की माटी से जुड़े हुए दीवान थे। लंबे समय तक राज्य का काम करने को उन्हें पूरा अनुभव था। इस कारण वे अपने काम को पूरी स्वामी भक्ति, सावचेती और लग्न से करते थे। नैणसी अपने समय के प्रसिद्ध सेनानायक, दीवान और राजस्थानी भाषा के अच्छे जानकार विद्वान थे। नैणसी ने अपने अच्छे कामकाज और नीति के बल पर खूब यश प्राप्त किया था, इस कारण उस समय के कई राज के आदमी नैणसी से ईर्ष्या रखने लगे थे। छुप–छुपकर महाराजा जसवंतसिंह जी आगे नैणसी की सच्ची–झूठी चुगलिया कर कान भरने शुरू कर दिए। आखिर महाराजा उन चुगलखोरों की बातों में आकर नैणसी और उनके भाई सुंदरसी को कैद कर लिया। छोड़ने के लिए एक लाख रुपयों की मांग की। पर अपनी धुन के धनी और स्वामी भक्ति स्वभाव के कारण वे हर्जाना भरने से साफ मना कर दिया। इसके लिए नैणसी ने जो उत्तर दिया वह संपूर्ण राजस्थान में एक कहावत बन गया–

लाख लखारां निपजै, बड़ पीपळ री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक।[9]

नैणसी को उनके गुणों के कारण हाकम और देश दीवान जैसे बड़ेपद भीमिले थे। इन पदों पर काम करते हुए वे परगनां और मारवाड़ में शांति और व्यवस्था कायम करने में पूरी तरह सफल रहे। देश दीवान बनने के बाद राजकाज में कई तरह राज्य फेर बदले और सुधार किए।

इस प्रकार नैणसी की प्रतिभा और व्यक्तित्व ने उजागर करने में उनकीशूरवीरता, रणनीति, सेना संचालन, रण कुशलता इत्यादि गुण इतिहास में एक अच्छे योद्धा के रूप में प्रसिद्ध रहे है। ये नैणसी के खड़गधारी सेनापतिका रूप है। जिसके सामने शत्रु थरथराते थे। अपनी बुद्धि और सूझबूझ के कारण नैणसी कई उलझे विवादों को संधि के रूप में ढाल दिया जिससे कई बड़ी लड़ाईयां को टाल दिया। प्रमाणिक इतिहास लेखन उमदा काव्य रचना, रला हुआ सुंदर गद्य नैणसी का साहित्य रूप है। जिस पर आज के राजस्थानी भाषाओं के विद्वान बहुत गर्व महसूस करते है। उनके साहित्य लेखन से अपनी मायड़ भाषा राजस्थानी का बहुतउपकारहुआ है। ऐसी बहुगुणी प्रतिभा के धनी इतिहास के महंगे मोती ढूंढ़ने से ही बिरले ही मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नैणसी री ख्यात, संपा. बदरीप्रसाद साकरिया, भाग 4, परिशिष्ट भाग, पृ. 27*
2. *परम्परा, भाग 15–16, सीताराम लालस का लेख, पृ. 249*
3. *नैणसी री ख्यात, संपा. बदरीप्रसाद साकरिया, भाग 1, पृ. 272*
4. *मारवाड़ रा परगनां री विगत, संपा. डॉ. नारायणसिंह भाटी, भाग 1, पृ. 37*
5. *विगत, भाग 2, पृ 71*
6. *विगत, भाग 1, पृ 386*
7. *विगत, भाग 1, पृ 7*
8. *विगत, भाग 1, पृ 24*
9. *परम्परा, भाग 39–40, मुंहणोत नैणसी विशेषांक, पृ. 2*

महात्मा गांधी की पत्रकारिता

हर्षवर्धन पाण्डे
शोधार्थी, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महात्मा गांधी महानतम संपादक थे। शांति और अहिंसा के पुजारी के रूप में जहां वह पूरी दुनिया में विख्यात हैं वहीं जीवन और साहित्य में भी उनकी लेखनी की धारा एक समान है। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा, हिन्दू–मुस्लिम एकता जैसे विषयों पर खूब कलम चलाई और खास बात ये रही, उसके आदर्शों को भी अपने जीवन में भी उतारने में देरी नहीं लगाई। समाज के विकास के लिए उन्होंने पत्रकारिता के रास्ते को चुना। गाँधी ने पत्रकारिता में स्वतंत्र लेखन के माध्यम से प्रवेश किया था। बाद में साप्ताहिक पत्रों का संपादन किया। बीसवीं सदी के आरम्भ से लेकर स्वराज पूर्व के गाँधी युग तक पत्रकारिता का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस युग की पत्रकारिता पर महात्मा गाँधी जी की विशेष छाप रही। महात्मा गाँधी में सहज पत्रकार के गुण थे। पत्रकारिता तो मानो उनके रग–रग में समाई हुई थी, जिसे उन्होंने मिशन के रूप में अपनाया था। स्वयं महात्मा गाँधी के शब्दों में मैंने पत्रकारिता को केवल पत्रकारिता के प्रयोग के लिए नहीं बल्कि उसे जीवन में अपना जो मिशन बनाया है, उसके साधन के रूप में अपनाया है। गांधी जी ने कभी राजनीति को खुद पर हावी नहीं होने दिया। वह जनमानस की समस्याओं को मुख्यधारा की पत्रकारिता में रखने के प्रबल पक्षधर थे। इंडियन ओपिनियन पत्र जहां 30 बरस तक बिना विज्ञापन के उन्होंने निकाला, वहीं नवजीवन के माध्यम से किसानों और मजदूरों को अपने से जोड़ा। फिर यंग इंडिया जैसे पत्रों के माध्यम से उन्होंने युवाओं के सामने नई लकीर खींचने का काम किया। एक बार गांधी जी को जेल भी जाना पड़ा लेकिन जेल जाकर उन्होंने हरिजन नाम का पत्र निकाल दिया। ब्रिटिश सरकार ने जब गांधी जी के समाचार पत्रों के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया तो उसी दरमियान उन्होंने सत्याग्रह नाम का साप्ताहिक पत्र निकाल दिया। गांधी जी को कभी भी शासन से भय नहीं रहा। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सामाजिक बुराइयों से आम जन को अवगत कराते थे। उनकी पत्रकारिता जनहित का माध्यम रही। निजी हित के लिए उन्होंने कभी इसका उपयोग नहीं किया। लोग उनके कार्यों से काफी प्रेरित भी हुए और देखते ही देखते देश की आजादी का आंदोलन जनआन्दोलन बन गया। महात्मा गांधी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से स्वतंत्रता की एक नई अलख जगाने का काम किया।

संकेताक्षर : *इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया, हरिजन, सत्याग्रह, नवजीवन, हिन्द स्वराज, महात्मा गांधी, पत्रकारिता।*

उर्दू पत्रिका 'मखजिन' में मौलाना आजाद ने गाँधीजी के लेखन के बारे में लिखा है– 'मेरी तरह ही महात्मा साहब को भी लिखने की कभी न खत्म होने वाली भूख थी। गाँधीजी की बदकिस्मती यह थी कि इस कला को सियासत ने उस दर्जे तक नहीं उठने दिया जैसा कि चाहते थे। कितने ही लेख और पुस्तकें इस कारण गाँधीजी के कलम से पूर्ण न हो सके।' मौलाना आजाद ने अपने एक अन्य पत्र में लिखा है कि गाँधीजी की अंग्रेजी ड्राफ्टिंग ऐसी थी कि स्वयं अँगरेज पत्रकार और लेखक दाँतों तले उँगली दबा लेते थे। गाँधीजी के लिखने की यह हालत थी कि जब वे मध्य भारत के छोटे कस्बों और देहातों में बैलगाड़ियों में यात्रा कर रहे होते थे तो अपनी गुजराती पत्रिका का संपादन भी किया करते थे और राजनीति के दाँव–पेचों से भी निपटा करते थे। उनके पास इस पत्रिका की कई फाइलें होती थीं। रात को जब सब सो जाते थे तो दो–तीन बजे तक संपादन कार्य चलता था। सारा कार्य वे स्वयं करते, किसी की सहायता नहीं लेते ।

गांधी जी ने इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया और हरिजन जैसे ऐतिहासिक पत्रों का संपादन किया था। दक्षिण अफ्रीका में जब वे इंडियन ओपिनियन साप्ताहिक का प्रकाशन कर रहे थे तो उन्होंने लिखा था पत्रकारिता को मैंने पत्रकारिता की खातिर नहीं अपनाया है, बल्कि मैंने इसे एक सहायक के रूप में स्वीकार किया है जिससे मेरे जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने से सहायता मिले। मैं अपने चिंतन को आचरण में ढालकर जो कुछ देना चाहता हूं, उसमें पत्रकारिता के माध्यम से सहायता मिलेगी। पत्रकारिता के अपने उद्देश्य की उद्घोषणा उन्होंने इन शब्दों में स्पष्ट कर दी थी। गांधी जी ने विभिन्न सत्याग्रहों और आंदोलनों के सिलसिले में जनमत को प्रभावित करने के लिए समाचार–पत्रों का बड़ा प्रभावशाली उपयोग किया था।

1896 में जब गाँधीजी इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका जा रहे थे तो जहाज पर उन्होंने एक पुस्तक 'ग्रीन पैम्फ्लेट' की रचना की। इसी प्रकार जहाज में ही उन्होंने पुस्तक 'हिन्द स्वराज' लिखी। जब बाएँ हाथ से लिखते तो अँग्रेजी और दाएँ हाथ से लिखते तो गुजराती और उर्दू खूबसूरती से लिखा करते थे। लिखने की रफ्तार उनके चलने की रफ्तार से कहीं तेज होती। आवश्यकता पड़ने पर स्वयं टाइप भी कर लिया करते थे। गाँधीजी जो पुस्तक पढ़ते थे, उनसे न केवल वे स्वयं सीखते थे बल्कि दूसरों को भी अच्छाई का संदेश देते थे क्योंकि उन पुस्तकों का निचोड़ वे अपने लेखन में भी देते थे। उनका पुस्तकें पढ़ने का एक उद्देश्य यह भी होता था कि उसको वे अपने संपादकीय लेखन में शामिल करें। महात्मा गाँधी मिशन के रूप में पत्रकारिता को अपनाया था। स्वयं गाँधी के शब्दों में 'मैंने पत्रकारिता को केवल पत्रकारिता के प्रयोग के लिए नहीं बल्कि उसे जीवन में अपना जो मिशन बनाया है उसके साधन के रूप में अपनाया है'। सन 1888 में कानून की पढ़ाई के लिए जब गाँधी लंदन पहुँचे उस वक़्त उनकी आयु मात्र 19 वर्ष थी। उन्होंने 'टेलिग्राफ' और 'डेली न्यूज' जैसे अख़बारों में भी लिखना शुरू किया। दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान उन्होंने भारतीयों के साथ होने वाले भेदभावों और अत्याचारों के बारे में भारत से प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदू', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'स्टेट्समैन' आदि पत्रों के लिए अनेक लेख लिखे व इंटरव्यू भेजे। ये वही दौर था जब अफ्रीका में अश्वेत लोगों के खिलाफ जुल्म की कहानियां पूरी दुनिया सुन रही थी। गाँधी ने ऐसे में अपनी वकालत के जरिये उन्हें उनका हक़ दिलाने की कोशिश की। इसी प्रक्रिया में एक बार, वहां के एक कोर्ट परिसर में गाँधी को पगड़ी पहनने से मना कर दिया गया। कहा गया कि उन्हें केस की कार्रवाई बिना पगड़ी के करनी होगी। गाँधी ने पगड़ी उतार दी, केस लड़ा लेकिन वो इस मुद्दे को आगे ले जाने का मन बना चुके थे। अगले ही दिन गाँधी ने डरबन के एक स्थानीय संपादक को खत लिखकर इस मामले पर अपना विरोध जताया। विरोध के तौर पर लिखी उनकी चिट्ठी को अख़बार में जस का तस प्रकाशित किया गया। यहीं से शुरू हुआ था गाँधी की पत्रकारिता का नया सफर।

महात्मा गाँधी में जनता की नब्ज पहचानने की अद्भुत क्षमता थी और वह उनकी भावनाओं को समझने में देर न लगाते थे। दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों ने और सत्याग्रह के उनके प्रयोगों ने उन्हें 'इंडियन ओपिनियन' नामक पत्र के सम्पादन की प्रेरणा दी। भारत में अपने स्कूली जीवन के दौरान उन्होंने अखबार नहीं पढ़ा। वो इतने शर्मीले थे कि किसी की मौजूदगी में उन्हें बोलने में भी झिझक होती थी। 21 की उम्र में उन्होंने पहले नौ लेख शाकाहार के ऊपर एक अंग्रेजी साप्ताहिक द वेजीटेरियन के लिए लिखे। इसमें शाकाहार, भारतीय खानपान, परंपरा और धार्मिक त्यौहार जैसे विषय शामिल थे। उनके शुरुआती लेखों से ही यह आभास मिल जाता है कि उनमें अपने विचारों को सरल और सीधी भाषा में व्यक्त करने की क्षमता थी। दो सालों के अंतराल के बाद गांधी ने एक बार फिर से पत्रकारिता की कमान थामी। इसके बाद उनकी लेखनी ने जीवन के अंत तक रुकने का नाम नहीं लिया। दक्षिण अफ्रीका आने के तीसरे दिन ही उन्हें कोर्ट में अपमानित किया गया। उन्होंने इस घटना का विवरण एक अखबार में लेख लिखकर सबको दिया और रातों रात सबके चहेते बन गए।

1904 में जब उन्होंने इंडियन ओपिनियन का प्रकाशन हिन्दी, गुजराती, उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं में प्रारम्भ किया तो पत्र के इन संस्करणों ने जनचेतना को प्रभावित करने का बड़ा काम किया। इंडियन ओपिनियन के माध्यम से उन्होंने टालस्टॉय, लिंकन, ईश्वरचन्द विद्यासागर जैसे महापुरुषों पर न केवल प्रेरक लेख लिखे, बल्कि भारत में वीर–वीरांगनाओं और संत–महात्माओं के विषय में भी पाठकों को काफी जानकारी दी। महात्मा ने दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग से अपने पहले अखबार 'इंडियन

ओपिनियन' का संपादन आरंभ किया। प्रवेशांक में ही उन्होंने बताया कि इसका मकसद ''भारतीय समुदाय की इच्छाओं को अभिव्यक्त करना और उनके हितों के लिए काम करना है।'' तब गोरे शासकों के दिल में वहाँ काम करने वाले अथवा व्यापार करने वाले भारतीयों के प्रति जो हिकारत का भाव था और जैसी दयनीय उनकी बस्तियों की हालत थी, उसे शासन तंत्र के सामने लाना, उनसे न्यायपूर्ण व्यवहार की माँग करना, इस साप्ताहिक अखबार का घोषित लक्ष्य था। अखबार का दूसरा बड़ा मकसद दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले अलग-अलग जमातों, अलग-अलग काम-धंधा करने वाले लोगों को भारतीयता की एक पहचान देना और इस तरह उन्हें एक सूत्र में बाँधना था। इसकी घोषणा करते हुए महात्मा का यह अखबार कहता है कि ''हम तमिल या कलकत्ता वाले नहीं हैं, हम मुसलमान या हिंदू नहीं हैं, हम ब्राह्मण और बनिया भी नहीं हैं बल्कि हम केवल और केवल ब्रिटिश भारतीय हैं। हमें साथ-साथ डूबना और साथ-साथ तैरना है।'' इसके लिए उन्होंने अखबार का नाम रखा - 'इंडियन ओपिनियन' और एक साथ चार भाषाओं में इसका प्रकाशन शुरू हुआ। वे भाषाएँ थीं - अंग्रेजी, हिंदी, तमिल और गुजराती। इंडियन ओपिनियन का साफ मानना था पत्रकारिता ऐसी होनी चाहिए जो लोगों में विचार का संचार करे। मोहनदास करम चंद गांधी का साफ मानना था किसी प्रकाशन की मिल्कियत संपादक और मालिक से ज्यादा पाठकों में होती है । गांधी का कहना था अखबार ग्राहकों के चंदे से चलने चाहिए न कि विज्ञापन से । जो अखबार विज्ञापन पर जितना निर्भर होगा वे सत्य से उतने ही दूर होते जाएंगे । जो अखबार पाठकों की ग्राहकी और प्रेम पर निर्भर होंगे वे उनके लिए ज्यादा समर्पित और सच्चाई पर चलने वाले होंगे । गांधी अखबार बंद करने में यकीन रखते थे लेकिन विज्ञापन पर निर्भरता बढ़ाने को तैयार नहीं थे।

भारत लौटने पर गांधी जी ने मुंबई से सत्याग्रह का प्रकाशन शुरू किया। इसके पहले ही अंक में उन्होंने रोलेट एक्ट का तीव्र विरोध किया। बंबई में अंग्रेजी साप्ताहिक यंग इंडिया के प्रकाशन की योजना बनने पर गांधी जी से उसके संपादन का दायित्व संभालने का भी आग्रह किया गया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। उसी प्रकाशन के अन्तर्गत 7 अक्तूबर 1891 से गुजराती मासिक नवजीवन का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। परन्तु इन सबसे महत्वपूर्ण पत्र था हरिजन। 11 फरवरी 1933 को घनश्याम दास बिड़ला की सहायता से हरिजन का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ और गांधी जी जो उस समय सविनय अवज्ञा आंदोलन के सिलसिले में पूना में जेल में थे, वहीं से पत्र का संचालन करते थे। इस पत्र के संपादक के रूप में आर वी शास्त्री का नाम छपना प्रारम्भ हुआ। हरिजन के माध्यम से गांधीजी ने हरिजनों के उद्धार और ग्रामीण उद्योगों के विकास का संदेश दिया। जब सरकार की ओर से 18 अक्तूबर, 1949 को उन्हें यह चेतावनी दी गयी कि हरिजन में प्रकाशित सत्याग्रह के समाचार बिना सक्षम अधिकारी को दिखाए प्रकाशित नहीं करें, तो गांधी जी ने इसे प्रेस की स्वाधीनता पर आक्रमण माना और 10 नवम्बर 1938 को उन्होंने पाठकों से विदा मांग ली। कुछ समय बाद हरिजन का प्रकाशन फिर प्रारम्भ हो गया और वह अगस्त आन्दोलन का संदेश वाहक बन गया। 1942 में जब गांधी जी जेल में थे, तो मुंबई सरकार ने हरिजन पर प्रतिबंध लगा दिया और नवजीवन प्रेस से प्रकाशित साहित्य को नष्ट करने का आदेश दिया तो गांधी जी ने इसके विरुद्ध अलख जगाए रखा इसके पीछे उनकी यही भावना थी कि वे जनता के साथ अपना सीधा संवाद कर सकें और जो कुछ वे व्यक्त कर रहे हैं, उनका सीधा उत्तरदायित्व ले सके।

1 जुलाई 1940 को हरिजन में अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था कि दक्षिण अफ्रीका में जब उन्होंने इंडियन ओपिनियन प्रकाशित किया था, इस पत्र में वे पाठकों को लोगों की कठिनाइयों से सूचित करते थे। वे कहते थे कि समाचार पत्र में शास्त्रीय विवेचनाओं के लिए उनके पास समय नहीं है। गांधी जी ने इसे स्वीकार किया था कि सत्याग्रही लोगों को संगठित करने और उनका मार्ग प्रशस्त करने में इंडियन ओपिनियन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। गांधी जी ने जितने भी पत्र संपादित किये उनकी एक विशेषता यह थी कि उनकी भाषा बहुत सरल होती थी। गांधी जी ने जननायक होने के एक संपादक के रूप में बड़ें संयम और उत्तरदायित्व के साथ काम किया।

2 जुलाई 1925 को उन्होंने यंग इंडिया में लिखा था कि मैं कभी क्षुब्ध होकर नहीं लिखता। किसी के प्रति मनोमालिन्य का भाव लेकर नहीं लिखता। मैं लोगों की भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए भी नहीं लिखता। पाठकों के लिए यह कल्पना कठिन है कि प्रति सप्ताह मैं कितने संयम से काम ले पाता हूं। विषयों का चुनाव

करने और उन्हें उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करने में कितना अनुशासित रहना होता है। एक प्रकार से इसके जरिये मेरा प्रशिक्षण होता है। अक्सर मेरा अहंकार कुछ ऐसी अभिव्यक्त करना चाहता है, जिससे आक्रोश की व्यंजना हो और उसके लिए किसी कठोर विशेषण का उपयोग आवश्यक हो जाता है इसीलिए उसे धैर्यपूर्वक कांट-छांटकर और भाषा को तराशकर इन सब दुर्गुणों से बचना बड़ा कठिन मानसिक व्यायाम होता है। गांधी जी ने स्वयं कहा था कि यंग इंडिया को पढ़कर लोग सोचते होंगे कि यह वृद्ध कितना सदाशयता पूर्ण है पर उन्हें यह पता नहीं कि मैं कितनी प्रार्थनाएं करके और कितने संयम के साथ भाषा को वह स्वरूप प्रदान करता हूं। गांधी एक ऐसे पत्रकार जिनके निर्भीक, सीधे और सरल शब्द करोड़ों लोगों के दिलों-दिमाग में सरलता से पैठ बना लेते थे। 2 जुलाई, 1925 को यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा – ''अपनी निष्ठा के प्रति ईमानदारी बरतते हुए मैं दुर्भावना या क्रोध में कुछ भी नहीं लिख सकता। मैं निरर्थक नहीं लिख सकता। मैं केवल भावनाओं को भड़काने के लिए भी नहीं लिख सकता। लिखने के लिए विषय और शब्दों को चुनने में मैं हफ्तों तक जो संयम बरतता हूँ, पाठक उसकी कल्पना नहीं कर सकता। मेरे लिए यह प्रशिक्षण है। इससे मैं खुद अपने भीतर झाँकने तथा अपनी कमजोरियों को ढूँढ़ने में समर्थ हो पाता हूँ''

गांधी जी ने अपनी लेखनी का जिस उत्तरदायित्व के साथ उपयोग किया था और जैसे संयम और अनुशासन का उन्होंने अपने संपादन में उपयोग किया था, वह आज दुर्लभ है। गांधी की जैसी सरल भाषा और सहज संप्रेषणीयता पत्रकारिता में आज भी आदर्श है। प्रेस की स्वतंत्रता के लिए गांधी जी को काफी संघर्ष करना पड़ा। वे मानते थे कि पत्र और पत्रकारिता का उदेश्य है कि वह जनता की भावनाओं को समझे और तदनुसार उनको अभिव्यक्त करे तथा समाज और सरकार में कोई दोष दिखाई दे, उसका निर्भीकता से भण्डाफोड़ करे, इन्हीं उदेश्यों के लिए उन्होंने पत्र निकाले। सन् 1939 में उनके पत्रों पर लगाये गये प्रतिबंध के उत्तर में उन्होंने लिखा था, मेरे साप्ताहिक सत्य को उजागर करने के लिए निकाले जाते हैं। यदि प्रेस की स्वतंत्रता पर इस तरह प्रहार किया जाएगा तो मैं उसे नहीं मानूंगा, उसका विरोध करूंगा। वह एक सफल पत्रकार थे। उनकी राय में पत्रकारिता एक सेवा थी, 'पत्रकारिता कभी भी निजी हित या आजीविका कमाने का जरिया नहीं बनना चाहिए और अखबार या संपादक के साथ चाहे जो भी हो जाय लेकिन उसे अपने देश के विचारों को सामने रखना चाहिए नतीजे चाहे जो हों। अगर उन्हें जनता के दिलों में जगह बनानी है तो उन्हें एकदम अलग धारा का सूत्रपात करना होगा'।उन्होंने अपनी पत्रिका का प्रसार बढ़ाने के लिए किसी गलत तरीके का इस्तेमाल नहीं किया, ना ही कभी दूसरे अखबारों से स्पर्धा की। उनकी सलाह थी कि हर राज्य में विज्ञापन का सिर्फ एक ही तरीका होना चाहिए, ऐसी चीजें प्रकाशित हों जो आम लोगों के काम की हों। यंग इंडिया का संपादकीय संभालने के बाद वो एक गुजराती अखबार निकालने के लिए उत्सुक थे। अंग्रेजी का अखबार निकालने में उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी। उन्होंने हिंदी और गुजराती में नवजीवन के नाम से नया प्रकाशन शुरू किया। इनमें वे रोजाना लेख लिखते थे। उन्हें यह बात बताने में गर्व का अनुभव होता था कि नवजीवन के पाठक किसान और मजदूर हैं जो कि असली हिंदुस्तान है। काम के अतिशय बोझ के चलते उन्हें देर रात तक या फिर सुबह से ही काम करना पड़ता था। वे अक्सर चलती ट्रेनों में लिखते थे। जब उनका एक हाथ लिखने से थक जाता तो वे दूसरे हाथ से लिखने लगते। तमाम व्यस्तताओं के बीच भी वे रोजाना तीन से चार लेख लिखते थे। एक बार गांधीवादी विचारक आर.आर. दिवाकर ने कहा था कि गांधी कदाचित उस अर्थ में पत्रकार की परिकल्पना आज करते हैं, क्योंकि गांधी जी का मिशन मातृभूमि की मुक्ति का मिशन था। इस मिशन में उन्होंने पत्रकारिता को एक आयुध की तरह प्रयुक्त किया था। पत्रकारिता उनके लिए व्यवसाय नहीं थी, बल्कि जनमत को प्रभावित करने का एक लक्ष्योन्मुखी प्रभावी माध्यम था।

भारत में उन्होंने कोई भी अखबार घाटे में नहीं चलाया। अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अखबारों की प्रसार संख्या 40 हजार के आसपास थी। जब उन्हें जेल हो गई तब इनकी प्रसार संख्या 3000 तक आ गई। जब वे पहली बार जेल से बाहर निकले तो उन्होंने हर संस्करण में अपनी आत्मकथा छापने का सिलसिला शुरू किया। यह तीन साल तक लगातार प्रकाशित होता रहा और इसने पूरी दुनिया में हलचल पैदा की। गांधीजी ने लगभग सभी भारतीय अखबारों को अपनी जीवनी छापने की छूट दे रखी थी। जेल में रहते हुए उन्होंने एक और साप्ताहिक हरिजन का प्रकाशन शुरू

कर दिया। यंग इंडिया की तरह ही इसकी भी कीमत एक आना थी। यह अछूतों को समर्पित था। सालों तक इसमें कोई राजनीतिक लेख प्रकाशित नहीं हुआ। पहले इसे हिंदी में निकाला गया। गांधी को जेल में रहते हुए हफ्ते में तीन लेख लिखने की छूट थी। इसका अंग्रेजी संस्करण शुरू करने के प्रस्ताव पर उन्होंने अपने एक मित्र को चेतावनी दी, 'खबरदार यदि आपने अंग्रेजी संस्करण निकाला। हरिजन जब तक पूरी तरह स्थापित न हो जाय, पढ़ने लायक लेख न हों और ट्रांसलेशन स्तरीय न हो तब तक नहीं। हिंदी संस्करण के साथ संतोष करना बेहतर है, आधा–अधूरा अंग्रेजी संस्करण निकालने के। मैं तब तक ऐसा नहीं कर सकता जब तक कि यह अपने पैरों पर खड़ा न हो जाय।' उन्होंने शुरुआत में तीन महीने तक 10,000 कॉपी प्रकाशित करने का लक्ष्य रखा था। दो महीनों के दौरान ही यह अपने पैरों पर खड़ा हो गया। बाद में यह विचारों का बेहद लोकप्रिय पत्र बनकर उभरा। लोग इसे किसी मनोरंजन के लिए नहीं पढ़ते थे बल्कि गांधीजी से निर्देश लेने के लिए पढ़ते थे। यह हिंदी, उर्दू, गुजराती, तमिल, तेलगू, उड़िया, मराठी, कन्नड़, बंगाली भाषाओं में प्रकाशित होता था। गांधी अपने लेख हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती और उर्दू में लिखते थे। उनके अखबारों में कभी कोई सनसनीखेज समाचार नहीं होता था। वे बिना थके सत्याग्रह, अहिंसा, खानपान, प्राकृतिक चिकित्सा, हिंदू–मुस्लिम एकता, छुआछूत, सूत काटने, खादी, स्वदेशी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था और निषेध पर लिखते थे। वे शिक्षा व्यवस्था के बदलाव, और खानपान की आदतों पर जोर देते थे । वे कठोर टास्कमास्टर थे। उनके सचिव महादेव देसाई को अक्सर ट्रेनों के शौचालयों में बैठकर काम करना पड़ता था ताकि गांधीजी के काम समय पर पूरे हो सकें। उनके सहयोगियों को एक–एक ट्रेन के स्टेशनों पर पहुंचने का समय और पोस्टल डिस्पैच का समय पता रहता था ताकि गांधीजी के लेखों को समय से पहुंचाया जा सके। एक बार गांधी ट्रेन में यात्रा कर रहे थे और ट्रेन लेट होने के कारण उनका लेख समय से डिस्पैच नहीं हो सका लिहाजा संदेशवाहक ने उनका अंग्रेजी लेख भेज दिया और वह अहमदाबाद की बजाय मुंबई से समय रहते प्रकाशित हो गया।

गांधी को भारत में पहली बार यंग इंडिया में उनके आक्रामक लेख के कारण जेल हुई। उन्होंने कभी भी सरकार द्वारा जारी किसी भी प्रतिबंध को नहीं माना। जब उन्हें अपने विचारों को लिखने से रोका गया तो उन्होंने लिखना ही बंद कर दिया। उन्हें इस बात का पूरा भरोसा था कि वे जब चाहेंगे, अपने पाठकों को अपने विचारों से अवगत करवा देंगे और अपनी बात को प्रसारित कर लेंगे। उन्हें पता था कि उनके अखबार को भले ही दबा दिया जाय पर उनके जिंदा रहते विचारों को नहीं दबाया जा सकता। उन्हें भरोसा था कि प्रिंटिंग रूम या कंपोसिटर के अभाव में भी उनके हाथ से लिखे कागज के टुकड़े उनके लिए बेहतर हथियार साबित होंगे। गांधीजी 1919 में एक साप्ताहिक सत्याग्रह के नाम से निकालते थे जो कि रजिस्टर्ड नहीं था। सरकार के आदेशों की अवहेलना करके वो ऐसा कर रहे थे। एक पन्ने का यह पत्र एक पैसे में बिकता था। सालों तक खुद एक शानदार पत्रकार होने के नाते व पत्रकारिता और उसकी परंपराओं पर पूरे अधिकार से बोलते थे, 'अखबार वाले बीमारी के वाहक बनते जा रहे हैं। अखबार तेजी से लोगों के गीता, कुरान और बाइबिल बनते जा रहे हैं। एक अखबार यह अनुमान तो लगा सकता है कि दंगे होने वाले हैं और दिल्ली में सभी लाठियां और चाकू बिक गए हैं। एक पत्रकार की जिम्मेदारी है कि वह लोगों को बहादुरी का पाठ सिखाए ना कि उनके भीतर भय पैदा करे।'

महात्मा गाँधी ने तत्कालीन समाचार पत्रों में विज्ञापन के बढ़ते दुष्प्रभाव पर लिखा था–मैं समझता हूं कि समाचारपत्रों में विज्ञापन का प्रकाशन बंद कर देना चाहिए। मेरा विश्वास है कि विज्ञापन उपयोगी अवश्य है लेकिन विज्ञापन के माध्यम से कोई उद्देश्य सफल नहीं हो सकता है। विज्ञापनों का प्रकाशन करवाने वाले वे लोग हैं जिन्हें अमीर बनने की तीव्र इच्छा है। विज्ञापन की दौड़ में हर तरह के विज्ञापन प्रकाशित होने लगे हैं जिनसे आय भी प्राप्त होती है। आधुनिक नागरिकता का यह सबसे नकारात्मक पहलू है जिससे हमें छुटकारा पाना ही होगा। हमें गैर आर्थिक विज्ञापनों को प्रकाशित करना होगा जिससे सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके लेकिन इन विज्ञापनों को भी कुछ राशि लेकर प्रकाशित करना चाहिए। इसके अलावा अन्य विज्ञापनों का प्रकाशन तत्काल बंद कर देना चाहिए। महात्मा गाँधी ने पत्रकारिता और पत्रकार के कर्तव्यों के बारे में सविस्तार उल्लेख करते हुए लिखा था कि मैं महसूस करता हूं कि पत्रकारिता का केवल एक ही ध्येय होता है और वह है सेवा। समाचार पत्र की पत्रकारिता बहुत क्षमतावान है, लेकिन यह उस पानी के समान है जो बांध के टूटने पर

समस्त देश को अपनी चपेट में ले लेता है और समस्त फसल को नष्ट कर देता है। महात्मा गाँधी ने समाचार में प्रकाशित समस्त जानकारियों को पूर्णतः सच मानने से भी इनकार किया है। वे समाचार पत्रों के माध्यम से राय बनाने के भी सख्त विरोधी थे। उन्होंने कहा समाचारपत्रों को केवल तथ्यों की जानकारी के लिए पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन समाचारपत्रों को यह आज्ञा नहीं दी जा सकती है कि वे स्वतंत्र चिंतन को समाप्त कर दें। उन्होंने समाचारपत्रों को पूर्णतः विश्वसनीय न मानते हुए कहा–पश्चिमी देशों की तरह पूरब में भी समाचार पत्र को गीता, बाईबल और कुरान की तरह से माना जा रहा है। ऐसा माना जा रहा है जैसे समाचार पत्रों में ईश्वरीय सत्य ही लिखा हो। मैं समाचारपत्र के माध्यम से राय बनाने का विरोधी हूं। समाचारपत्रों को केवल तथ्यों की जानकारी के लिए ही पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन समाचार पत्रों को यह आज्ञा नहीं दी जा सकती है कि वे स्वतंत्र चिंतन को समाप्त कर दें। मैं पत्रकार मित्रों से केवल यही कहूंगा कि वे समाचार पत्रों में केवल सत्य ही प्रकाशित करें, कुछ और नहीं। महात्मा गाँधी ने लोकतंत्र के स्थायित्व के लिए लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ पत्रकारिता को व्यापक अधिकार देने की भी पैरोकारी की। महात्मा गाँधी ने कहा–'प्रेस की आजादी ऐसा बहुमूल्य विशेषाधिकार है जिसे कोई भी राष्ट्र भूल नहीं सकता है। किसी भी समाचारपत्र की सफलता मुख्यत संपादक की कार्यशैली और योग्यता पर ही निर्भर करती है। महात्मा गाँधी ने संपादकों के कार्य के विषय में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा–पत्रकारिता को चौथा स्तम्भ माना जाता है। यह एक प्रकार की शक्ति है, लेकिन इसका गलत प्रयोग एक अपराध है। मैं एक पत्रकार के नाते अपने पत्रकार मित्रों से अपील करता हूं कि वे अपनी जिम्मेदारी को महसूस करें और बिना किसी अन्य विचार के केवल सत्य को ही प्रस्तुत करें। समाचार पत्रों में लोगों को शक्तिशाली तरीके से प्रभावित करने की क्षमता है इसलिए संपादकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई गलत रिपोर्ट न चली जाए जो लोगों को उत्तेजित करती हो। संपादक और उसके सहायकों को इस बारे में हमेशा जागरूक रहना चाहिए कि वे किस समाचार को किस तरह से प्रस्तुत करते हैं। किसी स्वतंत्र राष्ट्र में सरकार के लिए प्रेस पर नियंत्रण रख पाना असंभव है। ऐसे में पाठकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे प्रेस की समीक्षा करें और उन्हें सही रास्ता दिखाएं। समाज भड़काऊ समाचारपत्रों को नकार देगा।

गांधी जी ने पत्रकारिता को कभी एक व्यवसाय के रूप में स्वीकार नहीं किया। वे एक मिशनरी पत्रकार थे और वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि उनके मिशन की सफलता के लिए पत्रकारिता एक अत्यंत सशक्त माध्यम है। गाँधी ने पत्रकारिता को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया और अपने सत्याग्रह के आंदोलन को धार देने के लिए उपयोग किया। गाँधी ने लगभग हर विषय पर लिखा और अपना दृष्टिकोण लोगों तक पहुंचाया। गाँधी ने लिखा था, "मैंने पत्रकारिता को एक मिशन के रूप में लिया है उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिनको में जरूरी समझता हूं और जो सत्याग्रह, अहिंसा व सत्य के अन्वेषण पर टिकी हैं।" 'हरिजन' द्वारा भी गाँधी ने सामाजिक एकता व बराबरी का संदेश दिया। चूँकि इन समाचार पत्रों व पत्रिकाओं का उद्देश्य स्वतंत्रता संघर्ष भी था, अँगरेजों ने गाँधीजी को बड़ा कष्ट दिया मगर गाँधी ने भी यह सिद्ध कर दिया कि वे इस मैदान में भी किसी से कम नहीं थे। सरकार के प्रेस नियंत्रण का सामना गाँधी जी को भी करना पड़ा। प्रेस की स्वतंत्रता के हिमायती गाँधी ने सरकारी आदेशों जी अवहेलना की। स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर किसी प्रकार के प्रतिबंध स्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट लिखा यदि प्रेस सलाहकार को सत्याग्रह संबंधी प्रत्येक सामग्री भेजी जाने लगी तो प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त हो जायेगी। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता हमारा परम अधिकार है। अतः हम इस प्रकार के आदेशों को नहीं मान सकते। दक्षिण अफ्रीका के अपने अख़बारी दिनों को याद करते हुए महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है – 'समाचार–पत्र सेवाभाव से ही चलाने चाहिए। समाचार–पत्र एक जबर्दस्त शक्ति है लेकिन जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गांव के गांव डुबो देता है और फसल को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार निरंकुश कलम का प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है लेकिन यदि ऐसा अंकुश बाहर से आता है, तो वह निरंकुशता से भी अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुश अंदर का ही लाभदायक हो सकता है।'

हरिजन के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए गांधी जी कहते हैं ''मुझे आशा है कि इसके विरोधी भी इसे स्वीकार करेंगे व मैं अत्यंत आशावादी हूँ और अपने विरोधियों के प्रति दुर्भावना नहीं रखता । यह पत्र मेरे विरोधियों के लिए है और सुधारवादियों के लिए भी । हरिजन की आत्म सत्या पर आधारित है तथा यदि सुधारक कुछ धैर्य के साथ काम लेंगे तब विरोधी भविष्य में सुधार

पर विश्वास करने लगेंगे'' ।28 मई, 1931 को 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी ने 'विषैली पत्रकारिता' शीर्षक से की गई एक टिप्पणी में लिखा– 'अख़बारों की नफरत पैदा करने वाली बातों से भरी हुई कुछ कतरनें मेरे सामने पड़ी हैं। इनमें सांप्रदायिक उत्तेजना, सफेद झूठ और खून–खराबे के लिए उकसानेवाली राजनीतिक हिंसा के लिए प्रेरित करनेवाली बातें हैं। निस्संदेह सरकार के लिए मुकदमे चलाना या दमनकारी अध्यादेश जारी करना बिल्कुल आसान है। पर ये उपाय क्षणिक सफलता के सिवाय अपने लक्ष्य में विफल ही रहते हैं और ऐसे लेखकों का हृदय–परिवर्तन तो कतई नहीं करते, क्योंकि जब उनके हाथ में अख़बार जैसा प्रकट माध्यम नहीं रह जाता, तो वे अक्सर गुप्त रूप से प्रचार का सहारा लेते हैं। 'गांधीजी ने राष्ट्रवादी प्रेस और अपने पत्र 'यंग इंडिया', नवजीवन और अन्य आवधिक पत्र पत्रिकाओं का इस्तेमाल देश के कोने कोने में पहुंचने के लिए किया। वे भली भांति जानते थे कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक पहुंचने के लिए सदियों पुरानी मौखिक परंपराओं का सहारा लेना जरूरी है। इन परंपराओं में सार्वजनिक व्याख्यान, प्रार्थना सभाएं और पद यात्राएं शामिल थीं। स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा देने और प्रेरक नेतृत्व को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने तथा अहिंसा, सत्याग्रह और सत्यनिष्ठा की बेजोड़ तकनीक के जरिए आजादी हासिल करने के लिए गांधीजी ने संचार के सभी उपलब्ध साधनों का इस्तेमाल किया। गांधीजी ने कभी एक क्षण के लिए भी समाचार पत्रों के महत्व को कम करके नहीं आंका। वे सभी अखबारों को पढ़ते थे और किसी गलत बयानी या तथ्यों को गलत ढंग से पेश किए जाने के बारे में उपयुक्त जवाब देते थे। उनकी यह खासियत थी कि उन्होंने परंपरागत और आधुनिक दोनों ही तरह के संचार माध्यमों का प्रभावकारी इस्तेमाल किया। गांधीजी अपने आलेखों को अन्य पत्र पत्रिकाओं में छपने देने की अनुमति प्रदान करते थे। इससे उनके विचार भारत और विदेश में अनेक पत्र पत्रिकाओं में निःशुल्क पुनः प्रकाशित होने लगे थे। गांधीजी ने यह सिद्ध कर दिया था कि शैली का अपना महत्व होता है और उनका लेखन प्रचलित लेखन से पूरी तरह भिन्न था। उनकी अंग्रेजी प्रामाणिक थी और वे किसी संदर्भ विशेष में सटीक शब्दों का इस्तेमाल करने के प्रति अत्यंत सजग रहते थे। उनके वाक्य सरल और सुबोध होते थे। वास्तव में वे हृदय से लिखते थे और लक्षित पाठकों के दिलों को संबोधित करते थे। गांधीजी कई नए तत्व लेकर आए, जिनसे पत्रकारिता के क्षेत्र में एक मुक्त जीवन की शुरुआत हुई। उनके अनेक अनुयायियों ने लिखना शुरू किया और उनकी रचनाएं भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होने लगीं जिससे क्षेत्रीय पत्रकारिता का महत्व बढ़ने लगा और देश का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं रह गया जहां से कोई क्षेत्रीय अखबार न निकलता हो। एक प्रभावकारी प्रचारक के नाते गांधी जी निडर थे और उनके शब्द मुक्त होते थे। वे लाखों लोगों तक पहुंचे और उन्हें अपने लक्ष्य से अवगत कराया। गांधीजी संभवतः युग–प्रवर्तक और महानतम पत्रकार थे। उनके द्वारा संपादित साप्ताहिक संभवतः उस युग के महानतम साप्ताहिक थे। उन्होंने कोई विज्ञापन प्रकाशित नहीं किया लेकिन साथ ही अखबार को घाटे में नहीं जाने दिया। वे सरल और स्पष्ट लेकिन प्रभावशाली लिखते थे, जिसमें जोशपूर्ण और ज्वलंत मुद्दे होते थे। उन्होंने इस बात पर हमेशा जोर दिया कि ''अख़बार के उद्देश्यों में पहला यह है कि वह लोकप्रिय भावनाओं को समझे और उन्हें अभिव्यक्त करे। दूसरा उद्देश्य लोगों में वांछित संवेदनाएं पैदा करना और तीसरा उद्देश्य समाज की विकृतियों को निर्भय होकर उजागर करना है।'' गाँधी के शब्द और कर्म, चेतना और चिंतन के केंद्र में हमेशा ही अंतिम जन रहता था। वे अंतिम जन की आंख से समाज, देश–दुनिया को देखने के लिये प्रेरित भी करते थे। गाँधी अपनी लेखनी का जिस उत्तरदायित्व के साथ उपयोग किया था और जैसे संयम और अनुशासन का उन्होंने अपने संपादन में उपयोग किया था वह आज दुर्लभ है। गाँधी शब्द की ताकत को बखूबी पहचानते थे इसलिए बड़ी सावधानी से लिखते थे। गाँधी की जैसी सरल भाषा और सहज संप्रेषणीयता पत्रकारिता में आज भी आदर्श है। महात्मा गाँधी पाठक के साथ सीधा संवाद करते थे। वह कहते थे कि पाठक नहीं तैयार करना है, पाठक को तैयार करना है। पाठक ऐसा होना चाहिए, जो केवल खबरों को पढ़ता ही न हो बल्कि बार–बार पढ़ता हो।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी किसी व्यक्ति और समाज के विकास के लिए मातृभाषा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे। यहां तक कि उन्होंने अपनी जीवनी अपनी मातृभाषा गुजराती में ही लिखी थी। महात्मा गांधी मातृभाषा को कितना महत्व देते थे यह उनके इस वक्तव्य से ही समझा जा सकता है। 'मुझे यह नहीं बर्दाश्त होगा कि हिंदुस्तान का एक भी आदमी अपनी मातृभाषा को भूल जाए, उसकी हंसी उड़ाए, उससे

शर्माए या उसे यह लगे कि वह अपने अच्छे से अच्छे विचार अपनी भाषा में नहीं रख सकता।' वे आगे कहते हैं, 'मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदाई दूध दे सकती है'। इस संबंध में महात्मा गांधी का कहना था, 'यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धांत रहे कि अंग्रेजी के जरिए ही हम अपने उनके विचार प्रकट कर सकते हैं उनका विकास कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि हम सदा के लिए गुलाम बने रहेंगे जब तक हमारी मातृभाषा में सारे विचार स्पष्ट करने की शक्ति नहीं आ जाती और जब तक वैज्ञानिक विषय मातृभाषा तब तक राष्ट्र को नया ज्ञान नहीं मिल सकता।'

गांधी जी ने हमेशा खुद को पत्रकार माना। उनका कहना था देश की आजादी हर भारतीय का पहला नागरिक धर्म है। इसके बाद मेरा काम पत्रकारिता का है। संपादक को कोई भी परिणाम भुगतने पड़ें लेकिन विचार खुलकर व्यक्त करने चाहिए। स्पष्ट है गाँधी की पत्रकारिता में उनके संघर्ष का बड़ा व्याहारिक दृष्टिकोण नजर आता है। जिस आमजन, हरिजन एवं सामाजिक समानता के प्रति गाँधी का रुझान उनके जीवन संघर्ष में दिखता है, बिल्कुल वैसा ही रुझान उनकी पत्रकारिता में भी देखा जा सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं महात्मा गांधी बेहतरीन संपादक और पत्रकार शायद इसलिए बन पाए क्योंकि उन्होनें कभी भी सत्य का साथ नहीं छोड़ा, यही पत्रकारिता का सबसे बड़ा धर्म है । गाँधी के शब्द और कर्म, चेतना और चिंतन के केंद्र में हमेशा ही अंतिम जन रहता था। वे अंतिम जन की आंख से समाज, देश–दुनिया को देखने के लिये प्रेरित भी करते थे। कहा जा सकता है महात्मा गाँधी की पत्रकारिता में आत्मा बसती थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महात्मा गांधीः सर्वश्रेष्ठ प्रचारक http%//www-pib-nic-in/newsite/hindifeature-aspÛ\relid¾24682*
2. *शर्मा, सुषमा, गांधी जी और पत्रकारिता, www.garbhanal.com*
3. *गाँधीजी एक संपादक के रूप में www.webdunia.com*
4. *रेणु, राकेश, गांधी की पत्रकारिता के बरक्स आज की पत्रकारिता, www.hindisamay.com*
5. *www.satyagrah.com*
6. *श्याम, हिमकर,* www.doosariaawaz.wordpress.com/2016/10/02/*गाँधी–की–पत्रकारिता*
7. *बंदोपाध्याय, अनु ,महात्मा गांधीः एक पत्रकार, www.newslaundry.com/2017/10/01/mahatma&gandhi&a&journalist*
8. *www.ranchiexpress.com गांधी : लघु पत्रों के महानतम संपादक*
9. *सूर्यप्रकाश, samvadsetupatrika-wordpress-com/2012/09/24 जुलाई अंक, 2011*
10. *गुप्त, विद्या विनोद, गाँधी जी, पत्रकारिता और स्वतंत्रता आंदोलन, http%//mediakamagic-blogspot-com/2009/11/blog&post_274-html*
11. *इंडियन ओपिनियन, 4 सितम्बर, 1912*
12. *सत्य के साथ प्रयोग आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद*
13. *श्रीधर, विजयदत्त, भारतीय पत्रकारिता कोश, वाणी प्रकाशन, नई दिली*
14. *प्रभु, के आर, राव आर यू, महात्मा गांधी के विचार, एन बी टी, दिल्ली*
15. *गांधी, महात्मा, हिन्द स्वराज, नवजीवन ट्रस्ट*
16. *गुहा, रामचन्द्र, गांधी बिफोर इंडिया, पैंगुइन बुक्स, 2014*
17. *गांधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, इंडियन ओपिनियन, नवजीवन प्रकाशन मंदिर।*

मारवाड़ के राठौड़ों के प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

shodhshree@gmail.com

डॉ. भगवान सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

स्वतंत्रता पूर्व भारत की प्रमुख रियासतों में मारवाड़ का प्रमुख स्थान था जिसके संस्थापक राठौड़ राजपूत थे। राठौड़ राजपूताना में बाहर से आये थे तथा अपने शौर्य, धैर्य एवं पराक्रम से जिस सुदृढ़ रियासत को उन्होंने प्रतिस्थापित किया उसके प्रारंभिक चरण में इन्हें विभिन्न उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ा जो मध्यकालीन राजस्थान का रोचक अध्याय है। मारवाड़ के राठौड़ो का मूल पुरुष राव सीहा था, तत्पश्चात् राव आस्थान, धूहड़, जोपसा, उहड़, सिंधल, धांधल, रायपाल, कान्हा, जालणसी, छाड़ा, टीड़ा आदि महत्वपूर्ण योद्धा हुये जिन्होंने वीरता, कूटनीति एवं समर्पण से रियासत की नींव रखी जिस पर बुलन्द इमारत राव जोधा एवं परवर्ती शासकों ने बनाई।

संकेताक्षर : *राव, रियासत, मिसल, उत्तराधिकार, जागीर, ख्यात, ठिकाना।*

मारवाड़ की विभिन्न ख्यातों और जैन ग्रंथो में राठौड़ राजवंश की उत्पति के संबंध में अनेक धारणाऐं प्रचलित है। जोधपुर राज्य की ख्यात में राठौड़ो की उत्पति राजा विश्वतमान के पुत्र वृहदबल से मानते हुए लिखा राठ से बालक उत्पन्न हुआ इसलिए उसका नाम ''राठवड़" रखा।[1] गौरीशंकर हरीचंद ओझा की मान्यता है कि राठौड़ो के लिए राष्ट्रकूट शब्द का प्राकृत ''रठ्ठउड़" होता है जिससे राठौड़ बना है। गौरीशंकर ओझा ने राठौड़ो को चन्द्रवंशी माना है।[2] वही रेऊ ने उन्हें सूर्यवंशी बताया है।[3] वस्तुतः राठौड़ आर्य थे तथा इनका मूल स्थान दक्षिण था वहाँ से उन्होंने गुजरात, काठियावाड़, गुजरात, राजपूताना, मालवा, बदायूं आदि में अपने राज्य स्थापित करने में सफलता पाई।

मारवाड़ के राठौड़ों का मूल पुरुष सीहा था जो सेतराम का पुत्र था। सीहा को दानेश्वरा खाप का राठौड़ माना जाता है। उसने कन्नौज से मारवाड़ में प्रवेश किया। पाली क्षेत्र में स्थानीय जनता जो मेरों के अत्याचारो से त्रस्त थी ने उनसे सम्पर्क स्थापित किया। उसके बारे में कहा जाता है :-

सिंहा बड़ा, देव गरुड़ है साथ।
बनकर छोड़िया कन्नौज में, पाली मारा हाथ।।
बारह सौ के बानवे, पाली कियो प्रवेश।
सीहा कनवज छोड़ आया मुरधर देश।।
सेतराम सम्राट के पुत्र अष्ट महावीर।
जिसमें सिहों ज्येष्ठ सूत, महारथी रणधीर।।

पाली के पास बीठू ग्राम में मिली राव सीहा की देवली से मिले लेख एवं चित्र से ज्ञात होता है कि लड़ते हुए वह काम आया था। राव सीहा के तीन पुत्रों की जानकारी मिलती है।

(अ) आस्थान - राव सीहा का उत्तराधिकारी बना।

(ब) सोनग - यह ईड़र जाकर रहा, इसे वंशज ''ईड़रिया'' राठौड़ कहलाये।

(स) अज - यह सरवोधर जाकर रहा।

ISSN 2277-5587

राव सीहा के पुत्र सोनग ने ईडर पर अधिकार जमाया अतः ईडर के नाम से ''ईड़रिया राठौड़'' कहलाये थे जिनके वंशज हटुँड़ी में रहे जिनसे वे ''हटुँड़िया राठौड़'' कहलाये। सीहा जी के पुत्र अजाजी के वंशजो ने द्वारका (ओखा मंड़ल) में अपना राज्य कायम किया। गुजराज में पोसीतरा, आरमँड़ा, महुआ आदि राठौड़ो के ठिकाने थे।

राव सीहा के पुत्र राव आस्थान ने पाली के आसपास मेरों की लूट से त्रस्त पालीवाल ब्राह्मणों की रक्षा की थी जिससे इस क्षेत्र में शांति का वातावरण बना।[4] राव आस्थान ने जिस तरह मेरों के आतंक से पालीवालों को मुक्ति दिलाई जिस कारण पालीवालों ने राव आस्थान व उनके अनुज सोनग और अज को उनके द्वारा पाली में एक हवेली और उनके रोजगार हेतु सवा पैतालीस टका निश्चित कर दिये। कुछ समय पश्चात राव आस्थान और उनके भाईयों ने यह महसूस किया की लम्बे समय के लिए यह स्थान हमारे भरण पोषण हेतु उपयुक्त नहीं है, तब वहाँ से इन्होंने जाने का निश्चय किर लिया इस पर पालीवाल व चौधरियों ने प्रत्येक गाँव से 5 हलवा सिंचित भूमि प्रदान की, यही नहीं उनके चाकरों के रहने के लिए भी कृषि योग्य भूमि प्रदान की। स्थानीय जनता के इस प्रेम से वशीभूत होकर आस्थान ने पाली में रहने का निश्चय किया और उनके भाई सोनग व अज क्रमश : ईड़र और सरवोधार चले गए।

आस्थान ने कूटनीतिक तरीके से डाभी जाति के लोगो को अपनी तरफ मिलाया और गोहिलो को परास्त कर ''खेड़'' पर अधिकार कर लिया और कुछ समय बाद सेतरावा क्षेत्र के 280 गाँवों पर कब्जा कर मारवाड़ में राठौड़ राज्य का प्रादुर्भाव किया। राव आस्थान की 3 रानियों से कुल 8 पुत्र हुये जिसमें ''धूहड़'' उसका उत्तराधिकारी बना जिसके समय ही चक्रेश्वरी की प्रतिमा ''नागाणा'' ग्राम में स्थापित की इसलिए राठौड़ो की इस देवी का नाम ''नागणेचियाँ'' पड़ा। राव आस्थान के दूसरे पुत्र जोपसा के पुत्रो[5] में उहड़ (ठिकाने–कोरणा, बागावास, थोब आदि) सिधंल (पाँचोटा, जेतपुरा, मानपुरा आदि ठिकाने) धांधल आदि प्रमुख है। लोक देवता पाबूजी धांधल के ही वंशज है जिन्होंने गौ–रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर उच्च आदर्श प्रस्तुत किया। केरु, सालवा, गेलावास आदि ठिकाने धांधल राठौड़ो के ही थे। धूहड़ के पश्चात रायपाल ने अकाल के समय अन्नादि बाँटकर जनता को राहत पहुँचाई इसी कारण वह ''महिरेलण'' (अर्थात् इन्द्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है रायपाल ने परमारों का ठिकाना बाड़मेर 560 गाँवों के साथ जीत लिया, हालांकि यह अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है क्योंकि उस समय बाड़मेर परमारों के नहीं चौहानो के अधीन था। राव रायपाल ने यादववंशी राजपूत मॉगा को सर्वस्व देकर अपना भिक्षुक (चारण) बनाया। इसी मॉगा का बेटा चंद हुआ जिसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाये।[6] रायपाल के 10 पुत्र हुये जिनमें कान्हा (उत्तराधिकारी), डाँगी (वंशज डाँगी राठौड़ कहलाये) सूँडा (वंशज सूँडा राठौड़), रादो (वंशज रांदा राठौड़), मोहन (वंशज मुहणोत ओसवाल कहलाये, इतिहासकार मुहणोत नैणसी इसी मुहणोत शाखा में हुआ।) आदि प्रमुख है।

रायपाल के बाद क्रमशः कान्हा, राव जालणसी, राव छाड़ा, राव टीडा, कान्हड़दे आदि उत्तराधिकारी बने। राव छाड़ा के पुत्र खोखर ने साँकड़ा, सनावड़ा आदि पर अधिकार कर लिया। इसके वंशज खोखर राठौड़ कहलाये जो वर्तमान जैसलमेर जिले में झिनझिनयाली, भादरिया, भाड़ली आदि गांवो में रहते थे।

मारवाड़ के राठौड़ो का वर्चस्व स्थापित करने में राव टीड़ा के पुत्र सलखा और उसके वंशजों का विशेष योगदान रहा है। सलखा के पुत्र मल्लीनाथ ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया, उसने त्रिभुवनसी से महेवा जीता, यह क्षेत्र उसके नाम से मालाणी कहलाया। मल्लीनाथ से ही महेचा, बाड़मेर, पोकरणा, फलसुडिया आदि राठौड़ो की शाखाऐं अंकुरित हुई। सलखा के दूसरे पुत्र राव जैतमाल से जैतमालोत राठौड़ कहलाये। जैतमाल राठौड़ों का मारवाड़ में नगर, गगराणा, पादरु, गुड़ा, मोरसीम तथा मेवाड़ में केलवा, आगरिया आदि ठिकानों पर आधिपत्य रहा। सलखा के तीसरे पुत्र वीरमदे के वंशजों को रतलाम, सीतामऊ, अमझेरा में अपना राज्य स्थापित किया। वीरमदे गायों की रक्षार्थ काम आया जिसका पता बीकानेर के गजनेर गाँव में स्थित देवली पर स्थित शिलालेख से पता चलता है। वीरमदे की आकस्मिक मृत्यु के समय उसका नाबालिग पुत्र चूँडा जब संघर्ष कर रहा था तब उसकी योग्यता भाँपकर मंडोर पर उस समय काबिज दूदा (प्रतिहारो की शाखा) ने चूँडा को अपना दामाद बना लिया और दहेज में मंडोर दे दिया। इस आशय का सोरठा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है :–

''इँदा रो उपकार, कमधज मत भूलो कदे।
चूँड़ो चँवरी चाढ़, दियो मंडोवर दायजे।।

चूँड़ा के मंडोर शासक बन जाने के पश्चात, राठौड़ो की 2 शाखाऐं हो गई, मल्लीनाथ के वंशज मालानी के

उजाड़ क्षेत्र के शासक रहे और वीरम के वंशज मंडोर जैसे गढ़ के अधिपति बन गये। चूण्डा राठौड़ो का प्रथम शक्तिशाली शासक था[7] जिसने जैसलमेर के भाटियो, साँखलो व नागौर के मूसलमानो से संघर्ष कर मजबूत आधार तैयार किया। चूण्डा की इच्छानुसार उसका छठ्ठा पुत्र कान्हा राजगद्दी पर बैठा। उसने विद्रोही सरदार पुणपाल साँखला को मारकर उसका जांगलू क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया लेकिन नागौर क्षेत्र उसके कब्जे से निकल गया। शम्स खाँ के पुत्र फिरोज ने नागौर पर कब्जा कर लिया। कान्हा ने लगभग 11 महिने राज्य किया। उसके पश्चात उसका बड़ा भाई सत्ता राजगद्दी पर बैठा लेकिन शीघ्र ही सन् 1427 में उसके बड़े भाई रणमल ने उसे पदच्युत कर दिया।

रणमल चूण्डा का ज्येष्ठ पुत्र था लेकिन वह अपने पिता की आज्ञा से राज्याधिकार छोड़कर जोजावर आकर बस गया और बाद में मेवाड़ में रहते उसकी बहन हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखा से हो गया, जिससे बाद में पुत्र मोकल जन्मा। रणमल ने मेवाड़ की राजनीति में अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। क्रमशः अपनी शक्ति बढ़ाते हुए मेवाड़ में रहकर मारवाड़ की राजनीति में हस्तक्षेप करने लगा और राव सत्ता को हटाकर मंडोर पर कब्जा कर लिया। मंडोर जीतने के बाद भी मेवाड़ की राजनीति में उसके बढ़ते प्रभाव से खिन्न मेवाड़ के सरदारों ने उसकी हत्या कर दी, उसके पुत्र जोधा को जब यह पता चला तो वह भागकर मंडोर पहुँचा।[8] रणमल के 26 पुत्र थे जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र अखैराज था जिसे बगड़ी की जागीर दी, परन्तु उसके द्वारा जोधपुर राज्य का त्याग करने के कारण उसके वंशजों को जोधपुर राजा का राज्याभिषेक होने पर तिलक करने का अधिकार दिया गया।

रणमल के पुत्र अखैराज के त्याग के बाद उसका द्वितीय पुत्र जोधा उसका उत्तराधिकारी बना। रावजोधा ने सर्वप्रथम मारवाड़ का शासन तंत्र सुव्यवस्थित रूप से चलाने एवं अपने भू-भाग की रक्षा के लिए अपने भाईयों व पुत्रों को भूमि वितरित की। राव जोधा ने डावी व जीवणी मिसल कायम की जिसमें डावी मिसल में बेटों को और जीवणी मिसल में भाईयों को स्थान दिया।

राव जोधा ने भाईयों को जागीर में जो भू-भाग दिये उसमें प्रमुख है :-

अखैराज को बगड़ी गाँव दिया, अखैराज के पौत्र कूँपा से ''कूँपावत शाखा'' का प्रादुर्भाव हुआ वही अखैराज के पोते जैता से ''जैतावत शाखा'' अंकुरित हुई। चांपा को 'कापरड़ा एवं बनाड़' दिया जिससे ''चांपावत शाखा'' का प्रादुर्भाव हुआ। रूपा को चाड़ी गाँव दिया जिसके वंशज 'रूपावत राठौड़' कहलाये। करन को लूणावास गाँव दिया गया जिसके वंशज 'करनोत राठौड़' के नाम से जाने गये। पाता को करणु गाँव मिला जिसकी पीढ़ीयाँ ''पातावत राठौड़'' कहलाई।

राव जोधा ने अपने पुत्रों को जागीर में जो भू-भाग दिये उसमें प्रमुख है :-

वरसिंह व दूदा दोनो सगे भाई थे जिन्हे मेड़ता दिया गया। दूदा के वंशज 'मेड़तियाँ' एवं वरसिंह के वंशज 'जोधा' कहलाये। बीका व बीदा को जांगलू का क्षेत्र मिला। कुंवर बीका ने अपने बल पर बीकानेर की स्थापना कर अपना पृथक् राज्य स्थापित किया व बीदा के वंशज 'बीदावत' नाम से प्रख्यात हुये। करमसी और रायमल्ल को 'नाहड़सर गाँव' मिला बाद में नागौर के सल्हेखान की कृपा से आसोप और खींवसर लेने में सफल रहे। करमसी के वंशज करमसोत और रायमल्ल के 'रायमलोत' कहलाये।

मारवाड़ में राठौड़ वंश के आगमन से पूर्व जिन-जिन राजपूत जातियों का यहाँ आधिपत्य था, उन्होंने कम शक्तिशाली होने के कारण राठौड़ो की अधीनता स्वीकार कर ली इनमें इंदा, भाटी, चौहान तंवर प्रमुख थे। इन अन्य राजपूत जातियों से राठौड़ो ने वैवाहिक संबंध स्थापित किये तथा उन्हें जो ठिकाने प्रदान किये गये उन्हें गनायत ठिकानों कि श्रेणी में रखा गया।

सुस्पष्ट है कि राठौड़ो के मूल पुरुष सीहा से जोधा तक का राजनीतिक इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है परन्तु अपने शौर्य, धैर्य एवं पराक्रम से राठौड़ो ने प्रशासनिक, आर्थिक व सैनिक दृष्टि से सुव्यवस्थित शासन की स्थापना मारवाड़ में कर अपनी श्रेष्ठता मध्यकालीन भारत में प्रतिस्थापित की जो स्वतंत्रता पूर्व तक कायम रही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जोधपुर राज्य की ख्यात् पृ. 7,8*
2. *ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास भाग -1, पृ. 86*
3. *रेऊ : राष्ट्रकूटों का इतिहास भाग -1, पृ. 10-14*
4. *मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग - 1, पृ. 9-12*
5. *उदयभाण चांपावत री ख्यात, भाग -1, पृ. 24*
6. *ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग -1, पृ. 70*
7. *जगदीश सिंह गहलोत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 84-85*
8. *वही पृष्ठ 86.*

पारंपरिक लोक रंगकला के समकालीन स्वरूप का स्त्रीपक्षीय परिपार्श्व : पंडवानी के विशेष संदर्भ में

shodhshree@gmail.com

डॉ. अपर्णा वेणु
अतिथि प्राध्यापिका, एनएसएस कॉलेज, ओट्टाप्पालम (केरल)

शोध सारांश

प्रस्तुत प्रपत्र में भारत के सबसे लोकप्रिय एवं देश–विदेश में काफी विख्यात पंडवानी नामक लोक रंगकला के समकालीन स्वरूप के स्त्रीपक्षीय परिपार्श्व को स्त्रीविमर्श के परिप्रेक्ष्य से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। इसके अन्तर्गत पंडवानी में स्त्री उपस्थिति के इतिहास के विभिन्न चरण, स्त्री कलाकारों द्वारा झेले गए संघर्ष, उनके प्रतिरोध, स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप इत्यादि स्तरों पर विशेष रूप से विचार किया गया है। यहाँ अध्ययन–विश्लेषण केलिए उपयुक्त सैद्धान्तिक ढाँचे के रूप में अमरीका की प्रसिद्ध स्त्रीवादी चिंतक एलाइन शोवाल्टेर द्वारा प्रारूपित संकल्पना को प्रयुक्त किया गया है।

संकेताक्षर : *पंडवानी, पितृसत्ता, लिंग–स्थिति, अस्मिता, फेमिनाइन, फेमिनिस्ट, फीमेल, प्रतिरोध, पुनर्रूपायन, संरचना।*

पंडवानी लोक समाज की संकल्पना एवं लोक मानस की संवेदना को सहज ढंग से अभिव्यक्त करने वाली एक ऐसी एकल नाट्य शैली है जो गायन, वादन, अभिनय, आंगिक विन्यास इत्यादि रंगमंचीय तत्वों की अनंत संभावनाओं को आत्मसात करने वाला विशिष्ट सृजनात्मक उपक्रम है। पंडवानी की विषय वस्तु सबलसिंह चौहान द्वारा अवधी में लिखित महाभारत पर आधारित है।छत्तीसगढ़ की सबसे लोकप्रिय और देश –विदेशों में काफी विख्यात इस एकल रंगकला में लंबे समय तक स्त्रियों की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । इसके प्रस्तुतीकरण में पुरुषों का ही एकाधिकार रहा था। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के जड़ों में परिव्याप्त पुरुष–सत्तात्मक मानसिकता ने ही इस विशेष लोक नाट्य शैली के सार्वजनिक स्पेस से स्त्रियों को विस्थापित किया था। साढोत्तर भारत में अभिव्यक्ति के अन्यान्य माध्यमों में स्त्री की अस्मिता एवं उसकी रचनात्मक भूमिका जब चर्चा के केंद्र में आ गयी तब अन्य लोक कलाओं के समान पंडवानी का क्षेत्र भी इस स्त्री चेतना से प्रभावित होने लगा। महिला कलाकारों के पदार्पण ने पंडवानी को अपनी रूढ़िवादी एवं पुरुष वर्चस्वी संरचना को तोड़कर स्वतंत्र व समकालीन होने का अवसर प्रदान किया। आजकल पंडवानी अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को पार करती हुई देश विदेश में ख्याति आर्जित कर रही है तथा महिला कलाकारों केलिए अपनी स्वत्वाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता भी दिखाई दे रहा है।

अमरीका की प्रसिद्ध स्त्रीवादी चिंतक एलाइन शोवाल्टेर ने स्त्रियों के साहित्यिक रचना कर्म के इतिहास को तीन चरणों में विभाजित किया है। पहला चरण जिसको फेमिनाइन फेस कहा है, उसमें स्त्रियों ने पुरुषों के लेखन का अनुकरण करते हुए साहित्य के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित की थी। इस फेस के दौरान स्त्रियों ने पुरुष संस्कृति की बौद्धिक उपलब्धियों में बराबरी के स्तर पर शामिल रहने के प्रयास में अपना रचना कार्य किया था और स्त्री–प्रकृति के संबन्ध में जो पुरुष कल्पित धारणायें हैं उन्हीं का समावेशन भी किया था।[1] दूसरा फेमिनिस्ट फेस है जो साहित्य में व्याप्त पारंपरिक पितृक प्रतिमानों के खिलाफ प्रतिरोध, स्त्रीत्व की पुरुष कल्पित मानकों तथा पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक मूल्यों का खण्डन, अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं स्वायत्तता की भावना से सम्पन्न है।[2] तीसरे चरण यानी फीमेल फेस में स्त्रियों ने अनुकरण और प्रतिरोध के पुरुषावलम्बी रूपों को नकारते हुए अभिव्यक्ति के ऐसे स्वतंत्र व अनन्य रूपों को उभारने लगे, जिनके मूल में स्त्री के अपने आत्मपरक अनुभवों की केन्द्रीयता दिखाई देती है। इससे संस्कृति के स्त्रीपक्षीय विवेचन की छलक साहित्य की संरचना में परिव्याप्त होने लगी।[3] साहित्य के संदर्भ में

शोवाल्टेर द्वारा स्वीकृत विभाजन की इस विशेष संकल्पना को उपयुक्त उपाधी के रूप में प्रयुक्त किया जाय तो पंडवानी के स्त्रीपक्षीय परिपार्श्व अर्थात् पंडवानी के क्षेत्र में हो रहे स्त्री हस्तक्षेपों को भी तीन विभिन्न चरणों में विभाजित करके देखा जा सकता है।

पहला चरण – स्त्रियों का प्रवेश

पंडवानी के क्षेत्र में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति सन् 1970 के आसपास से लेकर हुई है। इस क्षेत्र में पहली बार अपनी उपस्थिति स्थापित करने वाली महिला हैं सुखिया बाई। पुरुषों की परंपरा माने जाने के कारण पंडवानी को सुखिया बाई पुरुष वेश धारण करती हुई मंच पर प्रस्तुत करती थी। इस के संबंध में डॉ. परदेशी राम वर्मा कहते हैं कि दृ ''रायपुर के पास स्थित 'मुनगी' गाँव की सुखिया बाई मर्दो के वेश में मंच पर आती थी। तब पंडवानी के विख्यात कलाकार रावनझीपन वाले मामा–भाँजे ही चर्चा में आये थे सुखिया बाई को लगा होगा कि यह महाभारत की लड़ाई का किस्सा है इसलिए यह मर्दाना विधा है। इसलिए वे मर्दो के वेश में मंच पर आती थी।''[4] उसका यह कारण भी रहा होगा कि उस समय स्त्रियों का पंडवानी के मंच पर प्रवेश वर्जित था, अगर एक स्त्री को स्त्री के असली रूप में मंच पर देखें तो दर्शक उससे बिल्कुल असहमत रहेंगे। अतः सुखियाबाई को इस क्षेत्र में प्रवेशकरने केलिए इस तरह की एक तरीका को अपनाना पड़ा होगा। सुखिया बाई के बाद लक्ष्मी बाई नामक महिला कलाकार ने पंडवानी के क्षेत्र में प्रवेश किया। वे पहली ऐसी कलाकार हैं जिन्होंने असली स्त्री के रूप में मंच पर पंडवानी का प्रस्तुतीकरण किया था। उन्होंने पंडवानी की वेदमती शैली यानी मंच पर बैठकर गायन और अभिनय करने की शैली अपनायी थी।

इन दोनों महिलाओं ने पुरुष कलाकारों का अनुकरण करते हुए ही इस लोक नाट्य शैली के पुरुष प्रधान स्पेस में अपनी उपस्थिति स्थापित की थी। एक ओर सुखिया बाई ने पुरुषों की वेश भूषा को स्वीकारकर इस पुरुष प्रधान विधा में पदार्पण करते हुए पुरुष संस्कृति से बराबरी करने का प्रयास किया तो दूसरी ओर लक्ष्मी बाई ने असली स्त्री के रूप में मंच परपंडवानी की तथाकथित शैली काप्रदर्शन करना प्रारंभ किया। इन दोनों संदर्भो का विवेचन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पंडवानी के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति का यह पहला चरण अवश्य ही ऐतिहासिक ढंग से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस पुरुष प्रधान रंगकला में स्त्रियों ने प्रवेश करने का क्रांतिकारी कदम उठाया था। किन्तु प्रथम चरण में इस रंगकला की प्रचलित तथाकथित पुरुष निर्मित शैली में कोई विशेष परिवर्तन तो नहीं आया। इन स्त्रियों की प्रस्तुतियों में स्त्री की परंपरागत पुरुष कल्पित छवि ही उभरी थी तथा उनमें स्त्री होते हुए भी स्त्री दृष्टि का सर्वथा अभाव था।

दूसरा चरण – प्रतिरोध की चेतना

पंडवानी में स्त्रियों की उपस्थिति के इतिहास का दूसरा चरण तीजन बाई के पदार्पण से शुरू होता है। पंडवानी को देश –विदेशों में ख्याति के शिखर पर पहुँचाने वाली मशहूर महिला कलाकार है पद्मभूषण तीजन बाई।पंडवानी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित करने के लिए तीजन जी को बहुत अधिक संघर्ष झेलना पड़ा था। अपने बचपन में तीजन बाई जब पंडवानी गाने के अभ्यास करती थी तब उनकी माँ निरंतर इसके विरुद्ध आवाज उठाती थीं। और जब जब माँ ने उसे गाते पकड़ा तब माँ की प्रतिक्रिया भी बहुत कठोर थी। तीजन बाई के शब्दों में दृ ''मुझे बंद कर दिया जाता और भूखा रखा जाता था। कई बार तो माँ मेरे कंठ तक अपनी ऊँगलियाँ घुसा देती थी, ताकि मेरा गाना बंद हो जाए। मगर मैं कहाँ रुकने वाली थी ?मुझे पंडवानी के अलावा कुछ ओर सूझता ही न था।''[5] माँ ने इसलिए तीजन को गाने से रोकने की कोशिश की थी कि वे अच्छी तरह जानती थी कि अगर तीजन पंडवानी कलाकार बन जाएगी तो समुदाय और परिवार से वे बहिष्कृत हो जाएगी। जब उनकी शादी हो गयी तब ससुराल वालों के लिए यह बिलकुल मंजूर न था कि स्त्री होकर वह पंडवानी का प्रदर्शन करें। उस समय में सिर्फ मर्द ही कापालिक शैली में पंडवानी प्रस्तुत करते थे। कापालिक शैली की यही विशेषता है कि उसमें महाभारत कथा को मंच पर खड़े होकर प्रस्तुत किया जाता है । तीजन बाई के पहले स्त्रियाँ बैठकर कथा गायन करने की वेदमति शैली ही अपनाती थी। कापालिक शैली में प्रदर्शन नैतिक दृष्टि से हेय समझी जाती थी। इस कारण से अपने पति का मार–पीट भी तीजन को बहुत अधिक सहना पड़ा। किन्तु इन परिस्थितियों ने तीजन बाई को हताश नहीं कर दिया। एक रात को जब वे पंडवानी की प्रस्तुति कर रही थी तब उनका पति क्रुद्ध होकर मंच पर चढ़ कर उन्हें मारना–पीटना शुरू किया। अपना सारा नियन्त्रण खो गयी तीजन ने अपने हाथ के एकतारे को गदा बनाकर पति को खूब मारा।इस घटना से तीजन घर से विस्थापित हो गयी। किन्तु तीजन इतना कर्मठ औरत थी कि उन्होंने खुद एक झोंपडी बनायी तथा अपना पूरा जीवन कला को समर्पित करती हुई अकेली होकर जीना प्रारंभ किया। इस घटना को पूरे पुरुष सत्तात्मक

समाज के प्रति स्त्री के आक्रोश एवं प्रतिरोध का घोर प्रहार माना जा सकता है। अपने जीवन के कटु अनुभवों ने ही उन्हें प्रतिरोध करने की शक्ति प्रदान की थी। तीजन बाई का यह प्रतिरोध अन्य महिला कलाकारों केलिए इतना प्रेरणादायक रहा है कि वे पितृसत्ता से लड़ते हुए पंडवानी के क्षेत्र में अपनी सशक्त भूमिका निभाने में सक्षम हो उठी। पंडवानी के क्षेत्र में अपनी सशक्त भूमिका निभाने वाली दो और प्रमुख कलाकार हैं ऋतु वर्मा और प्रभा यादव। इन दोनों ने अपने प्रस्तुतीकरण द्वारा इस नाट्य शैली को देश विदेश में काफी लोकप्रिय बनाया है। इनके अलावा शांति चेलक, कुमारी निषाद, इंदिरा जांगड़े, अमृता साहू, प्रतिमा बारले, कुंती गन्धर्व, पूर्णिमा साहू आदि महिलाओं के नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने पंडवानी को अपनी आजीविका का साधन भी बना लिया है।

दूसरे चरण का विश्लेषण करने से दो बातें स्पष्ट हो जाती है। पहला,महिला कलाकारों ने पंडवानी के क्षेत्र में सदियों से परिव्याप्त पुरुषों के एकाधिकार को तोड़कर स्त्री के निजी स्वत्व को स्थापित करने का सृजनात्मक कदम उठाया है। दूसरा, पंडवानी से जुड़ने वाली महिलाओं ने पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में निहित स्त्री विरोधी नैतिक मूल्यों एवं रूढ़िवादी विचारों को चुनौती देना भी शुरू किया। प्रतिरोध के ये दोनों रूप ऐतिहासिक तौर पर काफी प्रभावशाली रहे हैं।

तीसरा चरण : स्त्रीपक्षीय पुनर्रुपायन

तीसरे चरण तक आते आते पंडवानी का महिला परिदृश्य समग्र रूप से परिवर्तित होता दिखाई देता है। महिला कलाकारों ने पंडवानी के पुरुष प्रधान स्वरूप को नकारते हुए इस विशिष्ट रंगकला को एक नवीन परिप्रेक्ष्य से देखने व स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रुपायित करने का सृजनात्मक कदम उठाया। पुनर्रुपायन की यह प्रवृत्ति कुछ विशेष स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेपों के रूप में प्रयुक्त होता दिखाई देता है।

वर्तमान समय में पंडवानी के क्षेत्र में होने वाला सबसे सशक्त स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप है महाभारत कथाओं की स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या। जैसा कि पहले ही सूचित किया गया है कि पंडवानी की विषयवस्तु महाभारत के विभिन्न कथा–संदर्भो पर आधारित है। महाभारत के मिथक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समय और परिवेश के अनुसार कथाओं की आख्या–व्याख्या करने की अनंत संभावनाएँ निहित हैं। पुरुष–प्रधान रंगकला होने के कारण पंडवानी में विषय–वस्तु का चयन पुरुष –केंद्रित दृष्टि से ही हुआ करतेथे। महाभारत के पुरुष–पात्रों के वीरता और शौर्य को दिखाने वाले कथा–प्रसंग ही प्रायः पंडवानी के लिए चुना जाता था। स्त्री पात्रों की प्रतिष्ठा या तो अप्रधान या श्रृंगार रसोत्पादन के साधन के रूप में ही हुआ करती थी। दूसरे शब्दों में, स्त्री के प्रति पुरुष सत्तात्मक समाज की जो धारणाएँ होती है, उन्हीं का द्योतन पंडवानी के विषय विन्यास में भी पाया जा सकता है। पुरुषों के द्वारा प्रदर्शित स्त्री पात्र भी हमेशा पुरुष दृष्टि से रूपायित स्त्री संकल्पनाओं को उजागर करने वाली थी। स्त्री के नैसर्गिक भाव और स्त्रीत्व की स्वाभाविक चेतना का उसमें सर्वथा अभाव रहा था। तीसरे चरण में जब तीजन प्रभृति महिला कलाकारों ने व्यापक तौर पर पंडवानी का प्रदर्शन करने लगातब पंडवानी की संपूर्ण विषयवस्तु का परिप्रेक्ष्य परिवर्तित होने लगा। स्त्री पात्रों की चारित्रिक संरचना में निहित पुरुष सत्ता की जड़ें टूटने लगी। व्यक्तित्व और आत्मचेतना से युक्त स्त्री पात्रों को मंच पर प्रस्तुत करने का बोधपूर्वक प्रयास महिला कलाकारों ने किया। इस प्रकार विषयवस्तु के स्तर पर जो स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप हुए है उन्हें तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है।

- उपेक्षित या अप्रधान स्त्री पात्र की प्रधानता के साथ प्रयुक्ति
- स्त्री प्रधान कथा–सन्दर्भो की स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या
- स्त्रियों की निन्दा करने वाली हास्य उक्तियों की उपेक्षा

महाभारत में सशक्त चरित्र वाली ऐसी कई स्त्री पात्र मौजूद हैं जिनका प्रस्तुतीकरण तथाकथित पंडवानी के मंच पर नहीं हुआ करते थे। किन्तु इन पात्रों के चरित्र में समकालीन स्त्री जीवन की संवेदनाओं को चित्रित करने की अनन्त संभावनाएँ मौजूद हैं। अतः स्त्री कलाकारों ने ऐसे स्त्री पात्रों को बोधपूर्वक मंच पर प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उदाहरण केलिए पंडवानी की प्रमुख महिला कलाकार शान्ति बाई चेलक, जिन्होंने उपेक्षित स्त्री पात्रों की मंच पर गहनता से व्याख्या की है। छत्तीसगढ़ की लेखक प्रो. उर्मिला शुक्ल के मत में – ''शान्ति बाई चेलक पंडवानी के प्रसिद्ध प्रसंगों के साथ–साथ उन प्रसंगों को उठाती हैं जो अब तक अनछुए हैं, जैसे पंडवानी के स्त्री–पात्र। स्त्री–पात्रों में भी सर्वथा उपेक्षित दुर्योधन की पत्नी भानुमती, भीष्म पितामह की माता सत्यवती। इन पात्रों की व्यथा को वर्तमान स्त्री –विमर्श से जोड़ना इनकी विशेषता है।''[6]

पितृसत्तात्मक शोषण, अपमान और व्यथाओं की शिकार के रूप में महाभारत में पाए जाने वाले स्त्री पात्रों के जीवन सन्दर्भों को समकालीन स्त्री जीवन की विडंबनाओं के साथ जोड़कर देखने का प्रयास भी महिलाओं के पंडवानी प्रदर्शनों में पाया जा सकता है। उदाहरण के रूप में तीजन बाई द्वारा प्रस्तुत द्रौपदी के कथा संदर्भ को ले सकते है। द्रौपदी के प्रक्षुब्ध मन से गुजरने का प्रयास करते हुए तीजन जी ने समाज में स्थापित समस्त पारंपरिक धारणाओं के मूल को तोड़कर समकालीन स्त्री पक्षीय दृष्टिकोण के साथ उस विशेष पात्र के चरित्र की व्याख्या करने की कोशिश की है। और एक कथा संदर्भ है कुंती का। युद्ध-भूमि में अपने दोनों पुत्र एक दूसरे से लड़ते हुए देखने वाली एक माँ की मानसिक अवस्था, व्यथा और अपने आप के प्रति ईर्ष्या इन सभी भावों को बड़ी तन्मयता के साथ प्रस्तुत करती है महिला कलाकार। उसी प्रकार युद्ध-भूमि में अपने सौ पुत्रों के मृत शरीर को देखकर दिल टूटकर रोने वाली गान्धारी का अति कठिन दुःख तथा कृष्ण को शाप देते समय उसके मन के क्रोध आदि भावों कोभी बड़ी मार्मिक ढंग से महिला कलाकार अभिव्यक्त करती हैं। स्त्रियों की निन्दा करने वाली हास्य उक्तियाँ तथा स्त्री विरोधी टीका टिप्पणियों का खंडन भी स्त्री कलाकारों ने अपनी प्रस्तुतियों में किया है। पाँच पति वाली द्रौपदी को उपहास की दृष्टि के साथ देखने की आदत पंडवानी में रही थीं। किन्तु स्त्री कलाकारों ने द्रौपदी को बड़े आदर के साथ प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए प्रभा यादव की प्रस्तुति। उसमें द्रौपदी को माँ पार्वती का अवतार मानकर जगदम्बा की तरह पूजा करने की जो रीति उनके प्रदेशों में है उसी से प्रभावित प्रभा जी ने द्रौपदी को सम्मान की दृष्टि से देखने की कोशिश की है।

पंडवानी की रूप संरचना के स्तर पर जो हस्तक्षेप महिलाओं ने किया है उसका भी अपना ऐतिहासिक महत्व है। पितृ सत्तात्मक नैतिक बोध के अनुसार मंच पर अपने शरीर को मुक्त गति के साथ उपयुक्त करना भद्र महिलाओं के लिए बिलकुल शोभा कारक नहीं है। महिलाओं ने इस स्त्री विरोधी नैतिक बोध का खण्डन किया और कथन व गायन के साथ साथ अभिनय केलिए पूरे शरीर को सृजनात्मक ढंग से उपयुक्त करने की एक नवीन प्रदर्शन शैली को पंडवानी में प्रतिष्ठित किया। उसी प्रकार महिला कलाकारों ने पंडवानी की प्रचलित स्त्री-देह-भाषा में निहित लिंगस्थितीय वर्चस्व के संकेतों को प्रश्नीकृत किया तथा मंच पर स्त्री स्वत्व को उसकी सहजता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया। इस तरह स्त्री देह संबंधी पुरुष कल्पित रूढ़ प्रारूपों को तोड़कर स्त्रीत्व की नैसर्गिक चेतना को आत्मसात करने वाली महिला- पंडवानी प्रस्तुतियों में स्त्रियों के सत्वर एवं अस्तित्वपरक समस्याओं को सम्बोधित करने का प्रयास भी देखा जा सकता है।

तीसरे चरण पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पूर्व चरणों से भिन्न वर्तमान समय में पंडवानी स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपायित होकर रंगाभिव्यक्ति की ऐसी स्वतंत्र व अनन्य विधा के रूप में उभरने लगी है जिसके मूल में स्त्री के अपने आत्मपरक अनुभवों की केन्द्रीयता सुविन्यस्त है।

उपसंहार

एलाइन शोवाल्टेर की सैद्धान्तिक संकल्पना को उपयुक्त उपाधी के रूप में स्वीकार करते हुए पंडवानी के समकालीन स्वरूप के स्त्रीपक्षीय परिपार्श्व के तीन विभिन्न चरणों का अध्ययन-विश्लेषण करने पर हम देख सकते हैं कि पहले चरण में महिलओं ने पुरुषों का अनुकरण करते हुए ही पंडवानी के क्षेत्र में अपना पदार्पण किया तो दूसरे चरण में महिलाओं ने पंडवानी में निहित पितृसत्ता को चुनौती देने लगी। तीसरे चरण में इन महिला कलाकारों की अदम्य इच्छाशक्ति एवं अनथक परिश्रम ने पंडवानी की जड़ों में परिव्याप्त पितृसत्तात्मक तत्वों का खण्डन किया है तथा इस लोक नाट्य शैली को अपनी रूढ़िवादी एवं पुरुष वर्चस्वी संरचना को तोड़कर स्वतंत्र व समकालीन होने का अवसर भी प्रदान किया है। आजकल पंडवानी महिला कलाकारों केलिए अपनी अस्मिता एवं आत्मतत्व को सृजनात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने केलिए उपयुक्त अनन्य व स्वतंत्र माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता दिखाई देता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Elaine Showalter] Towards a Feminist Poetics] Twentieth Century Literary Theory A Reader] Edited by KM Newton] Macmillan Education] 1997] P-217*
2. *वहीं, पृ. 217*
3. *वहीं, पृ. 218*
4. *डॉ परदेशीराम वर्मा, पंडवानी की पुरखिन दाई श्रीमती लक्ष्मी बाई, aarambha.blogspot.com, 22 फरवरी, 2010*
5. *चन्द्रकान्त सिंह, पति का घर छोडा, पंडवानी नहीं छोडी, 28 अक्टू 2018, www.livehindustan.com*
6. *उर्मिला, पंडवानी, मनस्वी ब्लॉग, 6 जुलाई 2011, urimilashukla20.blogspot.com*

जोधपुर का प्राचीन जल स्त्रोत–शेखावत जी का तालाब

डॉ. प्रतिभा सांखला
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मारवाड़ में वर्षा की कमी के कारण जल का अभाव हमेशा से ही रहा है। इसलिये यहां के शासकोंने जल संचयन के लिये समय–समय पर कुंए, बावड़ी, झालरे, तालाब आदि बनवाये। उन्हीं में से एक तालाब है, ज्ञान सागर, जो कि शेखावत जी के तालाब के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस तालाब को जसवन्तसिंह प्रथम की रानी शेखावत अतिरंगदे ने आज से करीब 450 वर्ष पहले जोधपुर में रसाला रोड़ पर इस तालाब को बनवाया था। यह जोधपुर का प्राचीनतम जल स्त्रोत है। और अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का साक्षी भी रहा है।

संकेताक्षर : *मारवाड़ प्राचीन, जल स्रोत, तालाब, ऐतिहासिक।*

वीर भूमि मारवाड़ का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है।[1] राव जोधा ने मेवाड़ को लूटा और मँडोवर जाकर सं. 1515 जेठ सुदी 11 शनिवार दोपहर को जोधपुर नगर की नींव डाली। देस दीवांण रो मार पैमाल कियो। फेर पाछा मंडोहर पधार अर जोधपुर बसायो। राज कियो[2] मारवाड़ राज्य की वर्तमान राजधानी जोधपुर है जो राठौड़ राव जोधाजी ने जेठ सुदी 11 सवत् 1516 शनिवार तदनुसार 12 मई सन् 1459 ई. को पुरानी राजधानी मंडोर से 5 मील दूरी पर दक्षिण में बसाई थी। मारवाड़ शब्द मरूवार शब्द का अपभ्रंश है, जिस को प्राचीन काल में मरूस्थान भी कहते थे।[3] पुराणों में मारवाड़ को मरू प्रदेश, मरूकान्तर आदि नामों से संबोधित किया गया है। इसका कारण है जल के अभाव वाला प्रदेश रहा है। नदी नालों का यहाँ प्रायः अभाव रहा है। कम वर्षा के कारण इस प्रदेश के भूमिगत जल के प्रति 'सस्ता खून व मँहगा पानी' की लोकोक्ति प्रचलित है।[4]

मारवाड़ में जल का क्या महत्व रहा है यह तो यहां के लोग और पीढ़ियों से चली आ रही परम्पराओं से ही जाना जा सकता है। वह परम्परा है जल की बूंद–बूंद को सहेज कर रखने की रही है। इस कार्य के लिये सबसे महत्वपूर्ण हैं यहां के कुँए, बावड़ियाँ, तालाब, झालरे, बाँध, कुँड, और टांके व नाडियां, तलाई, सर, सरोवर, झीलें और खडीन[5] इस प्रकार प्राचीन काल में पीने की समस्या सदैव रही है। अतः जलाशयों का बड़ा महत्व रहा है।[6] जोधपुर शहर में अनेक जल स्थलों का निर्माण यहाँ के शासकों और नागरिकों द्वारा करवाया गया जिनकी संख्या असंख्य है, आज जो कुछ स्मारक बचे हैं उन्हें बचाकर रखना अत्यन्त आवश्यक है।[7] जोधपुर नगर में अनेक जल स्रोतों न केवल स्थापत्य कला के बेजाड़ नमूने हैं अपितु अपने गौरवमय अतीत से जुड़े ये जलाशय सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक भी है। नगर में सौ से भी अधिक सर, सागर समंद, तालाब, कुँए, बावड़ियाँ एवं झालरें बने हुए हैं। इनमें से बीस से अधिक ऐसे है जो आज भी अपने वैभव को बरकरार रखे हैं।[8]

मारवाड़ और जोधपुर के पुरखे पानी का मोल जानते थे। जोधपुर की स्थापना के समय प्रकृति से विरासत में कुछ नहीं मिला था। कोई बारहमासी या निरन्तर बहती नदी भी नहीं थी अकाल ज्यादा और बरसात कम जोधपुर की आस–पास की पहाड़ियों पर गिरने वाली बारिश की हर बूंद का संग्रहण कर मोहल्ले–मोहल्ले तक पहुंचाने के लिये जो प्राकृतिक और निर्मित जलाशयों का तंत्र बनाया, उसने बंजर जमीन पर बसाए गये जोधपुर को जल समृद्ध बना दिया।[9] साधारण तथा प्राकृतिक पहाड़ियों से घिरे स्थान को 'तालाब' कहते है। जहाँ जल संग्रहीत होता है। प्रत्येक

'तालाब' के लिये एक आगोर की आवश्यकता होती है। जिसके द्वारा पहाड़ियों एवं स्वाभाविक ढलान द्वारा तालाब में पहुंच सकें।[10]

राजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र एवं उत्तराधिकारी महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) का राज्याभिषेक विक्रम संवत 1695 में जोधपुर (मारवाड़) की राजगद्दी पर हुआ। इनके शासन काल में जोधपुर गढ़, जोधपुर शहर में तथा अन्यत्र कई निर्माण कार्य इनके द्वारा तथा इनके सानिध्य एवं प्रभाव से हुवे।[11] महाराजा जसन्वत सिंह (प्रथम) के समय कई उद्यानों तथा तालाब आदि का निर्माण हुआ। उसकी राणी अतिरंगदे ने 'जान सागर' बनवाया जो 'सिखावत जी का तालाब' भी कहलाता है। कछवाहा अतिरंगदे, बूँदी के हाड़ा राव राजा रत्नसिंह की दोहिती थी।[12] यह तालाब वर्तमान में रसाला रोड़ से जयपुर जाने वाले मार्ग पर स्थित है।[13]

महाराजा जसवन्त सिंह जी (प्रथम) की चौथी रानी शेखावत जी अतिरंगदे, जिनका पीहर का नाम जसमादे था तथा जो खंडेला के राजा द्वारकादास गिरधरोत की पुत्री थी ने यह तालाब बनवाया था। यह तालाब 'सरदार रसाला' के पास स्थित है। महारानी अतिरंगदे का जन्म वि.स. 1691 भादवा वद 6 को हुआ था तथा उनका विवाह संवत् 1707 ज्येष्ठ सुदी 8 को महाराजा जसवन्तसिंह जी के साथ खंडेला में सम्पन्न हुआ था। उन्हीं के गर्भ से संवत् 1709 आसाढ़ सुदी 5 गुरूवार के दिन महाराजा कुमार पृथ्वीसिंह का जन्म हुआ[14] महाराजा कंवार श्री पृथ्वीसिंह जी रो जन्म हुओ सं. 1709 आसाढ़ सुद 5 गुरू हुवौ।[15] जिनका संवत् 1724 ज्येष्ठ वदी 11 के दिन दिल्ली में परलोक गमन हुआ क्योंकि उन्हे धोखे से विष से सने हुए कपड़े धारण करवाये गये जो उनकी मृत्यु का कारण बना।[16]

विगत में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया हैः– ''शेखावत रो तालाब कछवाही अतरंगदेजी खडैला री, माहाराज श्री जसवन्तसिंह जी री राणी करायौ। कंवर जी श्री प्रिरथी सिंघ जी री माता ने इंणा तालाब री प्रतिसटा करी। तद बड़ो भारी उछब कियो। श्री हजुर रणवास सेत अठै पधारीयां छै । के दिन रहा छै ने नोरा सु गोठां जीमण सारा राज में हुवा छै के कवेसुरा इण भाव रा गीत कवत् मालम कराया त्यां में निरां सुं निवाजसां हुई थी। सं. 1730 में पैहला इण ठौड़ सांहणी नाडिया जती रातै–नाडो ही इण हीज मुजब सारा उछब हुवा छै ने इण तालाब रो नांव जान सागर है।[17]

बाँकी दासरी ख्यात में इसका उल्लेख बहुत सही तरीके से है– ''सेखावत जी खंडेलारा अतरंगदे सासरारो नांव, जानकंवर बाई पीहर रो नांव, राजा वरसिंघ, दुवारदासोत री बेटी महाराज जसवन्तसिंह जी री राजलोक, कंवर प्रथीसिंघ जी रा मां, ज्यां तालाब रवणायों, बंधाय नांव ज्ञान सागर कोई लोग सेखावत जी रो तलाब कहै।''[18]

संभवतः यह तालाब सन् 1638–1678 ई. के दरम्यान बना होगा।[19] तीन ओर पहाड़ियों से घिरा यह तालाब लगभग एक हजार वर्ग फुट क्षेत्र में फैला है ओर लगभग 20 वर्ग फुट गहरा है। इस तालाब के किनारे राजा जसवन्तसिंह ने एक भव्य महल का निर्माण करवाया था जिसमें राजा और रानियां वर्षा के दिनों में रहते थे। तालाब के चारों तरफ लाल पत्थरों की दीवारें तथा तीन ओर सीढियां बनी हुई है। इस तालाब के पास एक बावड़ी है। वर्षा के दिनों में जब तालाब सूख जाता था तब बावड़ी का पानी काम में आता था।[20] वर्तमान में तालाब तो मौजूद है लेकिन इसके पानी की आवक बंद हो गई है। इसके आगोर में आर्मी वाले अफसरों का मैस बना है।[21] यहाँ हनुमान जी एक प्रतिष्ठित मन्दिर है। कहा जाता है कि मन्दिर में पवन पुत्र हनुमान जी विग्रह महाराजा विजयसिंह ने स्थापित किया था। राम, लक्ष्मण एवं जानकी की प्राचीन मूर्तियों के अतिरिक्त एक पुराना भारी भरकम एवं काले रंग का शिवलिंग भी दर्शनीय है। एक पुरानी छोटी और जीर्ण शीर्ण छतरी भी मन्दिर के एक कोने पर तालाब के किनारे पर देखी जा सकती है, जिस पर अब कोई शिलालेख नहीं है। कुछ वर्ष पूर्ण यहां बालाजी सत्संग भवन भी बनाया गया है।[22] वैसे तो पूरा सप्ताह ही मन्दिर में दर्शनार्थियों का आना–जाना लगा रहता है। पर विशेष रूप से मंगलवार, शनिवार को सुन्दकाण्ड पाठ, हनुमान चालीसा का पाठ होता है। अनेक भक्त अपनी मनोकामना पूरी होने पर मंगलवार, शनिवार को सवामणी का आयोजन रखते है। मन्दिर से तालाब का दृश्य अत्यन्त ही विंहगम दिखाई देता है।[23]

पूर्व में यहां पर साहणी नादिया था तथा एक ऋषि यहां पर तपस्या करता था इसका नाम ज्ञान सागर रखा गया था। लेकिन यह तालाब सेखावत जी के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है।[24] शेखावत जी का तालाब जोधपुर में बड़ा प्रसिद्ध रहा है। जोधपुर के शासक जब भी युद्ध अभियानों में जाते या वापिस लौट कर आते तब

ज्यादातर इस तालाब पर ही इनका डेरा होता था।[25] वि. सं. 1793 में महाराजा विजय सिंह जी के स्वर्गवास के बाद महाराजा जालमसिंह और मानसिंह जी इस तालाब पर डेरा डालकर रूके थे। महाराजा तखतसिंह जी के समय सन् 1843 ई. में कोटा के महारावल रामसिंह जी जोधपुर आये तब उनकी आगवानी इसी तालाब पर हुई थी। कई राजाओं की बारातों की आगवानी और विदाई भी यहाँ से हुई।[26] महाराजा तखतसिंह की पुत्रियों का विवाह जयपुर महाराजा रामसिंह जी के साथ किया गया तब जयपुर वालों की बारात का डेरा भी इसी तालाब पर किया गया था। तालाबों पर अनेक घटनाएं समय-समय पर घटित हुई जो इतिहास में अपना एक अलग ही महत्व रखती है और जल के महत्व पर प्रकाश डालती है।[27]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *तँवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, मारवाड़ का पुरातत्व और स्थापत्य, 2018 राजस्थानी ग्रन्थागार, पृ. 37*
2. *मुहणोत नैणसी की ख्यात, द्वितीय खण्ड, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश (रामनारायण डूंगड अनुवादक), पृ. 104, मुंहता नैणसी री ख्यात भाग-3 ग्रन्थांक-72 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. 12*
3. *गहलोत, जगदीश सिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, महाराजा पुस्तक प्रकाश मेहरानगढ़ म्युजियम ट्रस्ट जोधपुर, पुनर्मुद्रणः 12 मई 1991 पृ. 03*
4. *नगर,, डॉ. कुं महेन्द्रसिंह, मारवाड़ की जल संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, INTACH, 2011 पृ. 12*
5. *तँवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, उपर्युक्त, पृ. 14-15*
6. *गहलोत, सुखवीर सिंह, जोधपुर राज्य का सांस्कृतिक वैभव, राजस्थानी ग्रन्थागार, (1996) पृ. 54*
7. *तँवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, पूर्वोक्त, पृ.-15-16*
8. *वहीं, पृ. 17-18*
9. *राजस्थान पत्रिका जोधपुर - प्रख्यात आर्किटेक्ट अनु मृदुल का आलेख, तिथि- सात मार्च 2020*
10. *नगर, डॉ. कुं. महेन्द्रसिंह, राजस्थान इतिहास तथा संस्कृति की झलकियाँ महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र 2007, पृ. 238*
11. *नगर, डॉ. कुं. महेन्द्रसिंह मारवाड़ की जल संस्कृति राजस्थानी ग्रन्थागार, 2011, पृ. 431*
12. *ओझा, गोरी शंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य का इतिहास भाग-1, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2018 पृ. 310-311*
13. *तँवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, पूर्वोक्त, पृ. 431*
14. *नगर, डॉ. कुं महेन्द्रसिंह, राजस्थान का इतिहास तथा संस्कृति की झलकियाँ, पूर्वोक्त, पृ. 213-14*
15. *जोधपुर राज्य की दस्तूर बही-डॉ. विक्रम सिंह राठौड़, पृ. 45*
16. *नगर, डॉ. कुं महेन्द्रसिंह, राजस्थान का इतिहास तथा संस्कृति की झलकियाँ, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, शोध केन्द्र पृ. 213-14*
17. *मारवाड़ रा परगना री विगत-प्रथम भाग, ग्रन्थांक 101, पृ. 583*
18. *बाँकी दास री ख्यात, पूर्वोक्त, पृ. 34*
19. *तंवर, डॉ. महेन्द्रसिंह पूर्वोक्त, पृ. 431*
20. *गुप्ता, डॉ. मोहन लाल, जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी, ग्रन्थागार, 2019, पृ. 116*
21. *तंवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, पूर्वोक्त, पृ. 431*
22. *गुप्ता, डॉ. मोहन लाल, पूर्वोक्त, पृ. 116*
23. *लेखिका के स्वयं के द्वारा निरीक्षण (भौतिक)*
24. *तँवर, डॉ. महेन्द्र सिंह, उपर्युक्त, पृ. 431*
25. *नगर, डॉ. महेन्द्रसिंह, मारवाड़ की जल संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2011, पृ. 92*
26. *तंवर, डॉ. महेन्द्रसिंह, पूर्वोक्त, पृ. 431*
27. *नगर, डॉ. कुंवर महेन्द्रसिंह-मारवाड़ की जल संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, 2011 पृ. 92*

जीवन बीमाः एक परिचय

डॉ. भावना रानी
प्राचार्या, आई.पी.एस.आर. लॉ कॉलेज, निवाली, रामगढ, अलवर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बीमा आधुनिक युग की एक महान उपलब्धि है। प्रत्येक व्यक्ति इससे अच्छी तरह परिचित है। आज व्यक्ति इसे जीवन का सुरक्षा कवच मानता है। मानव हमेशा से ही सुरक्षा के प्रयास करता रहा है। उसने अनिश्चिताओं से मुक्ति पाने के अनेक उपाय खोजे है। मानव जीवन अनेक खतरों से भरा हुआ है। कोई नहीं जानता कब क्या हो जाए ? इन्हीं अनिश्चितता से भरे अपने जीवन को समस्त खतरों व संकटों से बचाने के लिए सुरक्षा व मुक्ति का मार्ग खोजता है।डॉक्टर लेविस ने कहा है कि बीमा इस आधारभूत नियम को बल देता है कि जो व्यक्ति मानवता की सर्वोत्तम सेवा करता है वह अपने आपकी सेवा करता है। क्योंकि धर्म का यह स्वर्णिम नियम है कि एक दूसरे का भार वहन करो। बीमा की उत्पत्ति और प्रारंभिक इतिहास का कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, परंतु फिर भी यह माना जाता है की बीमा का विकास प्राचीन काल में ही हो गया था। क्योंकि मनु और हम्मुराबी के ग्रथों में भी एक ऋण प्रणाली का उल्लेख है जो बीमा के लक्षणों से बहुत मिलता है। लेकिन आधुनिक युग में बीमे का प्रारम्भ 13वीं शताब्दी से हुआ माना जाता है। विकास के क्रम में समुद्री तथा अग्नि बीमा के पश्चात् जीवन बीमा का नम्बर आता है। इसके विकास का श्रेय इंग्लैण्ड को ही है, जहाँ 1583 मे लंदन के विलियम्स का प्रथम बीमा किया गया था। जिसकी अवधि एक वर्ष की थी। इस बीमा की विषय वस्तु मानव जीवन है। भारत मे जीवन बीमा का प्रादुर्भाव 1818 में प्रारंभ हुआ जब अंग्रेजों ने कलकत्ता मे एक जीवन बीमा कम्पनी स्थापित की।यह कम्पनियाँ केवल अंग्रेजों का ही बीमा करती थी। तत्पश्चात् 1874 में 'दी ओरियेन्टस लाइफ इन्श्योरेन्स कं. लि. की स्थापना हुई। सन् 1956 मे जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण हुआ उस समय भारत में 245 कम्पनियाँ कार्य कर रही थी। 01सितम्बर 1956 से भारतीय जीवन बीमा निगम ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था।वर्तमान समय मे जीवन बीमा निगम का कार्य जोर-शोर से दिन-प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर है।

संकेताक्षर : *अनिश्चितता, सर्वोत्तम, स्वर्णिम, इन्श्योरेन्स, राष्ट्रीयकरण।*

प्रारम्भ में बीमा व्यवसाय में तीन प्रकार के बीमा समुद्री बीमा, अग्नि बीमा व जीवन बीमा प्रचलित थे और बीमा व्यवसाय में कोई भी स्पष्ट विभाजन नहीं था। बाद में जैसे-जैसे बीमा व्यवसाय में वृद्धि होती गई, बीमित जोखिमों के विभिन्न प्रकारों के अनुसार बीमा व्यवसाय भी विभाजित हुआ। जब भारत में बीमा अधिनियम, 1938 अधिनियमित हुआ तब बीमा व्यवसाय से संबंधित विधि को समेकित करने के प्रयोजनार्थ अनेक उपबंध किये गये और इस प्रक्रम में विभिन्न प्रकार के बीमा व्यवसायों को परिभाषित करते हुए सम्पूर्ण बीमा व्यवसाय को दो भागों में विभाजित कर दिया।

1. साधारण बीमा व्यवसाय

2. जीवन बीमा व्यवसाय

साधारण बीमा में समुद्री, अग्नि एवं विविध बीमा व्यवसाय को रखा गया और जीवन बीमा व्यवसाय में केवल मानव प्राणी के जीवन को रखा गया। वर्ष 1956 में एक संसदीय अधिनियम द्वारा भारत में जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस तरह 1956 में राष्ट्रीयकरण की घोषणा के पश्चात् जीवन बीमा व्यवसाय में राजकीय क्षेत्र का एकाधिकार हो गया। परन्तु अब जीवन बीमा निगम अधिनियम में संशोधन कर इस अधिकार को समाप्त कर दिया

गया है। अब भारतीय जीवन बीमा निगम के अलावा अन्य कम्पनियां भी बीमा व्यवसाय के क्षेत्र में उतर रही है।

हमारे देश में सर्वप्रथम सुव्यवस्थित ढंग से सन् 1871 में बाम्बे म्युचुअल लाईफ इन्श्योरेन्स सोसायटी और सन् 1874 में ओरियण्टल गवर्नमेन्ट सिक्योरिटी लाईफ इन्श्योरेन्स कम्पनी की स्थापना की गई थी। सन् 1912 से पहले बीमा व्यवसाय संबंधी कैंई अधिनियम नहीं था। 1912 में बीमा अधिनियम पारित हुआ जिसके अन्तर्गत जीवन बीमा कम्पनियों के कार्यकलापों को नियंत्रित करने की व्यवस्था की गई थी। सन् 1927 में भारतीय जीवन बीमा निगम कार्यालय का संघ बना। सन् 1938 में केन्द्रीय सरकार ने बीमा अधिनियम पास करके इन्श्योरेन्स विभाग की स्थापना की। सन् 1950 में बीमा अधिनियम में व्यापक संशोधन किये गये। 1955 तक बीमा के 100 ऑफिसों में से 51 ऑफिस बंद हो गये, केवल दो कम्पनियां स्थापित हुई और गला घोट प्रतियोगिता समाप्त हो गई।

जीवन बीमा की परिभाषा

जीवन बीमा में केवल व्यक्ति का बीमा किया जाता है। एक व्यक्ति चाहे जितनी रकम का बीमा करवा सकता है। इसमें बीमा कराने वाला व्यक्ति बीमा पत्र के बदले एक निश्चित धन राशि निश्चित अवधि तक देता रहता है जिसे प्रीमियम कहते है तथा बीमा कम्पनी अवधि की समाप्ति व मृत्यु पर निश्चित रकम देने का वचन देती है। इस प्रकार जीवन बीमा में सुरक्षा तथा विनियोग दोनों तत्व विद्यमान होते है।

जीवन बीमा से संबंधित कुछ परिभाषायें निम्न है :–

इण्डियन स्टाम्प एक्ट की धारा 98(1) के अनुसार[1] ''जीवन बीमा पॉलिसी का तातपर्य किसी जीवन या जीवों या किसी घटना या आकस्मिकता जिसका संबंध किसी जीवन या जीवों से या उसके ऊपर निर्भरता से है, पर आधारित बीमा पॉलिसी से है, सिवाय उन पॉलिसियों को छोड़कर जो किसी व्यक्ति की मृत्यु केवल दुर्घटना या हिंसा या प्राकृतिक कारणों के अलावा किसी अन्य कारणों से होने पर भुगतान के लिये सहमत हुई है।''

बीमा अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, ''जीवन बीमा व्यवसाय से तात्पर्य उस व्यवसाय से है जिसके द्वारा मानवीय जीवन का बीमा सम्पन्न किया जाता है।

प्रो. आर. शर्मा के अनुसार, ''जीवन बीमा वह अनुबंध है जिसमें बीमादाता द्वारा एक प्रब्याजि के बदले जो एक मुश्त या आवधिक किश्तों में चुकायी गयी हो, बीमित व्यक्ति की मृत्यु होने पर या निश्चित अवधि समाप्त होने पर वार्षिक या निश्चित धनराशि देने को वचनबद्ध है।''

मैगी के शब्दों में, ''विस्तृत अर्थ में जीवन बीमा अनुबंध एक ऐसा ठहराव है जिसमें बीमाकर्ता बीमित की मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि के समाप्त होने पर एक निश्चित धनराशि निश्चित लाभार्थी को देने का वचन देता है।''

भारतीय जीवन बीमा निगम के अनुसार, ''जीवन बीमा एक अनुबंध है जिसमें एक विशेष घटना के घटित होने पर बीमित को अथवा उसके न होने पर उसके उत्तराधिकारियों को एक निश्चित धन राशि के भुगतान करने की व्यवस्था होती है।''

अतः उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जीवन बीमा एक ऐसा अनुबंध है, जिसके अन्तर्गत बीमा कम्पनी बीमित को प्रीमियम के बदले में बीमित की मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि समाप्त होने पर उसे या उसके द्वारा चुने उत्तराधिकारी को बीमा रकम देने का दायित्व ग्रहण करती है।

जासेफ बनाम इन्टीग्रीटी कार्पोरेशन[2] उपरोक्त वाद में न्यायालय ने जीवन बीमा अनुबंध को परिभाषित करते हुए कहा है कि बीमाकर्ता एक निश्चित धनराशि के बदले में बीमित को मृत्यु होने पर या एक निश्चित अवधि समाप्त होने पर उसे या उसके द्वारा चुने गये उत्तराधिकारियों को बीमित रकम देने का वचन देता है।

जीवन बीमा के आवश्यक तत्व

जीवन बीमा एक ऐसी संविदा है, जिसमें बीमादाता बीमादार को प्रीमियम के बदले में बीमादार की मृत्यु होने पर निश्चित अवधि बीतने पर बीमादार तथा उसके द्वारा नियत व्यक्ति को बीमित राशि देने का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। अतः जीवन बीमा एक संविदा है तथा इनमें संविदा के निम्न तत्वों का होना आवश्यक है :–

1. प्रस्ताव उचित रूप से होना चाहिये।
2. प्रस्ताव की स्वीकृति शर्तरहित होनी चाहिये।

   एल.आई.सी. बनाम अनम्मा[3] स्वीकृति तब ही पूर्ण मानी जाती है जब प्रस्ताव स्वीकृति देने वाले व्यक्ति के ज्ञान में आ जाये।

3. दोनों पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति होनी चाहिये।

बनारसी देवी बनाम न्यू इण्डिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड,[4] ''उपरोक्त वाद में न्यायालय ने विधि का यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि यदि कोई अनपढ़ व्यक्ति बीमा पॉलिसी लेता है तो हम उसे तब तक बाध्य नहीं कर सकते कि जब तक यह साबित न हो जाये कि उसे पॉलिसी में दी गई शर्तो का उसे ज्ञान था।

4. पक्षकार संविदा करने में सक्षम होने चाहिये।

मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष[5] उपरोक्त वाद में यह प्रतिपादित किया गया कि अव्यस्क व्यक्ति द्वारा की गई संविदा प्रारम्भ से ही शून्य होती है।

5. अनुबंध का उद्देश्य एवं प्रतिफल वैध होना चाहिये।

6. अनुबंध किसी कानून के अन्तर्गत व्यर्थ घोषित न हो।

संविदा विधि के साधारण नियमों के साथ–साथ जीवन बीमा संविदा में विशेष नियमों का पालन करना भी आवश्यक है :–

1. बीमा योग्य हित संबंधित नियम।
2. परम सद्विश्वास संबंधित नियम।

बीमा योग्य हित संबंधित नियम

भारत में जीवन बीमा के संबंध में ऐसा कोई अधिनियम नहीं बना है जिसमें ज्ञात हो कि जीवन बीमा संविदा में 'बीमायोग्य हित' कब होना चाहिये। इस संबंध में इंग्लैंड में लाइफ एंश्योरेंस एक्ट, 1774 बना था। उसी को भारत में अपना लिया गया है। इस एक्ट की धारा 1 के अनुसार बीमित जीवन में बीमायोग्य हित होना चाहिये। धारा 2 में दिया गया है कि बीमित जीवन का नाम होना चाहिए। धारा 3 के अनुसार बीमाधारक बीमित जीवन के हित के मूल्य की राशि से अधिक मूल्य नहीं प्राप्त कर सकेगा। इसका अर्थ गोडसल बनाम बोल्डेरो[6] के मामले में यह लगाया गया कि बीमा योग्य हित की आवश्यकता हानि के समय होती है अर्थात् बीमित जीवन की मृत्यु की तारीख पर। चूँकि इस मामले में ऋणदाता द्वारा अपने ऋणी के जीवन पर पॉलिसी ली गयी थी इसलिए इसे क्षतिपूर्ति की पॉलिसी माना गया। अगर धारा 3 में दी गयी भाषा का सही अर्थ लगाया जाये तो वह क्षतिपूर्ति बीमा में हुयी हानि को वसूलने की बात करता है।

हरियाणा राज्य उपभोक्ता संरक्षण आयोग द्वारा नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लि0 यू.सी. धमिन[7] के मामले में न्यायमूर्ति एस.एस. सन्धावालिया द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि वाद संबंधी बीमा के संदर्भ में यह तथ्य सुसंगत है कि बीमा पॉलिसी लेते समय मोटरगाड़ी का रजिस्ट्रेशन मालिक कौन था और यदि हानि के समय क्षतिपूर्ति का दावा करने वाला व्यक्ति बीमा करते समय वाहन का स्वामी नहीं था तब ऐसा व्यक्ति बीमा का लाभ नहीं ले सकता। दूसरे शब्दों में इस निर्णय के अनुसार बीमायोग्य हित बीमा कराते समय अैर हानि के समय (दोनो समय) होना आवश्यक है।

परम सद्विश्वास संबंधित नियम

बीमा की संविदा परम सद्विश्वास की संविदा होती है। इसमें एक विवक्षित शर्त होती है कि प्रस्तावक को वे सभी तात्विक तत्व जो वह जानता है, बीमा के प्रस्ताव में प्रकट कर देना चाहिये क्योंकि बीमाकर्ता उन तत्वों जो जीवन, स्वास्थ्य, आदत आदि से सम्बन्धित होते हैं, के आधार पर ही जोखिक का अनुमान लगाता है। बहुत से तथ्य ऐसे होते हैं विशेषकर वे जो जीवन स्वास्थ्य, आदत और उद्देश्य से सम्बन्धित होते हैं, केवल बीमाधारक ही जानता है और बीमाकर्ता उनको केवल तभी जान सकता है जब जीवन बीमाधारक ऐसी सूचनायें प्रकट कर दे। बहुत सी ऐसी बीमारियाँ होती हैं जिन्हें बीमाधारक परीक्षा करने वाले डॉक्टर से भी छुपा सकता है। उदाहरण के लिये यदि व्यक्ति हाईपरटेशन या डाइबिटीस से पीड़ित है और डॉक्टरी जाँच के दौरान दवा के द्वारा बीमा के लक्षणों को दबा दिया गया हो, तब डॉक्टर भी इन बीमारियों का पता नहीं चला सकता है। जबकि ये बीमारियाँ जीवन की प्रत्याशा को काफी प्रभावित करती है और इसलिये ये बीमाकर्ता के लिये तात्विक सूचनायें होती हैं। अगर ये प्रकट न की जायें तो ये बीमाकर्ता तथा बीमाधारकों के समुदाय को अलाभकारी स्थिति में रख सकती हैं।

श्रीमती दीपाश्री बनाम लाईफ इन्श्योरेंस कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया[8] के मामले के तथ्य तथा उसमें दिये गये निर्णय का अवलोकन कर सकते है जिसमें बीमा पॉलिसी के प्रस्ताव–प्रपत्र में बीमाधारक ने कहा था कि उसका स्वास्थ्य अच्छा है क्योंकि उसने प्रस्ताव प्रपत्र

प्रस्तुत करने की तिथि से पिछले पांच वर्षों के दौरान किसी चिकित्सक की सलाह नहीं ली थी और न ही वह पिछले दो वर्षों के दौरान स्वास्थ्य के आधार पर अपनी नौकरी में अनुपस्थित रहा। परन्तु मृतक के नियोक्ता द्वारा जारी प्रमाण पत्र ने यह प्रकट किया गया कि वह पॉलिसी लेने से पहले इन्फ्लूएन्जा, आँव, खूनी, बवासीर, बुखार आदि से पीड़ित था और उसने चिकित्सकीय प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके अपने कार्यालय से बीमारी का अवकाश लिया था। जीवन बीमा निगम ने इस प्रमाण पत्र पर विश्वास करते हुए दावा किया कि मृतक द्वारा प्रस्ताव–प्रपत्र में दिया गया कथन तात्विक तथ्यों का कपटपूर्ण छुपाव था और इसलिये पॉलिसी विखंडित कर दी गयी थी। इस कारण मृतक की विधवा द्वारा बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका प्रस्तुत की गयी। इन तथ्यों के आधार पर उच्च न्याालय द्वारा यह निर्णीत किया गया कि कुछ अवसरों पर छोटी–छोटी बीमारियों जैसे इन्फ्लुएन्जा, आंव, खूनी बवासीर और बुखार को प्रस्ताव–प्रपत्र में केवल प्रकट करने की असफलता को तात्विक तथ्यों के कपटपूर्ण छुपाव के रूप में नहीं माना जा सकता और इसलिये वर्तमान मामले के तथ्य भारतीय बीमा अधिनियम 1938 की धारा 45 के दूसरे भाग को आकर्षित नहीं करते। प्रमाण पत्र के आधार पर निगम द्वारा यह निष्कर्ष निकालने का कृत्य कि मृतक गम्भीर बीमारियों से पीड़ित था और उसके आधार पर संविदा का विखण्उन करना पूर्ण अवैध था।

इसके विपरीत वर्ष 1995 में राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग के समक्ष मेडीक्लेम पॉलिसी के अन्तर्गत उत्पन्न दावे के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्यों के प्रकट न किये जाने के परिणामों पर विचार किया गया।[9] बीमा कम्पनी का तर्क था कि श्री बोस ने अपनी पत्नी की अति–रक्तदाव की बीमारी को मेडीक्लेम पॉलिसी लेते समय प्रकट नहीं किया था। राष्ट्रीय आयोग ने अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य तथा तथ्यों पर विचार करते हुए यह मत प्रकट किया कि बीमाधारक द्वारा तात्विक तथ्यों को जान बूझकर छुपाया गया था क्योंकि बीमाधारक ने प्रस्ताव–प्रपत्र के प्रश्न संख्या 11 के उत्तर में जिसमें पिछले 12 माह के दौरान चिकित्सकीय ईलाज/शल्य–चिकित्सा का विवरण पूछा गया था ''नहीं'' लिखा था। इसलिये राष्ट्रीय आयोग ने कलकत्ता राज्य उपभोक्ता आयोग के निर्णय को अपास्त कर दिया।

यहाँ पर मध्य प्रदेश राज्य उपभोक्ता फोरम द्वारा निर्णित किये गये मेडिक्लेम से सम्बन्धित मामले का उल्लेख करना समीचीन होगा जिसमें अध्यक्ष **बी.एस. कोकजे**[10] ने माना कि ऐसे मामलों मे जहाँ स्वास्थ्य की दशा के बारे में घोषणा करनी होती है और यदि कोई अपने स्वास्थ्य के बारे में तात्विक तथ्यों को छुपाता है तो बीमा कम्पनी भुगतान करने से मना कर सकती है।

राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग द्वारा एक मामले में बीमाकर्ता को, जिसने मेडीक्लेम पॉलिसी जारी की गयी थी, यह कहकर बाईपास सर्जरी के व्ययों के भुगतान के दायित्व से बचने की अनुमति नहीं दी गयी कि बीमाधारक के सीने के दर्द के 10 वर्ष के इतिहास को प्रस्ताव–प्रपत्र में प्रकट नहीं किया गया था। बीमारी के इतिहास के बारे में केवल अस्पताल के डिस्चार्ज कार्ड से ही संकेत प्राप्त होता था। परिवादी ने इसका विरोध किया और इसलिये यह उसके विरूद्ध साक्ष्य के रूप में नहीं माना गया। चूंकि बीमाकर्ता के पास कोई अन्य साक्ष्य नहीं था अतः बीमाकर्ता को बचाव का कोई अधिकार नहीं मिला।[11] इस निर्णय के विपरीत राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिया गया एक दूसरा निर्णय अवलोकनीय है जहाँ पर बीमाकर्ता के पास इस बात का निर्णायक एवं अविवादित साक्ष्य था कि बीमाधारक दो वर्ष से एनजाइना से और चार वर्ष से प्रति–रक्तदाब से पीड़ित था, परन्तु बीमाधारक ने यह तथ्य मूल पॉलिसी लेते समय ही नहीं छुपाया था वरन् पॉलिसी के नवीनीकरण के समय भी छुपाया जिस कारण से बीमाधारक बाईपास सर्जरी में हुये व्ययों को क्षतिपूर्ति के रूप में वापस पाने का अधिकारी नहीं माना गया।[12]

जीवन बीमा कराने की विधि

भारतीय जीवन बीमा निगम ने प्रत्येक गांव, कस्बा, शहर व शाखाओं में जीवन बीमा कराने हेतु ग्राहकों को प्रोत्साहित करने के लिये बीमा अभिकर्ताओं को नियुक्त कर रखा है यह अभिकर्ता उन व्यक्तियों से सम्पर्क करते है जो बीमा कराने के इच्छुक है। बीमा एजेण्ट बीमा पॉलिसियों, प्रीमियम तथा बीमा की विभिन्न सुविधाओं की जानकारी देकर उसे बीमा कराने को प्रेरित करता है। जब कोई व्यक्ति जीवन बीमा कराने को तैयार हो जाता है तो उसे निम्न प्रक्रिया अपनानी होती हैः–

बीमा पत्र के प्रकार का चुनाव :– बीमा पत्र का चुनाव करते समय बीमा एजेण्ट से उसे विस्तार से समझ लेना चाहिये, फिर अपनी आवश्यकतानुसार बीमा पत्र का

चुनाव करना चाहिये। क्यैंकि जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न उद्देश्यैं एवं विभिन्न परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के लिए अलग-अलग प्रकार के बीमा पत्र है। अतः चुनाव सोच-समझकर किया जाना चाहिये।

प्रस्ताव पत्र भरकर निगम के समक्ष प्रस्तुत करनाः- प्रस्ताव पत्र निगम या एजेण्ट से प्राप्त किया जा सकता है। इसका कोई शुल्क देय नहीं होता। इस फार्म में कई प्रश्न होते है। जिनके उत्तर से बीमा कम्पनियों को महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती है। प्रस्ताव पत्र बीमा अनुबंध की आधारशिला है। अतः इसे सावधानीपूर्वक भरा जाना चाहिये। इसमें कोई भी गलत सूचना नहीं देनी चाहिये अन्यथा बीमा कम्पनी अनुबंध का खण्डन कर सकती है। विभिन्न बीमा पत्रों के लिये अलग-अलग प्रस्ताव पत्र होते है, क्योंकि बीमे की शर्त और सूचनाये अलग-अलग होती है। परंतु कुछ सूचनाएं ऐसी भी है जो सभी प्रकार के प्रस्ताव पत्रों में एक सी पायी जाती है, यह सूचनाएं निम्न है-

- प्रस्तावक का नाम
- वर्तमान व्यवसाय तथा इसका विवरण
- जन्म तिथि
- बीमा तालिका व अवधि
- संरक्षक की नियुक्ति
- विगत बीमा इतिहास
- सुरक्षा सेवा में नौकरी करने की इच्छा या सम्भावना
- बीमा का पूर्व तिथिकरण
- नामांकनष. बीमे का अभिप्राय
- प्रस्तावक द्वारा घोषणा करना ह. हस्ताक्षर और तिथि

व्यक्तिगत कथनः- प्रस्तावक को प्रस्ताव पत्र के अलावा एक फॉर्म भी भरना पड़ता है जिसे व्यक्तिगत कथन कहते है। इसमें प्रस्तावक अपने आचरण, स्वास्थ्य, पारिवारिक इतिहास आदि का विवरण देता है। इस फॉर्म में रोगो की एक लम्बी सूची होती है जिसके सामने प्रस्तावक को लिखना हैंता है कि उनमें से उसे कौन-कौन से रोग हो चुके है और उनके उपचार से संबंधित पूर्ण विवरण देना होता है।

आयु का प्रमाण पत्र देनाः- 20 वर्ष से कम और 50 वर्ष से अधिक आयु वाले प्रस्तावक कैं आयु सबंधित प्रमाण पत्र प्रस्ताव पत्र के साथ ही संलग्न करना होता है। 20 वर्ष से 50 वर्ष की आयु वाले व्यक्ति आयु प्रमाण पत्र कभी भी दे सकते है।

स्वास्थ्य परीक्षणः- बीमा कराने वाले को अपनी डाक्टरी परीक्षा करानी हैंती है। ऐसे बीमा प्रस्ताव जो डाक्टरी परीक्षण के आधार पर किये जाते है उनमें अधिकृत डॉक्टर से परीक्षण कराना अनिवार्य है। इस कार्य हेतु कम्पनी अपने डॉक्टर भी नियुक्त करती है यह डॉक्टर बीमा कराने वाले व्यक्ति की स्वास्थ्य की जांच कर एक निर्धारित प्रपत्र में रिपोर्ट अपनी राय के साथ निगम को देते है।

अभिकर्ता को फार्म सौपनाः- प्रस्ताव पत्र पर कार्यवाही करने के पश्चात् उसे एजेन्ट को सौंप दिया जाता है। जो इस फॉर्म की जाँच करता है और किसी प्रकार की कमी हो तो उसे पूरा करवाता है।

एजेण्ट की गोपनीय रिपोर्टः- बीमा एजेण्ट प्रस्ताव के संबंध में निगम को गुप्त रिपोर्ट देता है। इस रिपोर्ट में प्रस्ताव की वित्तिय स्थिति चरित्र आदि के संबंध मे जानकारी देता है। इसके अतिरिक्त एजेण्ट को यह बताना हैंता है कि वह बीमित को कितने दिनों से जानता है। प्रस्तावक की डॉक्टरी जांच होते समय एजेण्ट अपनी रिपोर्ट भरकर डॉक्टर को बंद लिफाफे में दे देता है ताकि डॉक्टरी रिपोर्ट के साथ-साथ एजेण्ट की रिपोर्ट भी कार्यालय में भेजी जा सके।

निगम द्वारा प्रस्ताव पर विचारः- उपरोक्त सभी कार्यवाहियां सम्पूर्ण हो जाने पर शाखा कार्यालय द्वारा इनकी जाँच की जाती है तथा पूर्ण रूप से संतुष्ट होने पर ही प्रस्ताव स्वीकृत किया जाता है, अन्यथा उसे रद्द कर दिया जाता है।

प्रस्ताव की स्वीकृतिः- यदि जांच करने के बाद प्रस्ताव पत्र में कोई कमी नहीं पायी जाती तो प्रस्ताव पत्र का पंजीयन कर लिया जाता है। पंजीयन में प्रस्तावक का नाम, पता, राशि, चिकित्सकों की कोड संख्या आदि कम्पनी के रजिस्टर में लिखी जाती है। इसके बाद प्रस्ताव अनुक्रमणिका कार्ड तथा प्रस्ताव पुनर्विलोकन कार्ड भी भरकर तैयार कर दिये जाते है। प्रस्ताव के साथ पुनर्विलोकन पर्ची पर विभिन्न सूचनाएं लिख कर लगा दी जाती है।

प्रथम प्रीमियम का भुगतान :- शाखा कार्यालय प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद प्रस्तावक को प्रथम प्रीमियम की राशि जमा करने को कहता है। प्रथम प्रीमियम का

भुगतान करने के बाद ही बीमा अनुबंध पूरा हो जाता है तथा बीमा कम्पनी का उत्तरदायित्व प्रारम्भ हो जाता है। प्रथम प्रीमियम पाने पर निगम एक रसीद प्रस्तावक के पास भेजता है जिसे प्रथम प्रीमियम रसीद कहते है। सामान्यतः प्रीमियम की पहली किश्त बीमा प्रस्ताव के साथ ही जमा करा दी जती है।

जोखिम का प्रारम्भ :– प्रथम प्रीमियम का भुगतान करते ही जोखिम प्रारम्भ हो जाता है।

प्रस्ताव पत्र की स्वीकृति की सूचनाः– जब शाखा कार्यालय द्वारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो प्रस्तावक को स्वीकृति पत्र भेज दिया जाता है तथा प्रस्तावक को बीमित शब्द से सम्बोधित किया जाता है और किसी कारण से प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जाता है तो प्रस्तावक को खेद पत्र भेज दिया जाता है तथा उसके द्वारा जमा प्रीमियम की राशि वपस लौटा की जाती है।

बीमा पॉलिसी तैयार करना और भेजनाः– प्रस्ताव पत्र स्वीकार कर लेने के बाद मण्डल कार्यालय उस पत्र को बीमा पत्र संख्या प्रदान करता है और उसके तुरन्त बाद बीमा पत्र की दो प्रतियां बनाकर रजिस्टर्ड डाक द्वारा एक प्रति बीमित को भेज दी जाती है तथा दूसरी प्रति अभिलेख शाखा को भेज दी जाती है। बीमा पत्र पर सरकारी टिकट लगाया जाता है तथा विभागीय मैनेजर तथा निगम का अधिकारी इस पर हस्ताक्षर करता है तथा इस पर जीवन बीमा निगम की मोहर लगाई जाती है।

जीवन बीमा का लाभ

बीमा व्यवसाय के अन्य बीमाओं की तुलना में जीवन बीमा यद्यपि नया है परन्तु आज इसने अपने महत्व को बहुत बढ़ा लिया है। बीमा के क्षेत्र में इसने अपनी जड़े बहुत दूर तक फैला ली है। जीवन बीमा व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य पॉलिसी धारको के आश्रितों को ऐसे समय के लिये धन प्राप्त कराना है जब पालिसी धारक की मृत्यु हो जाती है। **आर.एस. शर्मा**[13] के अनुसार, ''यह सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं की बहुत सी दशाओं को रोकने या ठीक करने में सहायता प्रदान करता है।'' जीवन बीमा के संबंध में **मिस्टर ब्रियान**[14] ने एक पत्र में लिखा कि, ''बीमा सबसे बड़ा आर्शीवाद है जो आधुनिक युग में मनुष्य को दिया गया है। यह आदमी को उस भयानक डर से कि कही उसकी मृत्यु के बाद उसके प्रियो को दूसरों की दया पर निर्भर न रहना पड़े पर विजय दिलाता है तथा उसको इस योग्य बनाता है कि वह अपने भविष्य को जिस रूप में चाहे प्रस्तुत कर सके। इस प्रकार वह वास्तविक रूप से मर कर भी जिन्दा हो जाता है।'' अतः जीवन बीमा कैं बुरे दिनों का सहारा एवं बुढापे की लाठी माना जाता है। जीवन बीमा से विभिन्न वर्गो को निम्न लाभ है :–

आर्थिक सुरक्षाः– यदि किसी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाती है और व्यक्ति ने जीवन बीमा ले रखा होता है तो उसके परिवार को बड़ी रकम मिल जाती है।

बच्चों की शिक्षा एवं विवाह की व्यवस्थाः– बच्चों की उच्च शिक्षा या कन्या के विवाह के लिये बीमा पॉलिसी लेकर व अपनी इच्छा की पूर्ति निश्चित होकर कर सकता है। जीवन बीमा निगम निश्चित समय आने पर शिक्षा के लिये किश्तों में तथा विवाह के लिये एक मुश्त रकम दे देती है और यदि इस बीच बीमादार की मृत्यु हो जाती है तो प्रीमियम नहीं देना पड़ता लेकिन नियत समय पर बीमा की रकम मिलती रहती है।

ऋण लेने की सुविधाः– बीमा करा लेने के पश्चात् बीमित की साख में वृद्धि हो जाती है। उसको जीवन बीमा पॉलिसी के आधार पर बीमा कम्पनियों से ही अथवा अन्य संस्थाअैं से आसानी से ऋण मिल जाता है।

वृद्धावस्था में भविष्य की सुरक्षाः– जीवन बीमा को बुढ़ापे की लाठी कहा जाता है। जीवन बीमा की पेंशन योजना बीमा धारक के बुढ़ापे को सुखमय बनाने में उपयोगी सिद्ध होती है।

पारिवारिक सुरक्षा प्रदान करनाः– जीवन बीमा मृत्योपरान्त पारिवारिक सुरक्षा प्रदान करता है। जीवन बीमा धारक को यह आश्वासन देता है कि उसके न रहने पर भी उसके परिवार के लोग असहाय और आश्रित नहीं रहेंगे, उन्हें आर्थिक संकट में सुरक्षा मिल जायेगी।

आयकर से छूटः– वर्तमान आयकर विभाग के अन्तर्गत जीवन बीमा के लिये दिये गये प्रीमियम पर आयकर से छूट मिलती है और यह छूट जीवन बीमा को धन संचय के लिये अन्य साधनों की तुलना में अधिक उपयोगी और आकर्षक बनाती है।

न्यायालय की कुर्की से मुक्तिः– जो जीवन बीमा परिवार के हित में कराया जाता है उस पालिसी को न्यायालय द्वारा कुर्क नहीं कराया जा सकता।

सम्पदा कर की व्यवस्थाः– जीवन बीमा से सम्पदा कर भी चुकाया जा सकता है। बहुधा सरकार अपने राजस्व के लिये सम्पदा कर भी लगाती है। यह सम्पदा कर मृतक की चल, अचल सम्पत्ति पर उत्तराधिकारी में बंटने से पहले ही वसूल लिया जाता है। अक्सर इसे अदा करने के लिये सम्पत्ति को बेचने का संकट उत्पन्न हो जाता है। इस संकट से सुरक्षा प्रदान करने के लिये जीवन बीमा का बड़ा महत्व है। सम्पत्ति का स्वामी एक निश्चित राशि का बीमा करा सकता है। जिससे उसकी मृत्यु होने पर बीमित राशि से सम्पदा कर चुकाया जा सके।

उद्योगो को आर्थिक सहायताः– बीमा कम्पनियों को प्रीमियम के रूप में जो रकम मिलती है उससे वह कम्पनियों के अंश व ऋण पत्र खरीदती है। इस प्रकार बीमा कम्पनियां उद्योग को आर्थिक सहायता पहुँचाती है साथ ही बैंक व अन्य व्यवसायिक संस्थानों को भी ऋण देती है जिससे उद्योगो को प्रोत्साहन मिलता है।

व्यवसायिक हितों की रक्षा करनाः– वास्तव में कुछ कम्पनियाँ अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिये एक या अधिक व्यक्तियों की कार्यक्षमता, तकनीकी ज्ञान, अनुभव व किसी योजना को तैयार कर उसे सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने की उनकी क्षमता पर निर्भर हो सकती है। तथा ऐसे व्यक्तियो की अकाल मृत्यु के कारण कम्पनियों की आमदनी में हानि हो सकती है। ऐसे प्रमुख व्यक्तियों की अकाल मृत्यु से कम्पनी को होने वाली हानि को उन व्यक्तियों का बीमा करा कर टाला जा सकता है।

सामूहिक बीमाः– आधुनिक युग मे कोई भी व्यवसायी या उद्योगपति सामूहिक जीवन बीमा पॉलिसी लेकर समस्त कर्मचारियों के जीवन का बीमा करा सकता है।

संकटकाल में सहायकः– रोग, बेकारी, वृद्धावस्था, दुर्धटना आदि कष्ट मनुष्य को समाज पर भार बना देता है, क्योकि समाज उनके निर्वाह के लिये या तो व्यक्तिगत दान देता है या सरकार उनकी सहायता करती है। यदि व्यक्ति का बीमा कराया होगा तो बीमा कम्पनी आर्थिक सहायता देकर समाज के भार कैं हल्का करती है।

राष्ट्र का विकासः– जनता बचत के लिये प्रेरित होती है और राष्ट्र की छोटी–2 बचते एक बड़ी धन राशि के रूप में राष्ट्र की उन्नति हेतु सरकार को प्राप्त होती है जिससे राष्ट्र का तीव्र गति से विकास होता है।

अतः स्पष्ट है कि जीवन बीमा एक अत्यन्त उपयोगी व्यवस्था है। अपनी महत्ता के कारण संसार के सभी देशों मे जीवन बीमा का प्रचार होता जा रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *इण्डियन स्टॉम एक्ट*
2. *1912, 2 सीएस 581*
3. *(1999) 3 Ker LT 142*
4. *AIR 1959, Pat 540.*
5. *30 Cal 539 (PC)*
6. *(1807) 9 ईस्ट 72*
7. *(1995) सी.पी.जे. 14 (हरियाणा)*
8. *ए.आई.आर. 1965 बॉम्बे, 192*
9. *यूनाटेड इण्डिया इंश्योरेस कम्पनी लि. बनाम बिमन कृष्ण घोष, 2 (1995) सी.पी.जे 62 (एन.सी.)*
10. *भारतीय जीवन बीमा निगम बनाम श्रीमती अम्नाबी (1995) सी.पी.जे. 37 (मध्यप्रदेश)*
11. *द्रोपदी देवी एस. चौधरी बनाम यूनाईटेड इण्डिया इंश्योरेंस क.लि. 1993 सी.पी.जे. 402 (एन.सी.)*
12. *नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी बनाम सुरेन्द्र लाल अरोडा 1 (1993) सी.पी.जे. 408 (एन.सी.)*
13. *Insurance principal practice P.No. 63*
14. *माननीय न्यायाधीश गजेन्द्र कुमार, हैण्ड बुक ऑफ इन्श्योरेन्स लॉज, संस्करण 3, पृ.सं. 10–11*

राजस्थान का तिलवाड़ा मेला – मालाणी के पशुओं के सन्दर्भ में

अचलाराम चौधरी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान की लोक संस्कृति में मेलों का अत्यधिक महत्व है। मेले अपने साथ बहुत अन्य कलाओं तथा सांस्कृतिक पहचान का अस्तित्व बनाये रखते हैं। मालाणी क्षेत्र के पराक्रमी एवं संत शासक मल्लीनाथ जी की स्मृति में लगने वाला तिलवाड़ा पशु मेला अपने आप में विशिष्ट है। इस मेले का संस्कृति के अस्तित्व को बनाये रखने के साथ ही मालाणी क्षेत्र के व्यापार एवं आर्थिक स्थिति को उन्नत करने में भी अत्यधिक योगदान रहा है। मल्लीनाथ जी आर्थिक समृद्धि प्रदान करने वाले देवता माने जाते हैं। इस मेले में भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से मेलार्थी आकर एकता एवं समभाव के सूत्र में बांध जाते हैं।

संकेताक्षर : *मल्लीनाथ, तिलवाड़ा, मालाणी, महेवा, मेला, घोड़े, ऊँट, लोक संस्कृति, धर्म, पशु आदि।*

राजस्थान की लोक संस्कृति का व्यापक स्वरुप ग्रामीण अंचल से लेकर शहरी क्षेत्र तक विस्तृत है। सम्पूर्ण भारत की तरह राजस्थान की लोक संस्कृति के मूल में धर्म रहा है परन्तु यहाँ की लोक संस्कृति को जो विशिष्ट बनाती है वो यहाँ की वीर संस्कृति है। मरुधरा की संस्कृति को वीरों ने अपने चरित्र, धर्म परायणता और आत्म बलिदान से इसे सींच कर पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित किया हैं यहाँ सनातन धर्म के देवी-देवताओं के पूजा के साथ ही लोक देवी-देवताओं को भी विशिष्ट स्थान दिया हैं यहाँ की लोकसंस्कृति का स्वरुप उनकी उत्पत्ति काल से चली आ रही लोकगाथाओं, लोककथाओं, लोकभजनों, लोकगीतों एवं लोकनाट्यों में वर्णित है इसके अतिरिक्त यहाँ के तीज-त्योहारों, रीति-रिवाजों, तीर्थों, धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं और मेलों में भी लोक संस्कृति दृष्टिगोचर होती हैं लोकसंस्कृति का विशुद्ध रूप राजस्थान के ग्रामीण अंचल में देखने को मिलता है क्योंकि लोक संस्कृति के उत्पत्ति केंद्र गाँव ही रहे हैं। ग्रामीण अंचलों में लोक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। कल्याणसिंह के अनुसार यहाँ के लोकदेवताओं में मल्लीनाथजी, रामदेव जी, पाबूजी, हड़बूजी, गोगाजी, तेजाजी, आवड़ माता, हिंगलाज माता, करणी माता, भटियाणी जी आदि लोकप्रिय देवताओं के मेलों का आयोजन किया जाता है।[1] इन मेलों का आयोजन उनकी स्मृति में, उन्हें सम्मान देने के लिए किया जाता है। इनमें से अधिकांश लोक देवी-देवता मध्यकाल में हुए। बाबा रामदेव जी, मल्लीनाथ जी, मेहाजी मांगलिया एवं हड़बूजी का आविर्भाव चोदहवीं शती में हुआ। इस काल में भारत मुस्लिम आक्रान्ताओं से त्रस्त था। राजस्थान भी इससे अछूता नहीं रहा। हिन्दू जातियों में छुआ-छूत का अधिक प्रभाव था। निम्न जातियों के लिए यह समय अत्यधिक कठिन था। ऐसे समय में समाज के उद्धार के लिए महान विभूतियों ने जन्म लिया। समाज में फैले ऊँच-नीच को समाप्त करने का प्रयास किया। सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना, धर्म एवं लोककल्याण हेतु अपने जीवन का सर्वस्व न्योछावर करने वाले वीर यहाँ के जन मानस में लोक देवता के रूप में स्थापित हो गए। यहाँ की ग्रामीण पृष्ठभूमि में प्रत्येक गाँव में इन महापुरुषों से सम्बंधित थान अथवा चबूतरे देखने को मिल जायेंगे जो यहाँ के लोक की दृढ एवं गहन आस्था के केंद्र हैं।

तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राठौड़ वंश के राव सीहा ने मरुस्थल में अपने राज्य की स्थापना कर खेड़ को अपनी राजधानी बनाया। सीहा के वंश में आठवीं पीढ़ी में राव तीडा हुए जिन्होंने महेवा को अपनी राजधानी बनाया।[2] राव तीडा के समय तक इनके राज्य के अधिकांश भाग पर मुस्लिमों का अधिकार हो चुका था। इस युग में भारत में

इस्लाम का प्रचार–प्रसार बहुत तेज गति से हो रहा था। मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा जबरन धर्म परिवर्तन करवाया जा रहा था। मुस्लिमों द्वारा मंदिर नष्ट कर हिन्दुओं की आस्था को चोट पहुंचाई जाती। ऐसे समय में राव तीडा के पौत्र एवं राव सलखा के पुत्र मल्लीनाथ हुए। नैनसी की ख्यात के अनुसार इनका जन्म एक योगी के आशीर्वाद से हुआ। इनका बचपन का नाम माला था। इनके पाटवी होने के समय उसी योगी ने इन्हें मल्लीनाथ नाम दिया तथा इनके पूर्वजों से चली आ रही राव की उपाधि को रावल में परिवर्तित कर दिया।[3] रावल मल्लीनाथ ने महेवा की राजगद्दी प्राप्त करते ही अपने बल एवं पराक्रम से बाह्य आक्रमणकारियों का दमन कर राठौड़ राजवंश की कीर्ति को पुनर्स्थापित किया। एतिहासिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि मल्लीनाथ ने अपने पराक्रम से मुस्लिमों की विशाल सेना को भी पराजित किया। इस संदर्भ में एक दोहा प्रसिद्ध है –

तेरह तुंगा भांजिया माले सलखाणी।

रावल मल्लीनाथ के दो विवाह हुए। उनकी दूसरी पत्नी रूपांदे की भक्ति से प्रभावित होकर रावल मल्लीनाथ भी उनके पंथ में दीक्षित हो गए एवं राजकार्य से विरक्त होकर भक्तिमार्ग पर चलने लगे।[4] मल्लीनाथ ने राजभोग को त्याग कर शेष जीवन असहाय वर्ग की पीड़ा को दूर करने में लगा दिया। तत्कालीन समाज में मल्लीनाथ की पहचान सुख–समृद्धि, मोक्ष प्रदाता, पशु रोग निवारक लोकदेवता के रूप में हुई। इनकी लोकप्रियता की जानकारी इससे स्पष्ट हो जाती है कि मारवाड़ के महेचा राठौड़ों के राज्य को इनके नाम पर ही मालाणी नाम दिया गया।[5] शासन कार्य के साथ आध्यात्मिक उत्थान हेतु पति–पत्नी ने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति में स्वयं को समर्पित कर दिया। मल्लीनाथ अपने युग के महान संतों में अग्रिम श्रेणी में स्थान रखते थे। राठौड़ राज्य में उनका बहुत अधिक प्रभाव था। राठौड़ राजवंश ही नही संभवतः इतिहास में ये प्रथम शासक हैं जो संत के रूप में विख्यात होकर लोक देवता के रूप में पूजे जाते हैं। रावल मल्लीनाथ अपने युग के महान संतों में अग्रिम स्थान में माने जाते हैं। इनके नाम पर विभिन्न स्थानों में ओरण बने हुए हैं। बीकानेर के कोलायत में खारिया मल्लीनाथ नाम से गाँव भी बसा हुआ है। यहाँ पर मल्लीनाथ का मंदिर भी बना हुआ है। गाँव में उनके नाम पर 1800 बीघा ओरण भूमि छोड़ी हुई है। यहाँ पर मल्लीनाथ के अनुयायी रात्रि जागरण करते है।[6] यह गाँव विश्नोई बाहुल्य क्षेत्र है। इस गाँव के लोग मानते है कि मल्लीनाथ जी की कृपा से उनका पशुधन सुरक्षित रहता है।

लूणी नदी के किनारे स्थित ग्राम बोरावास (तिलवाड़ा) बाड़मेर में मल्लीनाथ जी की समाधी स्थित है। यहाँ पर रेलवे स्टेशन के पास थान गाँव में मल्लीनाथ जी का भव्य मंदिर बना हुआ है। रावल मल्लीनाथ की स्मृति में थान गाँव और तिलवाड़ा के मध्य लूणी नदी के पाट में प्रत्येक वर्ष मेला लगता है। यह मेला चैत्र माह की कृष्ण पक्ष की एकादशी से प्रारम्भ होकर शुक्ल पक्ष की एकादशी तक चलता है।[7] इस मेले के प्रारम्भ को लेकर विभिन्न मत सामने आते हैं। उन्होंने अपने अंत समय सांस्कृतिक समन्वय हेतु सन् 1399 ई. में मारवाड़ के संतों को बुलाकर महेवा में एक विशाल हरि कीर्तन का आयोजन किया। इसमें साधु–संतों को अथाह दान दिया गया। इस हरिकीर्तन के पूर्ण होने पर लौटते समय प्रवासियों ने परम्परागत यातायात साधनों (ऊँट, घोड़ा, बैल आदि पशु) का क्रय–विक्रय किया।[8] तब से इस मेले की नीव पड़ी। जो कालान्तर में तिलवाड़ा पशु मेले से विख्यात हुआ। हुकुमसिंह भाटी के अनुसार राव चंद्रसेन और मोटा राजा उदयसिंह के मध्य संघर्ष चल रहा था। उस समय उदयसिंह ने रावल मल्लीनाथ की समाधी पर जाकर यह मन्नत मानी कि जोधपुर राज्य की गद्दी पर अगर उसका अधिकार हो जाता है तो वह यहाँ मेले का आयोजन करेगा। उदयसिंह की मन्नत पूरी हुई और उसने वि. सं. 1543 में महेवा के सिद्ध शासक मल्लीनाथ के नाम पर एक मेले का आयोजन किया।[9] उस समय से लेकर प्रतिवर्ष चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को यह मेला प्रारम्भ होता है।

यह मेला अपनी निम्न विशिष्टताओं के लिए प्रसिद्ध है–

- इस क्षेत्र में भूमिगत जल लवणयुक्त है। मेले के समय यहाँ लगभग डेढ़–दो हाथ की गहराई में स्वच्छ एवं मीठा पानी उपलब्ध हो जाता था। इस कारण मेले में पेयजल की कोई समस्या नहीं रहती थी। लोकमान्यताओं के अनुसार यह मल्लीनाथ जी के प्रभाव के कारण होता है।
- इस मेले में आकर्षण का प्रमुख केंद्र मालाणी एवं काठियावाड़ी नस्ल के घोड़े होते हैं। इसके अतिरिक्त कांकरेज व सांचौरी नस्ल का गो

वंश एवं मारवाड़ी नस्ल के ऊँट प्रसिद्ध है। व्यापारी इनको ऊँचे मूल्यों में खरीदते हैं। मेले के प्रारम्भिक वर्षों में केवल घोड़ों एवं ऊंटों का क्रय-विक्रय किया जाता था। मेले की लोकप्रियता बढ़ने के पश्चात् इसमे अन्य पशुओं की बिक्री भी होने लगी।

- यहाँ घुड़दौड़ प्रतियोगिताएं एवं ऊँट तथा बैल की प्रतियोगिताएं होती हैं जिसमे उचित पुरस्कार भी रखे जाते हैं।
- पशुओं के साज-सज्जा की सामग्री जो इस मेले में उपलब्ध होती है वह एक साथ कहीं और स्थान पर उपलब्ध नही होती।
- मेले के दिनों में यहाँ की रेत में चने पकाकर उसमें मखाणे मिलाकर बेचा जाता है जिसे मेलार्थी मल्लीनाथ का प्रसाद मान कर अपने घर ले जाते हैं।

इस मेले का प्रारम्भिक स्वरुप धार्मिक था। कालांतर में इसने पशु मेले के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली। यहाँ के घोड़े अपनी श्रेष्ठ गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं. मालाणी नस्ल के घोड़ों की उत्पत्ति कठियावाड़ी और सिन्धी नस्ल के घोड़ों के संकर प्रजनन से हुई है। ये घोड़े विशेष रूप से सिवाना में पाए जाते हैं। वर्तमान में घोड़ों की नस्ल सुधारने के लिए पशुपालन विभाग द्वारा अश्व विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है।[10] मालाणी शासकों द्वारा इस मेले में दुकानों की व्यवस्था सुनियोजित ढंग से जातिगत एवं वस्तुगत आधार पर वरीयता देकर की जाती थी। हुकुमसिंह भाटी ने अपनी पुस्तक में वहाँ की व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि सर्वप्रथम महेवा रावल का विशाल शामियाना लगाया जाता था और उसके चारों ओर सरदारों के तम्बू खींचे जाते थे। पास में ही महेवा राज्य का झंडा लगाया जाता था। शामियाने के मुख्य द्वार के ठीक सामने क्रमबद्ध दुकानें लगायी जाती थी। प्रथम पंक्ति में बालोतरा, जसोल, पचपदरा आदि के विसायती, पंसारी और मणिहारियों की दुकानें सजाई जाती थी। दूसरी पंक्ति में कोठिवालों की दुकाने लगायी जाती थी। बाजार के बायीं ओर बांस इत्यादि रखने के लिए खुला स्थान होता था और दायीं ओर पशुओं के लिए घास-चारा रखने के लिए स्थान सुरक्षित रखा जाता था। मुख्य बाजार से कुछ दूरी पर लुहार, कलाल, मोची, खटीक, कुम्हार आदि की दुकाने लगायी जाती थी।[11] कालान्तर में यह पशु मेले के रूप में ही जाना जाने लगा। वर्तमान में सबसे प्राचीन और विराट पशु मेले के रूप में इसकी पहचान होती है। मेले की समयावधि में मल्लीनाथ जी के मुख्य मंदिर में अखंड ज्योत जलती रहती है। इस मेले में राजस्थान की सम्पूर्ण लोकसंस्कृति को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकते हैं। यहाँ होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लोक कलाकारों द्वारा लोक नृत्य, लोक गीत, लोक भजन, लोक नाट्य आदि किये जाते हैं। दूरस्थ क्षेत्रों से लोग अपने-अपने क्षेत्र की हस्तशिल्प की तथा प्रसिद्ध वस्तुएं इस मेले में बेचने के लिए लेकर आते हैं। इस प्रकार इस मेले में एक ही समय में व्यापारिक एवं सांस्कृतिक मंच के दर्शन किये जा सकते हैं। सन् 1875 ई. में मारवाड़ शासक जसवंतसिंह द्वितीय के काल में विपणन हेतु 35400 पशु इस मेले में आये थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस मेले का आयोजन जसोल रावल द्वारा अपने अधीन कर लिया गया। उन्होने मेलार्थियों से शुल्क वसूलना भी प्रारम्भ कर दिया। मेले में आय अधिक होने लगी तो मारवाड़ के वित्त विभाग ने इसका प्रबंधन अपने अधीन कर लिया।[12] स्वतंत्रता के पश्चात् इस मेले के आयोजन का उत्तरदायित्व राजस्थान राज्य के पशुपालन विभाग ने ले लिया। वर्तमान में होने वाली घुड़दौड़, ऊँट तथा बैलों की प्रतियोगिता का आयोजन पशुपालन विभाग एवं अखिल भारतीय मारवाड़ अश्व संस्थान जोधपुर के संयुक्त तत्वाधान में किया जाता है। सन् 2012 ई. में इस मेले में आयोजित घुड़दौड़ प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले घोड़े के स्वामी को 11 हजार रूपये, स्वर्ण पदक एवं ट्रॉफी, द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले घोड़े के स्वामी को आठ हजार रूपये, रजत पदक तथा तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले घोड़े के स्वामी को पांच हजार रूपये एवं कांस्य पदक प्रदान करके सम्मानित किया गया था।[13] ग्रामीण लोगों को इस मेले में भागीदारी हेतु प्रोत्साहित किया जाता था। इसके लिए जोधपुर के राठौड़ शासकों की ओर से उन्नत नस्ल के पशुओं पर पुरस्कार प्रदान किया जाता था। ऊंटों व घोड़ों की दौड़ कराई जाती और पुरस्कार देकर ग्रामीण लोगों को सम्मानित किया जाता था।

सन् 1932 ई. के चैत्री मेले में पुरस्कार प्रदान करने का विज्ञापन जोधपुर राज्य की ओर से निकाला गया।

इश्तिहार रियासत जोधपुर[14]

मेला मवेशिया तिलवाड़ा, 1 अप्रैल 1932

दौड़ में भाग लेने वाले पशु	पुरस्कार		
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
कदमबाज बैल	25	20	15
हल के लायक बैल	25	20	15
बार बरदारी के बैल	25	20	15
सवारी के ऊँट	20	15	10
बारबरदारी के ऊँट	20	15	10
सांड, घोड़े	15	10	–
बच्चे कश घोड़िये	15	10	–
ऊँटों की दौड मयपिलान के	6	4	3
ऊँटों की दौड बिनापिलान के	6	4	3
तांगे के बैलों की दौड़	6	4	3

इस विशाल मेले में आने वाले सौदागरों तथा दलालों को निश्चित ही अच्छी आय प्राप्त होती होगी। तत्कालीन समय में पेशकशी का रिवाज होने से रावल को नजराना पेश किया जाता था। घोड़े पर एक रुपया, ऊँट पर आठ आने व बैल पर दो आने दिए जाने का प्रावधान रखा गया था। पशुधन और वस्तुओं की बिक्री पर कर लगता था। घोड़े पर स्थानीय व्यापारी से सवा पांच रूपये और राजस्थान से बाहर के व्यापारी से सवा छः रूपये लिया जाता था। ऊँट की बिक्री पर तीन रूपये और बैल पर डेढ़ रुपया लिया जाता था। इसी प्रकार भैंस पर आठ आना कर लगता था परन्तु भैंस के बच्चे पर कर नहीं लिया जाता था।[15] राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात, हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों के हजारों व्यापारी इस मेले में हजारों की संख्या में पशुओं को क्रय करते हैं। जोधपुर एवं बीकानेर संभाग का पशुधन यहाँ क्रय-विक्रय के लिए पहुँचता है। मेले के समय यहाँ एक प्रकार का छोटा सा शहर बस जाता है। यहाँ आये हुए दुकानदार यहीं पर अस्थायी निवास करते हैं।

इस मेले को मल्लीनाथ बाबा का मेला, चैत्री पशु मेला, तिलवाड़ा पशु मेला, एवं तिलवाड़ा चैत्री मेला के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में यह मेला लक्खी मेले के नाम से भी जाना जाता है। यह मेला धार्मिक एवं सामाजिक समन्वय, समरसता तथा एकता का परिचायक है। जो सभी धर्मों से परिपूर्ण समाज को एक सूत्र में बंधे रखने में सहयोगी सिद्ध होते हैं। यह राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष का सबसे विशाल पशु मेला है। यह मेला पशुधन गणना एवं उन्नत नस्ल के पशुओं के प्रचार की दृष्टि से उत्तम स्रोत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कल्याण सिंह शेखावत – राजस्थानी भाषा-साहित्य-संस्कृति, पृष 362, जोधपुर 1989ई.*
2. *डॉ. भँवरलाल भादानी – जसोल का इतिहास प्रथम भाग, संपादक ठाकुर नाहरसिंह जसोल, पृष्ठ 105, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2013*
3. *मुहणोत नेणसी – नैणसी की ख्यात भाग 3, पृ. 26-27, सं. बदरीप्रसाद साकरिया राजस्थान राज्याज्ञानुसार, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित वि.सं. 2020*
4. *मुहणोत नेणसी – नैणसी की ख्यात भाग 2, पृ. 285, सं. बदरीप्रसाद साकरिया राजस्थान राज्याज्ञानुसार, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित वि.सं. 2018*
5. *राजपुताना गजेटियर भाग 3 ए, 1909 ई. पृ. 199*
6. *डॉ. भँवरलाल भादानी – जसोल का इतिहास प्रथम भाग, संपादक ठाकुर नाहरसिंह जसोल, पृष्ठ 171, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2013*

7. मुहणोत नेणसी – नैणसी की ख्यात भाग 2, पृ. 285, सं. बदरीप्रसाद साकरिया राजस्थान राज्याज्ञानुसार, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित वि.सं. 2018
8. डॉ भंवर सिंह –राजस्थान के लोकदेवताओं का सांस्कृतिक इतिहास पृ. 72, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2018
9. डॉ. हुकुमसिह भाटी – महेचा राठौड़ों का मूल इतिहास पृ. 183, परिशिष्ट 3, रतन प्रकाशन, जोधपुर, 2001
10. डॉ. मोहनलाल गुप्ता – जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ – 325, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2019
11. डॉ. हुकुमसिह भाटी – महेचा राठौड़ों का मूल इतिहास पृ. 183, परिशिष्ट 3, रतन प्रकाशन, जोधपुर, 2001
12. डॉ भंवर सिंह –राजस्थान के लोकदेवताओं का सांस्कृतिक इतिहास पृ. 174, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2018
13. राजस्थान पत्रिका, बाड़मेर संस्करण, मेला अधिकारी डॉ बी आर जैदिया का साक्षात्कार, दिनांक 22 मार्च 2012
14. 12 फरवरी 1932 मारवाड़ गजट में प्रकाशित
15. डॉ. हुकुमसिह भाटी – महेचा राठौड़ों का मूल इतिहास पृ. 184, परिशिष्ट 3, रतन प्रकाशन, जोधपुर, 2001

स्वतंत्र समर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की भूमिका (बुन्देलखण्ड के विशेष सन्दर्भ में)

शत्रुघन कुमार खरे
शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर 1929 को कांग्रेस के लाहोर अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पारित किया गया। 26 जनवरी 1930 को प्रथम स्वाधीनता दिवस पूरे देश में मनाया जाने का निर्णय लिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पूर्व गांधी जी ने एक लेख प्रस्तुत कर बिट्रिस सरकार के समक्ष 11 सूत्री कार्यक्रम रखा। लेकिन ब्रिट्रिस सरकार ने इन मांगो पर कोई ध्यान नहीं दिया, तो महात्मा गांधी ने देशवासियों से आह्वान करके इस आंदोलन में सहयोग करने की अपील की। इस अपील से सारे देश में नमक बनाकर नमक कानून का उलंघन किया गया। ऐसे समय में वीर वसुंदरा बुन्देलखण्ड भला कैसे शांत रहती। बुन्देलखण्ड के सभी जनपदों ने नमक आंदोलन में बढ–चढकर भाग लिया। लाहौर कांग्रेस में बुन्देलखण्ड से भगवानदास बालेन्दु और श्रीपत सहांय के नेतृव्व में अनेक प्रधिनिधियों ने भाग लिया। लाहौर अधिवेशन से लोटे बुन्देलखण्ड के प्रतिनिधियों ने अपने अपने क्षेत्रों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दिया।

संकेताक्षर : *समक्ष, बसुन्धरा, अवज्ञा आश्रम, ईश्वर, सविनय, पुनः, यात्रा, माध्यम, नेतृत्व, प्रतिनिधि, प्रस्तुत।*

ब्रिट्रिश सरकार की उपेक्षा से आहत होकर महात्मा गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। इसके लिए महात्मा गांधी जी ने सावरमती आश्रम से दांडी तक पैदल यात्रा करके और वहां पहुंचकर नमक बनाकर कानून तोडकर आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। दांडी मार्च को प्रारंभ करने के पूर्व गांधी जी एक बार पुनः 2 मार्च 1930 को एक अंग्रज मित्र रेजीडेन्ट रेनाल्डे के माध्यम से माध्यम से सरकार के साथ समझौता करने का प्रयास किया लेकिन लार्ड वायसराय ने इस पर अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।[1]

5 मार्च 1930 को महात्मा गांधी जी ने सावरमती आश्रम वालों से कह दिया कि 12 मार्च 1930 ई. को प्रातः 06:30 पर दांडी तक पैदल यात्रा आरंभ होगी। साथ ही उन्होने कहा कि ईश्वर पर विश्वास और प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ गीता और कुरान की एक एक प्रति रखे। अतः महात्मा गांधी ने अपनी यात्रा 12 मार्च को अपने सावरमती आश्रम से प्रारम्भ कर 5 अप्रेल 1930 को दाण्डी पहुंचे एवं 6 अप्रेल 1930 को प्रातः काल की प्रार्थना के पश्चात समुद्र के किनारे पहुंचकर एक मुठठी नमक उठाकर नमक कानून को तोडा और सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत की।[2] गांधीजी के आवाह्न पर जब देश ने सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया तो सारे देश की सहभागिता रही जिसमें बुन्देखण्ड क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। सविनय अवज्ञा आंदोलन में महात्मा गांधी ने कुछ कार्यक्रम निर्धारित किए जो इस प्रकार है–

1. लोग गांव में नमक कानून को तोडें तथा नमक बनाऐं।
2. महिलाए शराब अफीम तथा विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दें।
3. विघार्थी सरकारी स्कूल तथा कालेज छोड दें।
4. राजकीय कर्मचारी दफतरों को त्याग दें।

ISSN 2277-5587

5. विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाए।
6. सरकार को कर न दें।
7. जनता चरखा चलाए और उससे बने कपडे खादी पहनें।

महात्मा गांधी ने 6 अप्रेल 1930 को नमक कानून तोडा उसी के परिणाम स्वरूप बुन्देखण्ड के लोगों में जन जागृति आ गई और नवीन चेतना का प्रसार हुआ।

महोबा जिले के महान स्वतंत्रता सेनानी भगवानदास बालेन्दु अडजरिया की विशेष सहभागिता रही। मार्च 1930 को भारत के प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री गणेश शंकर विघार्थी ने हमीरपुर और महोबा जनपद के सविनय अवज्ञा आंदोलन की कमान भगवानदास बालेन्दु जी को सौंप दी। इसी तारतम्य में एक गुप्त सभा का आयोजन महोबा जनपद के कुलपहाड तहसील में किया गया। जिसमें सत्याग्रह के विभिन्न मुददों पर वार्ता हुई।[3] भगवानदास बालेन्दु ने जनता में जनचेतना को जागृत करने के लिए एक सामांतर सरकार बनाने का प्रयास किया इसके लिए उन्होने जनता को संगठित करने का निश्चय किया और इसके लिए प्रयास भी करना प्रारंभ कर दिया। तथा थोडे समय के अंतराल के बाद इन्होनें एक संगठन बना डाला एवं संगठन के बैनर तले लोगों में फूट तथा विवादों का समाधान, लगान बंदी, शराब की दुकानों पर धरना, खादी का प्रचार प्रसार करना होता था। इसके अलावा नमक आंदोलन में हमीरपुर जनपद की प्रत्येक तहसील, कस्बों एवं गांवो से नमक कानून बनाने के लिए लोग जत्थों के रूप में महात्मा गांधी के गीत गााते हुए राठ में एकत्रित हुए तथा हजारों की संख्या में स्वयंसेवकों के आने पर शिविर में भोजन पानी की व्यवस्था कांगेस समिति ने राठ में की थी। इस जन आंदोलन से जनपद में एक बडा राजनीतिक तूफान आ गया। इससे पुलिस ने गांव गांव घूमकर झण्डा छुडाने व लोगों पर लाठी चार्ज करना शुरू कर दिया। इस नमक सत्यागृह की जिम्मेदारी कांग्रेस के दीवान शत्रुघन सिंह को सौंपी गई थी। पण्डित बैजनाथ तिवारी ने महोबा में नमक कानून का उलघंन किया। अतः नमक कानून के उलंघन में इन्हें 6 माह की सजा हुई। भगवानदास बालेन्दु ने कुलपहाड़ में नमक सत्यागृह किया और पुलिस अत्याचार का खुलकर विरोध किया। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं वाली कोई भी वस्तु पुलिस वालों को कुलपहाड में उपलब्ध नहीं हो पाती थी। इससे चिढ़कर पुलिस ने सभी सत्याग्रहियों को गिरफतार कर थाने में हथकडी डालकर नीम के पेड से बांधकर बुरी तरह पीटा। जिससे मुंशी सुन्दर लाल भंवर का सिर फट गया एवं भगवानदास बालेन्दु जी को गिरफतार कर 6 माह की करावास की सजा देकर हमीरपुर जेल भेज दिया गया।[4]

इसी समय रानी राजेन्द्र कुमारी ने राठ के अंग्रेजी शराबघरों एवं विदेशी कपडों की दुकानों पर धरना दिया तथा कुलपहाड आकर थाने पर कब्जा कर लिया। इस धरना प्रर्दशन को दबाने के लिए कई ट्रक से बाहरी पुलिस को कुलपहाड लाया गया। रानी राजेन्द्र कुमारी को गिरफतार कर नवजात शिशु के साथ 6 माह के लिए जेल भेज दिया गया। इसके अलावा चिरंजीलाल, बालगोविन्द, पल्टू नाई, अट्टा दउवा, पंचम वर्मा, ठाकुर प्रीतम सिंह, सुन्दर लाल भ्रमर को भी 6 साल की सजा हुई। हमीरपुर जेल सत्याग्रहियों से भर गई सत्याग्राहियों द्वारा जेल में सत्याग्रह करना शुरू कर दिया गया। स्वामी ब्रम्हानंद को कानपुर जेल भिजवा दिया गया तथा वहां पर उन पर भीषण अत्याचार किया गया, पेड से बांधकर उन्हें जब तक मारा गया जब तक वे मृत्यु समान वेहोश होकर लटक नहीं गए।

सन 1932 ई. में ग्राम वीरा में किसानों की एक विशाल सभा का आयोजन किया गया। बाबू वैघनाथ, मातादीन, सुखलाल नाई, परमलाल ने सभा का प्रबंध किया। इससे अंगेजी शासन द्वारा 50 लोगों को गिरफतार किया गया। इसी तरह नौरंगा ग्राम में किसानों की एक बडी सभा का आयोजन किया गया साथ ही ब्रिट्रिस सरकार को उखाड फैंकने का संकल्प लिया गया। इसी क्रम में जराखर गांव में भी एक सभा हुई इस सभा में पुरूषों के अलावा महिलाओं ने बढ़–चढ़कर सहभागिता की, पुलिस द्वारा सम्मेलन जाने पर रोक लगा दिए जाने से महिलाओं ने रण चण्डी का रूप धारण कर लिया। इन महिलाओं ने घरों के खप्परों से पुलिस को ऐसी मार मारी कि उन्हें गांव छोडकर भागना पडा। इस घटना से जराखर गांव को ब्रिटिस सरकार ने राजद्रोही गांव घोषित कर दिया।[5]

सविनय अवज्ञा आंदोलन का वातावरण तैयार करने के लिए नबम्बर 1929 में महात्मा गांधी जी, कस्तूरबा गांधी, सरोजनी नायडू इत्यादि लागों ने बांदा जनपद का दौरा किया और सविनय अवज्ञा आंदोलन का माहौल यहां पूर्ण रूप से तैयार था लेकिन इन्तजार आदेश मात्र की प्रतिक्षा का था।

महात्मा गांधी जी की दाण्डी यात्रा का प्रभाव बांदा

निवासियों पर पडा व 24 मार्च 1930 को बांदा में खादी भण्डार में एक मीटिंग का आयोजन किया गया इस सेवादल की मीटिंग में पं. लक्ष्मीरायण ने स्वयंसेवकों में जोश भरते हुए कहा था कि हम लोग पीछे की ओर पिछड रहे हैं। बांदा में कोई काम नहीं हो रहा है, हमें कम से कम 200 स्वयंसेवकों को आंदोलन के लिए तैयार होना चाहिए। 6 अप्रेल को गांधी जी दाण्डी पहुंच जाऐगें और नमक बनाना शुरू हो गाएगा एवं सत्याग्रह का श्रीगणेश हो जाएगा तथा यह कार्य यहां पर भी होना चाहिए।[6] श्री लक्ष्मीनारायण जी की इस जोश भरी गर्जना का बांदा की जनता पर सकारात्मक प्रभाव पडा एवं बांदा जनपद में हर प्रकार से आंदोलन की तैयारी होने लगी। यहां के लोगों ने सत्याग्रहियों को जन-धन-मन से सहायता की। इसके अलावा बांदा के नबाब तालाब पर स्वयंसेवकों के लिए एक शिविर तैयार किया गया। इसी कडी में भगवानदास नाई ने गिरवां ग्राम में आंदोलन की तैयारी शुरू कर दी।[7] बांदा जनपद के अन्य क्षेत्रों में यह आंदोलन तीव्र गति से लगातार चलता रहा। चित्रकूट के कर्वी के घुस मैदान में स्वयंसेवकों ने नमक बनाकर कानून तोडा तथा नारायणदास ने गांधी से प्रभावित होकर अपने सिलाई का कार्य छोड दिया। वह एक हडिया (मिटटी का पात्र) लेकर घुस के मैदान में पहुंचे और नमक बनाकर कानून का उलंघन किया। नारायणदास की इस गतिविधियों पर पुलिस नजर रखे हुए थी अतः पुलिस ने उन्हें गिरफतार कर उन पर भीषण अत्याचार किया तथा एक लात उनकी छाती पर मारी और वह इस चोट से जिंदगी भर पीडित रहे।

5 मई 1930 को महात्मा गांधी जी की गिरफतारी के विरोध में बांदा की जनता ने उग्र रूप धारण कर लिया। परिणामस्वरूप बांदा में हडतालें हुई एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान तथा बाजार बंद कर दिए गए।[8] बांदा पुलिस स्टेशन के सामने फूलचन्द्र की दुकान में विदेशी वस्त्रों की विक्री होती थी। विदेशी वस्त्रों को न बेचने के लिए फूलचन्द्र को स्वयंसेवकों द्वारा बार - बार समझाया गया लेकिन वह नहीं माना। फलतः फरवरी 1932 को बांदा की नारी शक्ति कमलादेवी पत्नि जगन्नाथ ने अपनी महिला टोली के साथ फूलचन्द्र की दुकान पर धरना दिया। जिससे अंगेजी पुलिस ने उन्हें बंदी बनाकर जेल में डाल दिया गया एवं उन्हें तीन माह की कैद एवं 50 रूपया जुर्माना की सजा हुई। अतः इन दोनों वीर महिलाओं ने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें एक माह की कैद में और रहना पडा।[9]

झॉसी जनपद में नमक सत्याग्रह 12 मार्च 1930 ई. को औपारा (चिरगांव) में करने का निश्चय हुआ इस आंदोलन में झॉसी के सत्याग्रही दो दिन पूर्व से ही एकत्रित होने लगे। पहला जत्था रघुनाथ विनायक घुलेकर झॉसी के नेतृत्व में बरूआसागर होकर चिरगॉव गए। जिसमें 70-75 सत्याग्रही शमिल थे। दूसरा जत्था सीताराम भास्कर भागवत के नेतृत्व में चला एवं तीसरा हिस्सा कुंजबिहारी लाल शिवसी के नेतृत्व में चला जिसमें 20-25 सत्याग्रही शमिल थे हर जगहों में सत्याग्रही, स्वयंसेवक हांथों में तिरंगा झण्डा लेकर गीत गाते तथा नारे लगाते हुए निकले जिनके स्वागत के लिए हर घरों में आटा रखने के डिब्बे रखे हुए थे।[10]

सभी सत्याग्रहियों में छूत-अछूत, हिन्दु-मुस्लिम का कोई भेद नहीं था। वे देशभक्ति के नारों में सराबोर थे। प्रमुख सत्याग्रहियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया तथा उन्हें भयंकर यातनाऐं दी गई तथा उन्हें प्रतानित करके छोड दिया गया। जब सत्याग्रह अंग्रेजी पुलिस की गिरफ्त से छूटकर आये तो उनके साहस और वीरता की सराहना की गई, उनके जेल प्रवास की जानकारी पाकर जनता के बीच में सत्याग्रह या किसी आन्दोलन में जेल जाने का भय हट गया। ललितपुर जनपद में पण्डित नन्दकिशोर व पण्डित बृजनन्दन किलेदार ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया। इस तारतम्य में उनके नेतृत्व में जुलूस निकाला गया। तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर शराब की दुकानों पर धरना दिया गया और तिरंगा झण्डा को फहराया गया।

पण्डित नन्दकिशोर व पण्डित बृजनन्दन किलेदार को भारतीय दण्ड संहिता सेक्शन 107 के तहत गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा हुई।[11]

इसके अलावा श्री बाबूलाल निगम ने भी सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। सन 1930 में नमक कानून का उलंघन करने पर इनको गिरफ्तार कर लिया गया और एक वर्ष के कारावास की सजा एवं 500 रू. का अर्थदण्ड लगाया गया। 1931 ई. में लगान बंदी में कछवाहों का नेतृत्व किया तथा इस आंदोलन को नई दिशा प्रदान की गई। अंग्रेज सरकार ने उन्हें पुनः गिरफ्तार करके आगरा जेल भेज दिया।[12] इसके अलावा उन्होने क्रांतीकारी विचारधारा से प्रभावित होकर चन्द्रशेखर आजाद का भरपूर सहयोग

किया। श्री बाबूलाल निगम ने डाक बंगले में अंगेज अधिकारी द्वारा तिरंगे झण्डे का अपमान करने पर निगम जी का खून खौल उठा और अंग्रेज अधिकारी की जमकर पिटाई कर दी इसी अपराध में निगम जी को पकडकर उन्हें कठोर यातनाऐं दी गई।[13]

महात्मागांधी के नमक सत्याग्रह से छतरपुर राज्य भी अछूता नही रहा यहां के लोगों ने नमक सत्याग्रह में बढ–चढकर हिस्सा लिया, इसी साथ ही छतरपुर में कर विरोधी आदोंलन ने गति पकड ली।

छतरपुर राज्य में कार्यकर्ताओं पर भीषण अत्याचार हो रहे थे एवं इसके विरोध में जल रही अग्नि ने बांदा, महोबा में महात्मा जी के आगमन ने अग्नि में घी का काम किया। महात्मा गांधी द्वारा आरंभ किये गए नमक आंदोलन का बुंदेलख्ण्ड की जनता पर व्यापक प्रभाव पडा। विद्रोह की तीव्रता को देखते हुए अंग्रेजी सरकार दृवारा समान्य जनता पर असहनीय कर लगा दिए गए। और इतना ही नहीं इन करों की वसूली के लिए बुन्देलख्ण्ड; छतरपुर की जनता को मुर्गा वनाया जाता था चारपाई पर लिटाकर मारा जाता था छाती पर पत्थर रखकर वसूली की जाती थी। इस कारण छतरपुर जनपद की जनता में अंग्रेजी सरकार के प्रति नफरत एवं असंतोष की भावना जन्म ले रही थी।[14] अतः इन अत्याचारो के विरोध में छतरपुर जनपद की जनता ने अगस्त 1930 ई. को उर्मिल नदी के तट पर एक सभा का आयोजन किया इस सभा में लोडी राजनगर, नौगांव, पलेरा, जतारा आदि के स्थानों के हजारों लोगो ने भाग लिया 20 दिसम्बर 1930 को गोली पाठक ने भी एक सभा का आयोजन किया तथा सभी लोगों को खादी पहनने का निर्देश दिये।

सन् 1930ई. के सविनय अवज्ञा आंन्दोलन के अंतर्गत छतरपुर जिले के कई ग्रामो मे नमक कानून का विरोध किया गया, मदरा, सिजवारा, कैमाहा, उरवारा, एवं ननौरा आदि के निवासियों ने नमक वनाकर इस कानून को अवहेलना की जिसके फलस्वरूप रामसहाय तिवारी को गिरफतार कर जेल में डाल दिया गया।[15] भू राजस्व का भुगतान न करने के विरोध मे आंदोलन और चला इस आंदोलन को तीव्र धार देने का कार्य।

रगौली के ठाकुर हीरासिंह तथा भुजवल सिंह ने किया। इस आन्दोलन ने शीघ्र ही छतरपुर जिले के कई भागों में अपने पैर जमा दिए। राजनगर, चंदला लुगासी, वक्सवाहा, खजुराहों में यह आन्दोलन फैल गया। राजनगर में आन्दोलित जनता पर अंग्रेजी सरकार द्वारा लाठी चार्ज करवाया गया जिसमें अनेक महिलाओं सहित कई पुरूष घायल हो गए। इस आन्दोलन के सर्वेसर्वा डहर्रा ग्राम निवासी पं सुखदेव एवं जगत सिंह प्रमुख थे।[16]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बुन्देलख्ण्ड के पन्ना जनपद का उल्लेख्य किया जाए तो यह स्वतन्त्रंता संग्राम आन्दलनों के लिए कम ही जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि यहां के शासक किसी भी जन आन्दोलन के अनुकरण काल में ही भनक कानों में पाते ही यहां के शासक कुशलता पूर्वक जन नेताओं से चर्चा कर एवं समझोता का मार्ग निकाल कर उसे शान्त कर देने के प्रयास कर लिया करते थे। तथापि पड़ौसी रियासतों में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलन एवं उत्तरदायी शासन हेतु आन्दोलन व तत्सम्बन्धी घोषणाओं व क्रियाकलापों के प्रभाव से उसकी गूंज पन्ना रियासत में यदा–कदा उठती रही।

जनवरी 1930 से जनवरी 1931 तक पूरे अजयगढ़ राज्य में सभाओं, झण्ड़ा जुलूसों, कर और लगान बंदी आन्दोलन का बहुत जोर शोर रहा। कुछ महत्वपूर्ण सभाओं का विवरण इस प्रकार है जनवरी 1930 में प्रथम ओपचारिक बैठक गोली पाठक के द्वारा द्वारकाप्रसाद के निवास पर तथा दूसरी गोला भड़िया हार में हुई जिसमें उपस्थित सभी लोगों से प्रतिज्ञाऐं करायी गई। दिसम्बर 1930 में श्याम पंडा में जो आम सभा हुई उसमें विधिवत झंड़ा गीत तबला हारमोनियम पर गाया। जिसमें प्रमुख अतिथि थे श्री दसपत सिंह व भगवान दास जी। इन सभी लोगों ने खादी पहनने, लगान न देने व राज्य में सबिनय अवज्ञा आन्दोलन में सहयोग करने पर विशेष जोर दिया।[17]

सम्पूर्ण देश की भॉति दमोह जनपद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। नमक कानून तोड़ने के बाद दुकानों तथा शराब की भट्टियों पर धरने दिए गए। जुलूस निकालना तथा सभा करना तों आम बात हो गई। ऐसी सभाओं के कारण पुलिस तथा जनता के बीच अनेक मुठभेड़े हुई। 9 जून 1930 ई पुलिस के दो सिपाहियों पर आक्रमण किया गया तथा पथराव किया गया। 29 जून और 26 जुलाई को भी पुलिस पर आक्रमण और पथराव हुआ। इन घटनाओं से वातावरण इतना अधिक उत्तेजना पूर्ण था कि छोटी से छोटी घटना से लोग भड़क उठते थे। 1 अगस्त 1930 को गोकुल चन्द्र सिंघई को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे जेल ले जाते समय महिलाओं

के एक बड़े जुलूस ने न्यालय में घेर लिया पुलिस महिलाओं को बड़ी मुश्किल से हटा पायी और गाड़ी आगे बड़ी। तथापि जेल के बाहर प्रदर्शन किया गया जिससें पुलिस ने लाठीचार्च किया। इग्लैण्ड में हुई गोलमेज कोंफ्रस में महात्मा गांधी के लोटने के बाद 4 जनवरी 1932 को फिर से गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना से जनपद दमोह में सविनय अवज्ञा का द्वितीय चरण शुरू हो गया किन्तु इस समय शासन सभी दंडात्मक कदम उठाने के लिए तैयार बैठा था।

महाकौशल कांग्रेस कमेटी तथा जिला कांग्रेस समितियों को अवैध घोषित कर दिया गया। एवं उत्पीड़न तथा बहिष्कार अध्यादेश (क्र पांच सन् 1932) भी जिले में लागू किया गया।

सन् 1930 ई में सागर में स्थान-स्थान पर अवैध ढ़ंग से नमक बनाकर लोगों ने सत्याग्रह किया साथ ही साथ जंगल सत्याग्रह भी चलाया। इस सत्याग्रह ने उग्र रूप धारण कर लिया। रमना, राहतगढ़, खुरई आदि स्थानों पर सत्याग्रहियों ने जोर-शोर से सविनय अवज्ञा आन्दोलन का पुरजोर समर्थन किया। विट्रिस सरकार ने आन्दोलनकारियों को बड़े पैमाने पर गिरफ्तार किया। अक्टूबर 1930 को सागर नगर एवं छावनी में एक प्रिविन्टिव इन्टिमिडेशन अध्यादेश जारी किया गया जिसका उद्देश्य इस आन्दोलन में छात्रों की भागीदारी को रोकना था। इस अध्यादेश का आपेक्षित प्रभाव न होते देख सरकार ने हाईस्कूल को अस्थाई रूप से बन्द कर दिया। स्थानीय डिस्ट्रिक्स काउसिंल की जिसने सिविल नाफरमानी आन्दोलन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। जुलाई अगस्त के महिनों में इस आन्दोलन को लेकर सागर व खुरई में पुलिस एवं आन्दोलनकारियों के बीच जेल ले जाते समय अनेक झड़पे हुई और जनता द्वारा पथराव किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सागर में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकेशन आर्मी की गतिविधियां भी तेजी से बढ़ी। इस आर्मी का एक प्रकोष्ठ सागर में स्थापित किया गया था, जिसमें अन्य प्रान्तों से हथियारों की आपूर्ति की जाती थी। 9 अगस्त 1931 को स्थानीय हाईस्कूल के मैदान में एक बम विस्फोट हुआ, जिसमें कोई भी जन-धन की हानि नहीं हुई।[18]

4 मार्च 1931 को गांधी इर्विन पैक्त के पास होते ही सागर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थागित कर दिया गया। इसी वर्ष सागर में तीन बड़े राजनीतिक सम्मेलन, महाकौशल राजनीतिक सम्मेलन, महाकौशल महिला सम्मेलन, तथा महाकौशल नवजवान भारत भारत सभा अधिवेशन सम्पन्न हुए।

महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद सागर में दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया गया। जून 1932 में सागर जिला पॉलिटिकल काफ्रेंस ने भावी कार्यक्रमों को निर्धारित ही था कि शासन द्वारा दमनचक्र चला दिया। सागर मध्य प्रान्त के नौ जिलों में से एक था, जिनपर अनएपल एसोशियन आर्डीनेन्स 1932 का चौथा लागू किया गया था। इसके क्रियान्वयन में महाकौशल कांग्रेस कमेटी को अवैध घोषित कर दिया गया। साथ ही सागर जिले को अधीसूचित क्षेत्र की सूची में डाल दिया गया। दि स्पेशल पावर आर्डीनेन्स लागू कर आन्दोलन को पूरी तरह कुचलने का प्रयास किया गया।[19]

निष्कर्ष

सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही साथ भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि को तैयार किया। तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बुन्देलखण्ड के जिलों ने भी अग्रणी भूमिका का निर्वाहन किया। यहां के बहुत से वीरो सेनानियों ने इस आन्दोलन महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा इन बीरों ने हंसते-हंसते पुलिस यातनाओं को झेला एवं इस आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि यहां की महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर इस आन्दोलन में सहभागिता की।

यद्यपि इस आन्दोलन को बिट्रिश सरकार ने दमन पूर्वक कुचल दिया तथापि इस आन्दोलन के दूरगामी परिणाम देखने को मिले।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. प्रभाकर माचवे, नमक आन्दोलन, नई दिल्ली प्रकाशन विभाग पृ. सं - 1-4*
2. *सुमन रामनाथ, उत्तर प्रदेश में गांधी जी, प्रकाशक सूचना विभाग लखनऊ 1969 पृ. से 150*
3. *पं द्वारिकेश मिश्र (सम्पादक) अनासक्त मनस्वी, पूर्व उद्धत पृ. सं 195*
4. *राष्ट्रगौरव - बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रा संग्राम पृ. सं 131 -37*

5. राष्ट्रगौरव – बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रा संग्राम पृ. सं –137
6. द्विवेदी चक्रधर – कामद क्रान्ति पृ. सं 129
7. वरूण दंगली प्रसाद – बांदा गजेटियर, प्रकाशक गर्वमेन्ट आंफ दि उ.प्र. लखनऊ 1981 पृ. सं 63
8. नागोली एस.एल. तथा नागौरी जीतेश – भारत का मुक्ति संग्राम भाग प्रकाशक राज पब्लिसिंग हाउस जयपुर प्रकाशन 1997 पृ. सं 221
9. राष्ट्रगौरव – बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ. सं 130
10. सामाजिक दायरा लेख – डॉ कृष्ण नन्द हुण्डैट पृ. सं–4
11. रजत नीराजला – डा. परशुराम भुक्ल पृ. सं– 17
12. भगवानदास माहौर – सेठ भगवानदास पृ. सं – 11
13. जैन दसरथ – विध्यांचल स्वतंत्रता संग्राम अंक (131वी/65 9 – 1– 1937 पृ.सं – 19)
14. मध्य प्रदेश और गांधी जी पृ.सं – 187
15. मध्य प्रदेश और गांधी जी पृ.सं – 187
16. राष्ट्र गौरव – बुन्देलखण्ड का स्वतंत्रता संग्राम पृ. सं – 244
17. गजेरियर आंफ इण्डिया म.प्र. सागर 1967 पृ. सं – 73
18. गजेरियर आंफ इण्डिया म.प्र. सागर 1967 पृ. सं – 74

भारतेन्दू व द्विवेदी युगीन साहित्य में स्वदेशी चेतना

shodhshree@gmail.com

डॉ. नीलम मीणा
जयपुर

शोध सारांश

भारत की दशा–दिशा, समाज व संस्कृति मे उदित बदलाव की घडी जनता को भारतेन्दु कालीन ओजपूर्ण साहित्यिक कृतियों ने जागृत करने का सफल प्रयास तो किया। किन्तु उतना ही सच यह भी है कि तत्कालीन कवियों ने प्राचीन रूढ़िवादी परम्पराओं मे सुधार हेतु कलम चलाई, वहीं अनावश्यक सामाजिक परम्पराओं का स्वयं पालन करते हुये समर्थन जताते भी दिखाई देते है। सार रूप मे माना जाए तो भारतेन्दु काल मे भारतीय राष्ट्रवाद व स्वदेशी भावना के समर्थक होते हुए भी उनमे अधिकांशतः जातिगत व गौरवपूर्ण चेतना ही अधिक दिखाई देती है। भारतीय साहित्य के विस्तृत विकास की अवधारणा तो भारतेन्दु युग के इतिहास से ही मानी जाती है किन्तु द्विवेदी युग मे यह अवधारणा दृढता और समभव्य तथ्यों के उजागर होने से मण्डित होती गई।

संकेताक्षर : *भारतेन्दू, द्विवेदी, साहित्य, स्वदेशी चेतना, सामाजिक परम्परा।*

विकासमान मानव समूह के कारण समाज सदैव परिवर्तनशीलावस्था में रहा है। समाज उन संस्थाओं, संगठनों का एक विस्तृत रूप है जिसको मानव जाति ने अपने अस्तित्व और जीवनाधार रूप में प्रतिस्थापित किया है। नवीन आवश्यकताओं और दशाओं के निर्मित सामाजिक सम्बन्ध सहयोग और पिछड़े युग की समाज व्यवस्था के संघर्ष को समयानुसार साहित्य में भी स्थान मिलता गया और आज हम राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर देश की हर स्थिति तथा दशा–दिशा का अवबोध हो रहा है। प्राचीन समय से भारत देश की सभ्यता–संस्कृति पर पाश्चात्य देशों ने अतिक्रमण करना शुरू किया था। तत्पश्चात् भारतीय जनता हर क्षेत्र में होते अतिक्रमण के कारण त्रस्त रहने लगी। परिणाम स्वरूप अनेक क्रांतिकारी महापुरूषों और आंदोलनों का उद्भव हुआ। कहना गलत नहीं होगा कि भारतीय जनता के मानस पटल पर साहित्यिक रचनात्मक गतिविधियों द्वारा भी अमिट छाप छोड़ी जाने लगी जिसकी पूर्ण उपज का प्रतिफल भारतेन्दू अथवा पुनर्जागरण काल को माना जाता है। उसी समय से भारत देश में राष्ट्रवाद की लहर जोर पकड़ने लगी थी। इस सन्दर्भ में– ''भारतीय समाज के नवजागरण के इतिहास की इस पृष्टभूमि को ह्रदयगंम करके ही भविष्य की उस व्यापक उथल–पुथल को समझा जा सकता है। जो अगली अर्ध–शताब्दी में राष्ट्र के रंगमच पर घटित हुई।''[1] यहाँ कृष्ण बिहारी मिश्र का कथन सार्थकता सिद्ध होता है। वहीं.ए आर देसाई भी– ''ब्रिटिश शक्तियों की पारस्परिक क्रिया–प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और विकास हुआ। हमने यहां इस बात की व्याख्या प्रस्तुत की है कि क्यों प्राक् ब्रिटिश भारत के आर्थिक और सांस्कृतिक वातावरण में राष्ट्रीयता का उदय सम्भव नहीं था और न हुआ।''[2] समर्थन करते हैं।

स्पष्टतः भारतीय राष्ट्रवाद की भावना पनपने से पूर्व पाश्चात्य व अंग्रेजी राज्य की जड़े भारत में तेजी से फैलती जा रही थी। एक नई जाति की सभ्यता–संस्कृति अपना प्रभुत्व देश पर जैसे–जैसे स्थापित करती गई, वैसे–वैसे ही भारतीय–सभ्यता संस्कृति के आदर्श दुर्बलता को ग्रहण करते जा रहे थे। तत्कालीन समय में सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भारत में अनेकों मतभेद उत्पन्न होते जा रहे थे। वर्ण व्यवस्था, जातिगत भेदभाव के कारण सामाजिक व्यवस्था चरमराने लगी। हिन्दू ही नहीं अपितु अन्य समुदाय भी अंग्रेजों की क्रूर नीतियों से ग्रस्त थे। उसी समय राजाराममोहन राय, दयानंद सरस्वती, गोविन्द रानाडे, विवेकानंद जैसे समाज सुधाराकों व आदोलन के आविर्भाव ने

ISSN 2277-5587

भारत में राष्ट्रवाद की नींव डाल पीड़ित जनता में आशा का संचार किया। सर सैयद अहमद खां ने मुस्लिम समुदाय को 'राष्ट्रवाद' शब्द की महता से अवगत कराया। उसी समय भारतीय साहित्यकारों ने भी साहित्यक रचनाओं के माध्यम से जनता में साहस–वीरता–जागरूकता लाने का अथक प्रयास किया। नतिजन भारतीय राष्ट्रवाद के अर्थ ग्रहण करने मात्र से ही भारतीय जनता कुछ हद तक स्वतंत्र हो चुकी थी। भारतीय हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवादी चेतना का शुभारम्भ भारतेन्दू युग से ही माना जाता है। भारतेन्दू युग परिवर्तन व जनता में आजादी के लिए संघर्षवादी चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से अधिक महत्व रखता है।

भारतेन्दू युगीन प्रारम्भिक साहित्य मुख्य रूप से राजभक्ति से युक्त दिखाई देता है। किन्तु जैसे–जैसे कवियों को अंग्रेजी राज्य के शोषण युक्त दूषित वातावरण की गधं आने लगी, वैसे–वैसे ही साहित्यकारों ने राजभक्ति को त्याग देश भक्ति व स्वराज्य युक्त रचनाएँ कर भारतीय जनमानस से ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा स्थापित मैल को साफ करने का प्रयत्न करने लगे– ''भारतेन्दू युग का कवि जहां एक ओर प्राचीनता का प्रेमी है वहां दूसरी और अर्वाचीनता का सूत्रधार भी । वह तत्कालीन समस्याओं के प्रति था। उसके काव्य में राजभक्ति के साथ देश–भक्ति भी है। ''[3] डॉ. शिवकुमार शर्मा ने भारतेन्दू युगीन साहित्य में राज व देश भक्ति दोनों ही स्वीकार करते है। भारतेन्दू युगीन सभी साहित्यकारों ने तत्कालीन विषम परिस्थितियों से महसूस किया कि गुलामी युक्त जीवन जीना निकृष्ट है। विदेशी साम्राज्य अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए अपना प्रभुत्व बढ़ाता हुआ हमारे समाज से सत्य आधारित आदर्शो को मिटाता जा रहा है – ''राष्ट्रीय भावना का उदय इस काल की अनन्य विशेषता है। देश के उत्कर्ष और अपकर्ष के लिए उतरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डाल कर इस युग के कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीय भावना के बीज–वपन का महत्वपूर्ण कार्य किया है। ''[4] डॉ. कृष्ण कुमारी का यह कथन यहाँ भारतेन्दू युगीन राष्ट्रवादी चेतना का समर्थन है।

भारतेन्दू युगीन साहित्यकारों में भारतेन्दू हरिशचन्द्र, उपाध्याय बदरीनारायण 'प्रेमघन' प्रतापनारायण, श्रीधर पाठक जैसे साहित्यकार प्रमुख है जिन्होंने स्वदेशी व राष्ट्रवादी चेतना युक्त रचनाएँ की। स्वयं भारतेन्दू भी समाज सुधारक रूप में अधिक जाने जाते है। नवीन विचारधारा और प्रथा–परम्पराओं को समाज हित में देखते हुए ही अनुसरण करने के पक्ष में थे। उनका मत था कि–

''ऐ ही से भारत नास भया सब,
जहाँ–तहाँ यही हाल हो दुइरंगी।
हाऊ एकमत भई सबै अब,
छांडहू चाल –कुचाल हो दुइरंगी।।''[5]

प्रस्तुत पंक्तियों में भारतेन्दू भारतीय एकता पर जोर देते हैं क्योंकि तत्कालीन समय में सगंठित प्रयत्न से ही स्वाधीनता प्राप्ति हेतु सघर्षशील भावना का विकास जनता में उन्हें देखने को नहीं मिला– ''भारतेन्दू भारत की दुर्दशा के लिए आपसी एकता के अभाव को सबसे बड़ा कारण मानते है। आपसी झगड़ा और भेदभाव से ही भारत अपनी मौजूदा दुरावस्था में पहुँचा है। इस देश का सामाजिक तंतु कई तरह के देशों से मिलकर निर्मित हुआ है। भारतेन्दू इसे बखूबी समझ चुके थे।''[6] भारतीय जनता में राष्ट्रवादी धारणा को बलवती कर स्वदेशी भावना का समावेश भारतेन्दू समय से ही साहित्यकारों ने शुरू कर दिया था। स्वयं भारतेन्दू स्वदेशी पर बल देते हुए कहते हैं–

''मारकीन मलमल बिना चलत कछु नहि काम।
परदेशी जुलहान के मानहु भये गुलाम ।
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि,
आवत सब परदेश सो नितहि जहाजन लादि।।''[7]

वहीं भारतेन्दू विदेशी वस्तुओं तथा सभ्यता के प्रति विरोध की भावना रखते थे। ये स्वदेशी के प्रचार–प्रचार के साथ औधोगिक विकास का भी पूर्णतः समर्थन करते थे –

''सब देशन की कला सिमटी के इत ही आवे।
कर राजा नहीं लेई प्रजा में हेत बढ़ावे।।''[8]

भारत में स्वदेशी आदोंलन के पक्षधरों में महापुरूषों के साथ–साथ साहित्यकार भी थे। उनमें उपाध्याय बदरीनारायण 'प्रेमधन' का नाम भी प्रमुख है। वे स्वदेशी विचारधारा का पक्ष लेतें हुए कहते है कि–

"लूटि विलायत भारत खाय।
माल–ताल बहु विधि केलाय।
ताको मासूली छुटि जाय। जामै लागे लाभ दिखाय।
देशी मालन इहां बिचाय। घाटा भारत के सिर
जाय।''[9]

प्रेमघन ने अंग्रेजी शासन की दमनकारी रणनीतियों पर कटाक्ष करते हुए स्वदेशी आदोंलन की तरफ रूख किया। 'प्रेमघन' अपनी कविता 'चरखे की चमत्कारी' में स्वराज्य प्राप्ति की पहल करते हुए कहते हैं कि –

"बहिष्कृत होलिका बीच बसन बिदेशी जलत।
एकता सांचा सवारि स्वराज्य सिक्का ढ़लत ।।"[10]

भारतेन्दू युगीन कवियों ने भारतीय संस्कृति–सभ्यताओं को निरादर करने वाली और हीन देखने वाली पाश्चात्य दृष्टि को सारहीन समझते हुए भारतीय जनता में आशा–संचार का प्रयत्न करते है। हालांकि भारतेन्दू काल में कवियों की अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति सम्मान की भावना भी विद्यमान थी। कारण, अंग्रेजी साम्राज्य के स्थापित होने के बाद शिक्षा हेतु विद्यालयों की स्थापना, औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात, सामाजिक कुरीतियों में कमी लाना यथा–सती प्रथा, बाल विवाह निषेध, यातायात साधनों का विकास जैसे कई सामाजिक सुधार भी किए।

भारतेन्दू युगीन कवि प्रतापनारायण मिश्र की भी चिंता भारतीयों का पिछड़ापन था। भारत की दुर्दशा को देखते हुए देशोन्नति का मार्ग प्रशस्त करना ही मिश्र की साहित्य यात्रा का सफल प्रयास माना जा सकता है–

''भारत की आरत दसा, सबहि बिदित सब भाँति।
सुधि आवे छाती फटै, कही न केसहु जात।।''[11]

अतः निश्चित रूप से यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि भारत की दशा–दिशा, समाज व संस्कृति में उदित बदलाव की घड़ी जनता को भारतेन्दू कालीन ओजपूर्ण साहित्यिक कृतियों ने जागृत करने का सफल प्रयास तो किया। किन्तु उतना ही सच यह भी है कि तत्कालीन कवियों ने प्राचीन रूढ़ीवादी परम्पराओं में सुधार हेतू कलम चलाई, वहीं अनावश्यक सामाजिक परम्पराओं का स्वयं पालन करते हुए समर्थन जताते भी दिखाई देते हैं। सार रूप में माना जाए तो भारतेन्दू काल में भारतीय राष्ट्रवाद व स्वदेशी भावना के समर्थक होते हुए भी उनमें अधिकाशतः जातिगत व गौरवपूर्ण चेतना ही अधिक दिखाई देती है।

भारतीय साहित्य के विस्तृत विकास की अवधारणा तो भारतेन्दू युग के इतिहास से ही मानी जाती है किन्तु द्विवेदी युग में यह अवधारणा दृढ़ता और समभव्य तथ्यों के उजागर होने से मण्डित होती गई। व्यापक बदलाव के रूप में द्विवेदी युग अलग पहचान रखता है। प्राचीन युग की अपेक्षा आधुनिक युग में अधिक प्रतिभाशाली साहित्यकार उभर कर आये जिन्होंने साहित्य को बुलन्दी की ऊँचाईयों पर ले जाने का सफल प्रयास किया, जिससे बहुउद्देशीय विकास परिलक्षित होता है – ''जातीय गौरव का सात्विक गर्व, इतिहास का राष्ट्रीय रूप, राष्ट्रोत्थान का नवविवेक, नवयुग की शक्तियों का बोध, स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा और उदारमानववादी दृष्टि से साहित्य की आत्मा जगमगा उठी।''[12] स्पष्टतः काव्यनिष्ठ व आमबोलचाल युक्त खड़ी बोली के माध्यम से नैतिक प्रतिमानों की स्पष्ट अभिव्यक्ति देने की प्रेरणा महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व में पूर्णत देखने को मिलती है। द्विवेदी युग में भाषा संस्कार को अधिक प्रबलता मिली। अंग्रेजी शासन के स्थापित होने पर भारत वर्ष के व्यापारियों की आर्थिक मनोवृति जब परवान चढ़ने लगी तो वे भारतीय सांस्कृतिक विरासत व आध्यात्मिकता से परे होने लगे, इस कारण उस समय भाषा विकास भी आवश्यक हो गया – ''स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि में देशानुराग की भावना की दृढ़ता होना आवश्यक है, हमारे साहित्यकार भलिभाँति जानते थे। अतः द्विवेदी के साहित्य में मातृभूमि के प्रति स्नेह की वृद्धि करने वाली रचनाएँ बड़ी संख्या में लिखी गई।''[13] भारतेन्दू काल से जिन समाज सुधारक आंदोलन का आरम्भ हुआ उसका पूर्ण प्रतिबिम्ब द्विवेदी युगीन कवियों की रचनाओं में देखने को मिलता है।

द्विवेदी युगीन भारतीय समाज में राष्ट्रवाद की भावना को उग्रदल नेता लाल–बाल–पाल ने राजनैतिक स्तर पर आगे बढ़ाया। भारत में 'स्वराज्य' की मांग भी उसी समय जोर पकड़ते जा रही थी। परिणामतः 'स्वराज्य' की मांग को अनेक तत्कालीन पत्र –पत्रिकाओं के माध्यम से भी उठाया गया। बंगाल से प्रकाशित युगान्तर, संध्या जैसे अनेक समाचार पत्र थे जिन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद व स्वदेशी भावना को बल प्रदान किया। द्विवेदी युगीन कवियों में नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक, हरिऔध, माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी गयाप्रसाद शुक्ल जैसे कई कवि है जिन्होंने भारत माता, स्वदेशी, स्वराज्य तथा अनगिनत मुद्दों पर काव्य रचनाएँ की है। द्विवेदी युगीन साहित्यकारों में नाथूराम शंकर शर्मा का प्रमुख स्थान है। तत्कालीन समय में स्वदेशी आंदोलन जोर पकड़ता जा रहा था और नाथूराम शर्मा की 'अविधानन्द का व्याख्यान शंका क्रन्दन, भारत माता का निरीक्षक तथा पंच पुकार आदि भारतीय

राष्ट्रवाद से प्रेरित कविताए थी। नाथूराम शर्मा ने स्वदेशी न अपनाने व बेचने वाले व्यापारियों पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि–

"काम स्वदेशी से न चलाते ठग लालच के मारे।
माल विदेशी बेंच रहे है, खोले कपट–पिटारे।
दे–देकर अन्नादि उचक्के परदेशी उपकारे।
ले–ले मोटर, वाच खिलौने झींख झखमारे।।"[14]

वहीं 'अविद्यानंद का व्याख्यान' नामक कविता में भी नाथूराम ने व्यापारियों पर व्यंग्य करते हैं कि–

"रूई नाज देशी दिया कीजिये,
विदेशी खिलौने लिया कीजिए।
हवेली घरों को सजाया करों,
पड़े मस्त बाजे बजाया करों।।"[15]

शर्मा की ये व्यग्ंय व कटाक्ष से परिपूर्ण कविताएँ इसलिए भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि यह सिद्ध करती है कि इस तरह कटाक्ष, व्यग्ंय व ओजपूर्ण रचनाओं द्वारा हिन्दी के साहित्यकार स्वदेशी आंदोलन के दिशा–निर्देशक और अगुआ पुरोधा रूप में जाने जाते हैं।

भारतेन्दू युग से ही स्वदेशी शब्द का उच्चारण व अनुसरण प्रारम्भ हो गया था किन्तु द्विवेदी युग तक आते–आते इसका बालेबाला ओर बढ़ गया। स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए आमजन से स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने का आह्वान अपनी लेखनी के माध्यम से करते दिखाई देते हैं –

"स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै।
विनयं इतना हमारा मान लीजै।
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागों।
जाओ पास उसमें दूर भागो।।"[16]

आचार्य द्विवेदी स्वयं भी स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करते थे। द्विवेदी कालीन रायदेवी प्रसाद ने भी 'स्वदेशी कुण्डल' नामक कविता संग्रह में स्वदेशी आंदोलन को बढ़ावा देते हुए कहते है कि –

"चीनी ऊपर चमचमी, भीतर अति अपवित्र।
करते हो व्यवहार तुम, है यह बात विचित्र।
है यह बात विचित्र, अरे निज धर्म बचाओं ।
चौपाइयों का रूधिर अस्थि अब अधिक ना खाओं।।"[17]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने विदेशी चीनी के उपयोग की अपेक्षा देशी खाड़सारी अथवा गुड़ को अधिक महत्वपूर्ण माना हैं इन पक्तियों में कवि की विदेशी वस्तुओं के प्रति अत्याधिक घृणा व द्वेष दिखाई पड़ता है।

द्विवेदी युगीन महत्वपूर्ण कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का भी अद्वितीय स्थान है। गुप्त जी की 'भारत–भारती' नामक प्रसिद्ध व चर्चित कविता में स्वदेशी वस्तुओं की महत्ता को तो स्पष्ट किया ही है वहीं स्वदेशी वस्तुओं के लुप्त होने से होने वाली हानियों की ओर संकेत करते हुए कहा है कि – "जो वस्तु देखो 'मेड इन' इग्लैण्ड, इटली, जर्मनी।

जापान, फ्राँस, अमेरिका, अन्य देशों की बनी।
आता विलायत से यहाँ वह माल नाना रूप में।
आश्चर्य क्या फिर हम पड़े है जो अंधेरे कूप में।
हम काँच लेकर दूसरों को दे रहे हीरे खरे। निज रक्त के बदले मदोदक ले रहे हैं, हा हरे।।"[18]

यहाँ कवि ने आधुनिक विदेशी वस्तुओं के प्रयोग में भारत की उच्च व समृद्धशाली अतीत युग की अवधारणा को सशक्त रूप में वर्णित किया है कि सोने की चिड़ियाँ कहलाने वाला भारत आज भी उसी रूप में विद्यमान है जैसे पहले था किन्तु यदि हीरे के बदले हम काँच के टुकड़े यूं ही खरीदते रहे तो अवश्य ही वह दिन दूर नहीं, जिसकी कल्पना करने मात्र से तन–मन सिंहर जाता है। 'सरस्वती' पत्रिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी कविता 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' में पूर्णतः स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर दिया है। हांलाकि भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा में गार्धीजी ने 'स्वराज्य' शब्द को 1906 में ले लिया था किन्तु साहित्यिक दृष्टि से महावीर प्रसाद की यह कविता विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की पूर्व पीठिका मानी जाये तो गलत नहीं होगा –

"विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे है?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे है ?
न सुझे है अरे भारत भिखारी।
गयी है हाय तेरी बुद्धि मारी।।"[19]

प्रस्तुत पक्तियों में कवि ने विदेशी वस्तुओं को नहीं अपनाने पर जोर दिया है

द्विवेदी की एक ओर प्रसिद्ध कविता "देशोपालम्भ" भी स्वदेशी आंदोलन व बायकाट से सम्बधिंत थी। कवि ने भारतीय जनता से आह्वान किया है कि–

"हे देश ! स– प्रण विदेशज वस्तु छोड़ो,
सम्बन्ध पर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस बात में ही।।"[20]

इस प्रकार से उनकी कविताओं का प्रमुख सदेंश भारतीय स्वदेशी व राष्ट्रवादी चेतना को जनता तक पहुँचाना था। उस समय महावीर प्रसाद द्विवेदी का काव्य रचनाकरना ही बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

आधुनिक व द्विवेदी युगीन राष्ट्रवादी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से भारतीय को अपनी शक्ति सामर्थ्य का बोध होने लगा था। भारतीय जनता अब संजग हो यह पहचानने लगी थी कि यदि हम एक जुट हो विदेशी शासन का डटकर पुरजोर विरोध रूप में आंदोलन करेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब हम आजादी भरी हवा में सांस ले पायेगें। भारतीय राष्ट्रवादी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से रचनाकारों ने जहाँ भारत की जनता में जोश, उत्साह का सचांर किया, वहीं ब्रिटिश शासन के भक्तों व चापलूस वर्ग में साहित्यिकारों का प्रमुख डर भी घर करता जा रहा था। भारतीय चापलूस वर्ग के लिए स्वयं भारत के लोग ही व्यग्यांत्मक भाषा व संकेतों का प्रयोग करने लगे।

भारत में ब्रिटिश शासन की नींव पड़ते ही पाश्चात्य सभ्यता का जैसे-जैसे प्रचार-प्रसार होता गया, वैसे-वैसे ही भारतीय लोगों में आत्मगौरव पूर्ण राष्ट्रीय सामाजिक-सांस्कृतिक, प्रेम, सौहार्द, परम्पराएँ, भाईचारा तथा एकता विखण्डित होती गई। भारतीय लोग पाश्चात्य सभ्यता कें अनुसरण में इस कदर आत्महीन हो ग्रस्त होते जा रहे थे जिसने स्वयं का पतन तथा पाश्चात्य सभ्यता की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा था। ऐसे ही पुनर्जागरण काल में राष्ट्रवादी साहित्यकारों कों भारतीय सभ्यता - संस्कृति का घर करते जाना खटक रहा था। इसलिए नवजागरण काल से ही साहित्यकारों ने आधुनिकीकरण की लहर पर तीखे व व्यग्ंय पूर्ण शब्दों का प्रयोग करना शुरू किया। स्पष्टतः यह साहित्यिक आंदोलन स्वदेशी आंदोलन का ही एक रूप माना जा सकता है। उपर्युक्त अनेक साहित्यकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतेन्दू व द्विवेदी युगीन भारतीय संस्कृति तथा स्वदेशी धारणा के प्रति स्नेह भावना से ओत-प्रोत दर्शाया है। भारतीय समाज में जिन लोगों ने भी आनन-फानन पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति में योगदान दिया था या समर्थन किया, उन्ही लोगों के प्रति भारतीय राष्ट्रवादी कवियों ने औचित्य-अनौचित्य पूर्ण लेखन व्यग्यांत्मक भाषा शैली द्वारा कटाक्ष किया और उनके सामने भारतीय व पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का अन्तर प्रस्तुत करते हुए भारतीय सभ्यता-संस्कृति को ही श्रेष्ठ बताया। तत्पश्चात् रचनाओं के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप भारतीय जनता में अपने देश की सभ्यता-संस्कृति की सच्चाई और अच्छाई को पहचान कर स्वदेशी युक्त जीवन शैली को अपनाना शुरू किया- ''इस प्रकार प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए उसके प्रति श्रद्धा और आत्म गौरव की भावना को रखतें हुए भी उसमें नवीन सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय का उचित मार्ग साहित्यिक वर्ग में प्रदर्शित किया।'' अमुख पक्तियों में कृष्ण बिहारी मिश्र ने भारतीय जनता को नवीन सांस्कृतिक मूल्यों से अवगत कराया, वहीं डॉ. कृष्ण कुमारी ने भारतेन्दू व महावीर प्रसाद को तत्कालीन समय के अग्रज मानते हुए कहा कि - "भारतेन्दू युग के पश्चात पंड़ित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक कुशल सेनापति की भाँति हिन्दी साहित्य के शासन की बागड़ोर संभाली और अपनी योग्यता, कर्मठता, निष्ठा तथा हिन्दी के प्रति अगाध श्रद्धा के बल पर अपूर्व सफलता प्राप्त की।'' स्पष्टतः इस युग में स्वदेशी व स्वाधीनता से सम्बन्ध रखने वाला साहित्य बहुतायत लिखा गया। परन्तु स्वदेशी आंदोलन के लिए तत्कालीन समय में राष्ट्रीय एकता और संगठन की आवश्यकता की पूर्ति साहित्यकारों द्वारा की गई। प्रस्तुत युग की समूची साहित्य चेतना का सूत्रधार द्विवेदी जी सरस्वती नामक पत्रिका को बनाया और यह एक संस्था का रूप लेती गयी। यही कारण था कि भारतेन्दू युगीन काव्य की अपेक्षा भारतीय राष्ट्रवाद व स्वदेशी की मांग का स्वर द्विवेदी युग में अधिक देखने को मिला।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 51*
2. *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि - ए.आर. देसाई, पृ. 349*
3. *हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृतियाँ - डॉ. शिवकमार शर्मा, पृ. 460*
4. *मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना - डॉ. कृष्ण कुमारी, पृ.74*
5. *भारतेन्दू ग्रन्थावली - प्रथम भाग, पृ. 500*
6. *राष्ट्रीयता की अवधारणा और भारतेन्दू युगीन साहित्य-प्रमोद कुमार, पृ. 152*
7. *आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य - कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 54*

8. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना – डॉ कृष्ण कुमारी, पृ.76
9. प्रेमघन सर्वस्व – प्रथम भाग, पृ.177
10. स्वतंत्रता पुकारती – नंदकिशोर नवल, पृ. 46
11. वहीं, पृ. 49
12. आधुनिकताः एक पहचान – डॉ. चन्द्रभान रावत, पृ. 68
13. आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक साहित्य – कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 66
14. भारत माता का निरीक्षण – नानूराम शंकर शर्मा, पृ. 235
15. अविधानंद का व्याख्यान – नानूराम शंकर शर्मा, पृ. 158
16. आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य – कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 85
17. वहीं, पृ.85
18. वहीं, पृ. 86
19. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी जगत् – केशव प्रसाद वाजपेयी, पृ. 246
20. मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी चेतना –डॉ कृष्ण कुमारी, पृ. 82

भारत में अनिवार्य मतदान – एक अध्ययन

डॉ. मुकेश कुमार वर्मा
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संविधान निर्माताओं ने तत्कालीन संविधान सभा में मतदान को अनिवार्य बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। मतदान को अनिवार्य न किये जाने के पीछे दलील दी गई की भारत की जनता अशिक्षित है इसलिए पहले शिक्षा का प्रतिशत बढना चाहिए। आज हम सन् 2021 में जी रहे हैं। 1947 की तुलना में न केवल शिक्षितों का प्रतिशत बढ़ा है बल्कि मीडिया ने भी लोगों को व्यावहारिक रूप से शिक्षित करने में बड़ी भूमिका निभाई है किन्तु संसद में कभी यह पुरजोर आवाज नहीं उठी कि अब भारत में वोट देना अनिवार्य कर दिया जाए। इसके बावजूद भी मतदान को अनिवार्य बनाने के लोकतांत्रिक कदम की आलोचना की जा रही है और कहा जा रहा है कि यह व्यावहारिक नहीं है। ऐसा क्यों कहा जा रहा है, इस पर चिंतन की आवश्यकता है और यही प्रस्तुत शोध पत्र का विषय है।

संकेताक्षर : *अनिवार्य मतदान, चुनाव, मताधिकार, लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व, मतदाता, सरकार आदि।*

देश में फर्स्ट् पास्ट दी पोस्ट चुनाव प्रक्रिया लागू है, जिसके तहत डाले गये मतों में से सर्वाधिक मत प्राप्त उम्मीदवार को विजय घोषत किया जाता है। कुछ छोटे राज्यों को छोड़ दिया जाये तो देश के आम चुनाव और विधान सभा चुनाव में औसतन पचास से पैंसठ प्रतिशत तक मतदान होता है। निकाय चुनाव एवं पंचयात चुनावों में मतदान प्रतिशत थोड़ा बढ़ जाता है लेकिन फिर भी संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। चुनाव में वोट नहीं देने वालो की संख्या भी अच्छी खासी होती है। ऐसे में विजयी उम्मीदवार को वोट डालने नहीं आये पंजीकृत मतदाताओं की पसंद नहीं कहा जा सकता। देश में जब कभी भी स्थानीय चुनाव, विधान सभा चुनाव या आम चुनाव होते हैं तब कितने प्रतिशत मतदान होता है? और इसके बाद जिस दल की सरकार बनती है उसको मिलने वाले वोटों का प्रतिशत भी अधिक नहीं होता। यानी कि सामान्यतया सरकार उस दल की बनती है जिसे 50 प्रतिशत से भी कम लोगों का समर्थन हासिल होता है। इसके पीछे मूल कारण है मतदान प्रतिशत का कम होना। 1952 से लगातार यह दर्ज किया जा रहा है कि मतदान प्रतिशत में आशातीत वृद्धि नही हो रही है। 1991 के आम चुनावों में 58.7 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया था। 1996, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 के आम चुनावों में यह प्रतिशत क्रमशः 57.9, 62, 58, 57.65, 58, 66.38, 66 रहा। ऐसे में 15–20 प्रतिशत वोट ले कर भी उम्मीदवार चुनाव जीत जाते हैं। मान लें कि भारत में कुल वोटर 60 करोड़ है। 60 करोड़ में से मानों 40 करोड़ ने वोट डाले। यदि किसी पार्टी को 40 में से 10–12 करोड वोट मिल गए तो भी वह सरकार बना लेती है। दूसरे शब्दों में 120 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में सिर्फ 10–12 करोड़ लोगों के समर्थन वाली सरकार क्या वास्तव में लोकतांत्रिक सरकार है? क्या वह वैध सरकार है? क्या वह बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है? नहीं, जबकि आज तक हम ऐसी ही सरकारों के अधीन रहें हैं। यह विडम्बना है और यह विडम्बना इसलिए है क्योंकि लोग मतदान ही नहीं करते।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने तत्कालीन संविधान सभा में मतदान को अनिवार्य बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। मतदान को अनिवार्य न किये जाने के पीछे दलील दी गई की भारत की जनता अशिक्षित है इसलिए पहले

शिक्षा का प्रतिशत बढना चाहिए। आज हम सन् 2021 में जी रहे हैं। 1947 की तुलना में न केवल शिक्षितों का प्रतिशत बढ़ा है बल्कि मीडिया ने भी प्रत्यक्षतः अप्रत्यक्षतः लोगों को व्यावहारिक रूप से शिक्षित करने में बड़ी भूमिका निभाई है किन्तु संसद में कभी यह पुरजोर आवाज नहीं उठी कि अब भारत में मतदान अनिवार्य कर दिया जाए। इसके बावजूद भी मतदान को अनिवार्य बनाने के लोकतांत्रिक कदम की आलोचना की जा रही है और कहा जा रहा है कि यह व्यावहारिक नहीं है। ऐसा क्यों कहा जा रहा है, इस पर चिंतन की आवश्यकता है। आज इतने क्षेत्रीय दल बन गए हैं कि वोट का प्रतिशत कम होते जाना एक स्वाभाविक बात हो गई है। किसी एक पार्टी के लिए मतदान का अपना उच्च प्रतिशत बनाए रखना एक कठिन काम हो गया। राजनीतिक दल अच्छा प्रतिशत न मिलने से कोई स्थायी और प्रगतिशील सरकार देने में असफल रहे हैं और इस कारण मतदाताओं का मतदान से मोहभंग हो गया है। व्यावहारिक बात करें तो औसतन 60 प्रतिशत मतदाता मतदान केन्द्रों पर पहुंचकर सरकार बनाने में अपनी भागीदारी दर्ज कराते हैं जबकि 40 प्रतिशत मतदाता मतदान दिवस को अपनी छुट्टी का दिन मानकर लोकतंत्र की खिल्ली उडाते हैं। इसलिए आज देश के सामने बड़ी चुनौती है कि हम अपने लोकतंत्र को मजबूत किस प्रकार बनाएं। ऐसे में एक ही विचार सामने आता है कि क्यों नहीं मतदान को अनिवार्य बना दिया जाए ताकि सम्पूर्ण देश की वयस्क जनता लोकतंत्र के प्रति उत्तरदायी बन सके। विशाल पैमाने पर मतदान के पश्चात् जो सरकार बनेगी वह निश्चित ही तुलनात्मक रूप से अधिक मजबूत होगी।

इस सन्दर्भ में संविधान विशेषज्ञों की राय है की मतदान का अधिकार हमें हमारी नागरिकता से मिलता है। नागरिकता एक बहुत ही पवित्र चीज है। इससे मिलने वाले मतदान के अधिकार को किसी भी मजबूरी में बदल देना लोकतान्त्रिक मूल्यों का अवमूल्यन होगा। मतदान अपने विवेक और अपनी इच्छा से की जाने वाली चीज है। इसको किसी विवशता में बदल देना लोकतन्त्र का स्वरुप ही बदल देगा। भय से संचालित होने वाले ऐसे लोकतन्त्र को लेकर हम क्या हासिल करेंगे। अगर एक नागरिक के पास वोट देने का अधिकार है तो वोट नहीं देने का अधिकार भी उसके पास है। यह दोनों अधिकार एक ही सिक्के के दो पहलु हैं । दूसरा पक्ष क्रियान्वयन का है एक तरफ यदि हम वोट नहीं देने पर कोई दंड नहीं देते हैं तो इस कानून का औचित्य नहीं होगा, लोग इसका पालन नहीं करेंगे। दूसरे यदि हम दंड के भय से इसका पालन कराते हैं तो यह भय के वशीभूत किया जाने वाला कार्य हो जायेगा, जो की लोकतंत्र की मूल भावना के खिलाफ होगा। तीसरी बात यह की, यह मानना बिलकुल भी उचित नहीं है की हमारे देश में मतदान कम होता है। औसतन 60-65 प्रतिशत मतदान किसी भी चुनावों में मतदान कम नहीं होता है। किसी भी पश्चिमी देश की तुलना में यह संतोषजनक मतदान प्रतिशत है। फिर अगर यह मतदान प्रतिशत कम है तो भी इसका एक बड़ा कारण मतदाता सूचियों में गलती होना भी है। कई अध्ययन आ चुके हैं की इन मतदाता सूचियों में तीस प्रतिशत तक खामियां रहती हैं। सबसे अहम् बात यह है की यदि हमें मतदान प्रतिशत कम लगता है तो इसका कारण राजनीतिक दलों द्वारा योग्य प्रत्याशी खड़े नहीं किया जाना भी है। इसलिए शिक्षा या दंड तो राजनीतिक दलों को दिये जाने की जरुरत है की वे लोगो को प्रेरित नहीं कर पा रहें हैं की अधिक लोग मतदान करें, पर उल्टा हो रहा है। शिक्षा मतदाता को देने की कोशिश की जा रही है की वह ढिलाई बरत रहा है। कई बार छात्र कक्षा से इसलिए भी भागते हैं की अध्यापक ही लायक एवं योग्य नहीं होते।

अतः मतदान की अनिवार्यता के स्थान पर मतदाता जागरूकता को महत्व दिया गया। देश में राजनीति के प्रति लोगों की उदासीनता को देखते हुए 25 जनवरी को देश में मतदाता दिवस मनाये जाने का संकल्प लिया गया है। चुनाव आयोग तथा विभिन्न सरकारों द्वारा जागरूकता के लिए प्रचार अभियान चलाये जाने के बावजूद स्थिति जस की तस है। पर क्या मात्र इन कदमों से देश के मतदाताओं में कोई जागरूकता आने वाली है? आश्चर्य है कि इस देश का एक वर्ग जो अधिकारों की बात तो बढ़-चढ़ कर करता है लेकिन कर्तव्य के प्रति चुप्पी साध जाता है। मतदान के अवसर पर घर बैठे रहने वाला यह वर्ग स्वयं को प्रबुद्ध कहलाना पसंद करता है। मतदान के आसपास घूमने निकल जाने वाला यह वर्ग लोकतंत्र के प्रति अपने कर्तव्य का उपहास करता है। इनकी आपराधिक निष्क्रियता को हल्के से नहीं लिया जा सकता। ऐसे लोग व्यवस्था से बढ-चढकर लाभ लेना तो नहीं भूलते लेकिन मतदान के लिए थोड़ा समय निकालने की

बजाय व्यवस्था को असफल बताते हुए उसे कोसने में अग्रणी देखे जा सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि ग्रामीण जनता और समाज का गरीब तबका तो काफी उत्साह से मतदान में भाग लेता है लेकिन तथाकथित पढे–लिखे और सम्पन्न लोग इसे ज्यादा महत्व नहीं देते जबकि सरकार की आलोचना में वे सबसे मुखर होते हैं। आज के समय में हर व्यक्ति सरकारों को कोसते हुए मिल जायेगा पर जब सरकार चुनने का समय आता है तो हम घरों में कैद होकर किसी फिल्म का लुत्फ उठा रहे होते हैं। क्यों आखिर देश को चलाने का जिम्मा केवल कुछ लोगों के हाथ में जाने देना हमें अच्छा लगता है? जब भी समय आता है अच्छों को चुनने का तब हम कहां चले जाते हैं? केवल आधी आबादी के वोटों से चुनी गयी सरकारें आखिर कैसे पूरे देश के बारे में सोच सकती हैं? यह लोकतंत्र की सही अभिव्यक्ति नहीं है। कम मतदान होने से संसदीय लोकतंत्र का उद्देश्य पूरा नहीं होता। देश में चुनाव आयोग और कोई भी सरकार केवल चुनाव के आयोजन तक ही अपनी भूमिका अदा कर सकते हैं पर उसका सदुपयोग करना हमारा दायित्व है। आज अगर कहीं पर कोई अनियमितता है तो वह केवल इसलिए है कि हम उसके प्रति उदासीन है। अगर हम अपने वोट का प्रयोग करना सीख जाएँ तो समाज से खराब लोगों का चुन कर आना कम हो सकता है। लोकतंत्र के नाम पर चल रहे इस छलावे से बाहर निकलने के लिए विकल्प जो ध्यान में आता है वह है अनिवार्य मतदान करना। यह विचार मौलिक नही है क्योंकि यह विश्व के अनेक देशों में प्रभावी ढंग से चल रहा है। 1892 में बेल्जियम ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। इसके अलावा – अर्जेंटिना, ऑस्ट्रिया, इटली, स्विटजरलैण्ड, तुर्की, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, चिली, कांगो, एक्वोडोर, फीजी, पेरू, सिंगापुर, थाइलैण्ड, फिलीपींस, उरूग्वे, दक्षिण अफ्रीका, इजिप्ट आदि प्रमुख है। कुछ देशों में तो मतदान न करने पर सजा का प्रावधान भी है जैसे – बेल्जियम में वोट न डालने वाले व्यक्ति के लिए नौकरी पाना मुश्किल हो जाता है। लगातार चार चुनावों में वोट न डालने वाला व्यक्ति अगले 10 साल तक वोट नहीं डाल सकता। ऑस्ट्रेलिया में मतदान केन्द्र पर हाजरी न लगाने वाले मतदाता को 20 से 50 डॉलर दण्डस्वरूप चुकाने होते हैं। जुर्माना अदा नहीं करते, उन्हें जेल की हवा खानी पड सकती है। स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रिया, साइप्रस और पेरू में भी मतदान से गैरहाजिर रहने वालों पर जुर्माना लगाया जाता है। युनान में वोट न डालने पर पासपोर्ट या अन्य लाइसेंस लेना मुश्किल हो जाता है। सिंगापुर में जो लोग वोट नहीं डालते उनका नाम सूची से हटा दिया जाता है जिसे फिर से दर्ज कराने में काफी मुश्किल है। बोलीविया में मतदान न करने पर वेतन कट जाता है। सजा का प्रावधान केवल उन मतदाताओं के लिए सुनिश्चित होना चाहिए जो जान–बूझकर मतदान में हिस्सा नहीं लेते। लोकतंत्र के इस महाकुंभ में ऐसे लोग भी भागीदारी नहीं करते जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया से स्वयं को ऊपर मानते हुए इस ऐंठ और अंहम में रहते है कि कोई भी प्रतिनिधि निर्वाचित हो जाए अथवा किसी भी दल की सरकार बन जाए, हमें क्या फर्क पडने वाला है। इन अहंकारियों की नकेल दण्ड के प्रावधानों से कसी जानी चाहिए। इस बात से किसे इंकार होगा कि लोकतंत्र की सार्थकता लगभग शत–प्रतिशत मतदान से है। इस दृष्टि से हमारी व्यवस्था पूरी तरह सफल नहीं कहीं जा सकती क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में क्षेत्रीय और जातिवादी दलों का उभरना और बहुकोणीय मुकाबले के कारण खंडित जनादेश मिलना लोकतंत्र की गरिमा को ध्वस्त करता है। चुनावी जीत के अंतर्विरोध अनेक उदाहरणों से भरे हैं। आधे से भी कम मतदान, उस पर मत विभाजन ऐसे कारक हैं जो कुल वोटों का 15 से 20 प्रतिशत हासिल करके भी कोई उम्मीदवार चुनाव जी जाता हैं। ऐसी स्थिति को बहुसंख्यकों का जनादेश कहना संभव नहीं है क्योंकि यह वास्तव में अल्पसंख्यकवाद है। यह भी कटु सत्य है कि ऐसे तमाम साक्ष्यों के बावजूद इस दोषपूर्ण व्यवस्था से लाभान्वित होने वाले हमारे नेता इस रोग को हमेशा के लिए समाप्त करने के इच्छुक नजर नहीं आते किंतु वे तमाम लोग जो सच्चें लोकतन्त्र के पक्षधर हैं, जो इस बीमारी का निदान तलाशते रहते हैं।

आज जरूरत है कि संविधान में मौलिक कर्तव्यों से संबंधित धारा में अनिवार्य मतदान का प्रावधान शामिल करना चाहिए। कम वोटों के सहारे जीत हासिल करने वाले राजनीतिक दलों द्वारा ऐसे प्रावधान के विरोध में की जाने वाली अडंगेबाजी स्वाभाविक है परंतु भारत के लोकतन्त्र को सशक्त और प्रभावी बनाने के लिए यह फैसला लेना होगा। अगर हम इसमें असफल रहते हैं तो लोकतंत्र विरोधी ताकतें इसी तरह से चुनाव का मजाक बनाती रहेगी। सभी दलों को इस बात पर अपनी राय स्पष्ट करनी चाहिए कि अनिवार्य मतदान से उन्हें आपत्ति क्यों है? क्या व्यवस्था को सफल

बनाने के लिए दुनिया के हर समाज ने कुछ अधिकारों को नियंत्रित नहीं किया है? क्या कर्तव्य के बिना अधिकारों का कोई अर्थ है? आज की सबसे बडी जरूरत है कि 18 वर्ष से अधिक उम्र के हर नागरिक के लिए मतदान प्रक्रिया में हिस्सा ले। यदि कोई मतदाता बीमार हो, राज्य अथवा देश से बाहर हो, मतदान केन्द्र आ सकने में असमर्थ हो या फिर अन्य कोई वैध वजह हो तो उसे ऑनलाईन मतदान करने छूट मिलनी चाहिए। मतदान न करने पर आवश्यक सबूत न दिखाने की सूरत में मतदाता को मिलने वाली सरकारी राहतों पर रोक लगनी चाहिए। इससे यह सुनिश्चित होगा की चुनी हुई सरकार लोगों के विशाल वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इससे जनादेश स्पष्ट होगा। इससे अयोग्य उम्मीदवारों के लिए जीत मुश्किल होगी। आज के समय में अगर देखा जाए तो अनिवार्य मतदान से समाज का परिदृश्य बदल सकता है। साम्प्रदायिक और जातिवादी सोच पर अंकुश लगेगा। शिक्षित और समाज के सभी वर्गों के लोगो के वोट देने से निश्चित तौर पर लोकतन्त्र मजबूत बनेगा। देश के प्रत्येक व्यस्क को बाध्य किया जाना चाहिए की वह मतदान करे। बाध्यता का अर्थ यह नहीं है कि वह इस या उस उम्मीदवार को वोट दे ही। अगर वह सारे उम्मीदवारों को अयोग्य समझता है तो किसी को वोट न दे। दूसरे शब्दों में यह वोट देने की बाध्यता नहीं है बल्कि मतदान केन्द्र पर जाकर अपनी हाजरी लगाने की बाध्यता है। यह बताने की बाध्यता है कि आप इस लोकतन्त्र के मालिक हैं और आप जागरूक हैं, जागे हुए हैं। वोट देने के लिए बाध्य करने का वास्तविक उद्देश्य है मतदान के लिए प्रेरित करना। कोई वोट देना न चाहे तो उसे अपराधी घोषित नहीं किया जा सकता और उसे जेल में नहीं डाला जा सकता लेकिन उसके साथ वैसा ही किया जा सकता है जैसा की बेल्जियम, आस्ट्रेलिया, ग्रीस, बोलीविया और इटली जैसे देशों में किया जाता है। यानी मामूली जर्माना किया जायेगा या पासपोर्ट एवं ड्राइविंग लाइसेंस नहीं बनाया जायेगा, सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी, बैंक खाता नहीं खोलने देंगे या चार पॉच बार लगातार मतदान न करने पर मताधिकार ही छिन जायेगा। इस तरह के दबावों का ही परिणाम है कि अनेक देशों में 98 प्रतिशत मतदाता वोट डालने जाते है। इटली में तो अनिवार्यता हटा लेने पर भी 90 प्रतिशत से अधिक मतदान होता है, क्योंकि मतदान करना अब लोगों की आदत बन गया है। मतदान न करना वास्तव में अपने मौलिक अधिकार की उपेक्षा करना है। यदि भारत में मतदान अनिवार्य हो जाये तो चुनावी भ्रष्टाचार घट जाएगा। वोटरों को मतदान केन्द्र तक धकेलने में अरबों रूपये खर्च होता है, शराब की नदियॉ बहती है, जात और मजहब की ओट ली जाती है तथा असख्य अवैध हथकण्डे अपनाये जाते हैं। इन सब से मुक्ति मिलेगी लोगों में जागरूकता बढेगी, वोट बैंक की राजनीति कमजोर पडेगी जिस दिन भारत के 90 प्रतिशत से अधिक नागरिक वोट डालने लगेंगे राजनीतिक जागरूकता इतनी बढ जाएगी की लोग जनमत संग्रह, जन प्रतिनिधियों की वापसी, सानुपातिक प्रतिनिधित्व और सुनिश्चित अवधि की विधान पालिका और कार्यपालिका की मांग भी मनवा कर रहेंगे। जिस दिन भारत की संसद और विधान सभाओं में केवल ऐसे सदस्य होंगे जिन्हें अपने क्षेत्र के 50 प्रतिशत से ज्यादा मतदाताओं ने चुना है, कल्पना कीजिए की हमारा लोकतन्त्र कितना मजबूत हो उठेगा। किसी एक सीमित जाति अथवा मजहब के मतदाता को बडी सरलता से प्रभावित किया जा सकता है लेकिन जब शत प्रतिशत मतदान होगा तो क्या उस निर्वाचन क्षेत्र के एक-एक व्यक्ति को भ्रष्ट करना आसान होगा? तब इस प्रकार का गोरखधन्धा करने वाले प्रत्याशी और पार्टी के सभी मतदाताओं तक पहुंच निश्चित ही असम्भव बात होगी। इसलिए मतदान अनिवार्य होते ही आज जो वोट बैंक की राजनीति है वह निष्प्रभावी हो जावेगी। यदि अनिवार्य मतदान को लागू किया जाए तो भारतीय लोकतन्त्र अधिक स्वस्थ, सुदृढ एवं पारदर्शी बनेगा। फिलहाल दुनिया के अनेक दशों में लागू अनिवार्य मतदान की पद्धति दुनियां के सबसे बडे लोकतन्त्र में लागू हो गयी तो अमेरिका और ब्रिटेन जैसे पुराने सशक्त लोकतन्त्र को भी भारत का अनुसरण करना पड़ सकता है। लोकतन्त्र की मजबूती के लिए आदर्श स्थिति यही है कि हरेक मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग करें। क्या व्यवस्था को सफल बनाने के लिए दुनिया के हर समाज में कुछ अधिकारों को नियन्त्रित नहीं किया है? गुजरात सरकार ने देश में पहली बार लोकतान्त्रिक प्रक्रिया मजबूत करने की दृष्टि से मतदान की अनिवार्यता सम्बन्धी विधेयक लाकर एक साहसिक एवं प्रशंसनीय कदम उठाया है। विधेयक के कानून में तब्दील होते ही गुजरात में स्थानीय संस्थाओं जैसे महानगरपालिका, नगरपालिका और पंचायत चुनाव में मतदान अनिवार्य किया जायेगा। इससे जनादेश स्पष्ट होगा यह पहल इतनी अच्छी है कि इसके विरोध में कोई तर्क नहीं टिक

सकता। आज नहीं तो कल, सभी दलों को इस पहल का स्वागत करना होगा, क्योंकि भारतीय लोकतन्त्र में यह नयी जान फूंक सकती है। सजा का प्रावधान ऐसे हो, जिसकी भरपायी गरीब से गरीब मतदाता सरलता से कर पाये। मतदान की अनिवार्यता अल्पसंख्यक व जातीय समूहों को वोट बैंक की लाचारगी से भी छुटकारा दिलायेगी। राजनीतिक दलों को भी तुष्टिकरण की राजनीति से निजात मिलेगी। साम्प्रदायिक व जातीय आधार पर ध्रवीकरण की जरूरत नगण्य हो जायेगी। ऐसे हालात यदि निर्मित होते हैं तो भारतीय राजनीति संविधान के उस सि़द्धान्त का पालन करने को विवश होगी जो सामाजिक न्याय और समान अवसर की वकालत करता है। उक्त साहसी कदम की कुछ लोगों ने प्रशंसा भी की है लेकिन अधिकतर राजनीतिक दल इस पर मौन है। हांलाकि इसमें कुछ दोष हो सकता है लेकिन अभी शुरूआत है, भविष्य में संशोधित विधेयक लाकर इन कमियों को भी दूर किया जा सकता है। परिणामस्वरूप देश में एक नये युग का सूत्रपात होने की उम्मीद बढेगी।

भारत में चुनाव सुधारों को लेकर बहुत ज्यादा संजीदगीं नहीं है। ऐसे में यह सुझाव की मतदाताओं को 'Right to Recall' का अधिकार मिलना चाहिए। जहां ज्यादातर 50 फीसदी मतदाता अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हों वहां किसी क्षेत्र के उम्मीदवारों को वापस बुलाने का अधिकार कैसे दिया जा सकता है। यह अधिकार बडे स्तर पर धनराशि की फिजूल खर्ची का कारण भी बनेंगे लिहाजा पहले मतदान की अनिवार्यता के प्रति मतदाताओं को जागरूक किया जाए, ताकि विकल्प की सार्थकता साबित हो सके। यूरोप के अनेक देशों में अपने मताधिकार का प्रयोग करना आवश्यक है। अमेरिका में ऐसा कोई बन्धन नहीं है, तो वहां भी औसतन 50 –55 प्रतिशत मतदान होता है। बहरहाल यहां यूरोपीय देशों की देखा देखी कानून नहीं बनाये जा सकते। वहां और यहां के समाज, शिक्षा के स्तर, यातायात के साधनों और प्रशासनिक चुस्ती में बहुत फर्क है लेकिन इस दिशा में आगे बढने की कुछ कोशिशें जरूर की जा सकती हैं। मसलन पहले इसे आयकर का रिर्टन भरने वालों और स्नातकों के लिए अनिवार्य बनाया जाये। दूसरे चरण में उन लोगों के लिए जरूरी बनाया जाये जो कम से कम बोर्ड की परीक्षा में भाग ले चुके हैं। यह धीमी प्रगति होगी, लेकिन इसका लाभ भी होगा। तकनीकी क्षेत्र में देश की प्रतिभा का उपयोग करके हम चुनावों को और अधिक सुरक्षित और आसान बना सकते हैं। प्रयोग के तौर पर कुछ जगहों पर वकैल्पिक ऑन लाइन वोट देने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। जो लोग अपने मतदान केन्द्र से काफी दूर होंगे वे डाक या इन्टरनेट या मोबाइल फोन से वोट कर सकते हैं। जो लोग बीमारी, यात्रा, दुर्घटना या किसी अन्य अपरिहार्य कारण से वोट नहीं डाल पायेंगे, उन्हें कानूनी सुविधा मिलेगी। देश में जहां पर सम्भव हो मोबाइल बूथ बनाये जाएं। शुरू में यह काम कठिन लगेगा पर जब देश के सभी नागरिकों का डाटा बन जाएगा तो लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को गहरायी और सार्थकता प्रदान करने की दिशा में अनिवार्य मतदान एक महत्वपूर्ण कदम होगा। सारतः कहा जा सकता है की जहाँ एक ओर देश में मतदान की अनिवार्यता को लागू करना मजबूत लोकतंत्र की और एक सार्थक कदम हो सकता है वहीँ दूसरा पक्ष यह भी है की यह प्रावधान व्यक्ति की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन भी करेगा। उक्त दोनों में से कौनसा पक्ष सही है, इसका फैसला तो माननीय न्यायालय ही कर सकता है लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है की इस प्रकार के विधेयक के पीछे की मूल भावना जरूर अच्छी है जिसका उद्देश्य निश्चित तौर पर भारतीय लोकतंत्र को सशक्त बनाना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बिर्च, सराह, ''फुल पार्टिसिपेशन : अ कम्परेटिव स्टडी ऑफ वोटिंग,'' युनाइटेड नेशन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2009*
2. *बेनर्जी, मुकुलिका, ''व्हाई इण्डिया वोट्स ?'' रॉउटलेज इंडिया, न्यूयॉर्क, 2014*
3. *कुमार संजय एवं राय, प्रवीन,''मेजरिंग वोटिंग बिहेवियर इन इण्डिया'', सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013*
4. *लेविन, जोनाथन,''द केस ऑफ कम्पलसरी वोटिंग,'' द नेशनल इन्ट्रेस्ट, 2 नवम्बर, 2012*
5. *नॉरिस, पिप्पा,''इलैक्ट्रॉल इन्जीनियरिंग : वोटिंग रुल्स एण्ड पॉलिटिकल बिहेवियर,'' कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयॉर्क, 2004*
6. *वाजपेयी, अनन्या,'' राइटिअस रिपब्लिक : द पॉलिटिकल फाउण्डेशन ऑफ मॉर्डन इण्डिया,'' हॉर्वड यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज, 2012*
7. *कम्पलसरी वोटिंग अराउण्ड द वर्ल्ड, द गॉर्जियन, 4 जुलाई, 2005*

8. लोकतन्त्र समीक्षा, संवैधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली
9. वर्ल्ड फैक्ट बुक : सफरेज, सेन्ट्रल इन्टेलीजेन्स एजेन्सी
10. द इकोनॉमिक टाइम्स, 23 दिसम्बर, 2009 एवं 06 अक्टूबर 2013
11. हिन्दूस्तान टाइम्स, नई दिल्ली
12. द हिन्दू
13. राजस्थान पत्रिका, राजस्थान, जयपुर
14. www.eci.nic.in
15. www.wikipedia.org/wiki/election-commission of- india
16. www.wikipedia.org/wiki/compulsory-voting

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित शोषण

रीना महतो
शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन युग की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त अनेक समस्याओं को आधार बनाया। भारत की स्वाधीनता की लड़ाई राष्ट्रवादी विकास के एक खास बिंदु पर समाप्त अन्ततः एक टूटता हुआ स्वप्न था। देश के स्वतंत्रता पूर्व विदेशियों का शोषण और स्वतंत्रता के बाद सत्ताधारी राजनेताओं का शोषण भारतीय जनता को सहना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीयता के विकास का सिलसिला उसी प्रकार अधूरा रह गया, जिस प्रकार मानवतावाद और बुद्धिवाद के विकास का सिलसिला। नागार्जुन के कथा साहित्य में किसानों का शोषण, सांमती व्यवस्था और उसकी रूढ़ियों के भीतर स्त्री के तरह-तरह के शोषण, दमन और उत्पीड़न की त्रासद स्थितियों का वर्णन है।

संकेताक्षर : *नागार्जुन उपन्यास, जमींदारी, नारी, शोषण।*

प्रत्येक युग में समाज में आर्थिक विषमता परिलक्षित होती है। चाहे कोई देश कितना ही समृद्ध संपन्न क्यों न हो। समाज में आर्थिक स्तर पर अमीर और गरीब लोग रहते ही है। और हम सभी जानते है, कि समाज दो वर्गो में विभक्त रहता है। और इस वर्गीकरण का आधार आर्थिक है। अमीर वर्ग अर्थात साधन संपन्न वर्ग और गरीब अर्थात साधन विहीन वर्ग। इसमें से अमीर वर्ग हमेशा से गरीबों को सताता रहा है। और शोषित वर्ग इसके विरुद्ध संघर्ष करता रहता है। जिससे उन्हें मुक्ति मिले। समाज में इन दो वर्गो के बीच का संघर्ष जितना प्रखर होता है, उतनी ही प्रखरता से शोषित वर्ग शोषक के विरूद्ध संघर्षरत रहता है। इससे सामाजिक जीवन में उतनी ही तीव्रता से प्रगति संभव होती है।

उपन्यासकार नागार्जुन के कुछ उपन्यासों में शोषण के विभिन्न आयामों और संघर्ष का चित्रण हुआ है। वे स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की स्थिति से भी परिचित थे, और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी। नागार्जुन के उपन्यासों में दोनों ही स्थितियों का समावेश मिलता है। अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजों दवारा शोषण हुआ, सांमती समाज में यह शोषण जमींदारों दवारा और औद्योगीकरण से पूँजीपत्तियों दवारा जारी रहा। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी गरीबों का शोषण सत्ताधारी नेताओं द्वारां होता रहा। नागार्जुन के 'बलचनमा','वरूण के बेटे', 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बटेसरनाथ', 'उग्रतरा' 'दुःखमोचन' आदि उपन्यासों में शोषित जनता के शोषण का चित्रण हुआ है।

अंग्रेजी हुकुमत से उत्पन्न अव्यवस्था और संघर्ष को 'बाबा बटेसरनाथ' शीर्षक उपन्यास में दिखाया गया है। इसमें महात्मा गाँधी के देशव्यापी आंदोलनों का चित्रण है, तथा साथ ही उससे उत्पन्न जनता के कष्टों, शोषण उत्पीड़न आदि को रेखाकिंत किया गया है। बाबा बटेसरनाथ (एक वटवृक्ष) के माध्यम से पूरी कथा कही गयी है।

1920 ई. का असहयोग आंदोलन, 1923 ई. में नागपुर में झंडा-सत्याग्रह और 1942 ई. का जन आंदोलन आदि में अंग्रेजो द्वारा भारतीयों पर हुए शोषण और अत्याचार को अभिव्यक्त किया गया है। गरीब जनता के दयनीय जीवन का चित्रण दिखाया गया है। इन आंदोलनों के अतिरिक्त और भी अत्याचारों और संघर्षो का चित्रण हुआ है। सरकार ने जमींदारी -उन्मूलन शुरू किया। जमींदार पहले से ही चौकस थे। उन्होंने सार्वजनिक उपयोग वाली भूमियों को बेचना प्रांरभ किया। लालची लोग तो हर जगह होते है। उपन्यास के दो पात्रों टुनाई पाठक और जैनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगदवाली जमीन और पुरानी पोखर चुपचाप बंदोबस्त में ले ली। गाँव वालो का मालूम हुआ तो वे क्रोध और धृणा से सुलग उठे।

''सुलग उठना तो उनके अपने बस की बात थी लेकिन बेदखली का रूकना उन्हें बूते से बाहर की बात लगी। गाँव के दो–तीन जवान थाना–अदालत–कचहरी से लेकर कांग्रेस–कमेटी–असेंबली–पार्लियामेटं के प्रभुओं तक दौड़–धूप करने लगे। क्या ऊपर, क्या नीचे सब जगह लाल–फीता सचाई और न्याय के गले को कसे हुए था। नेताओं का आश्वासन एक ओर और नौकरशाहों की मनमानी दूसरी ओर, जमींदार की तिकड़म एक ओर और जनसाधारण की बेबसी दूसरी ओर... सिर्फ उत्साह भला क्या कर लेगा।''[1]

भारत वर्ष का समृद्ध–संपन्न होना ही बाहरी लोगों के आकर बसने का प्रमुख कारण रहा। यहाँ के धन संपदा की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। अंग्रेजी सत्ता का दुष्परिणाम यहाँ के साधारण जनता को भुगतना पड़ा। अंग्रेजों द्वारा जमींदारी प्रथा लागू होने से कृषक जीवन और भी दयनीय हो गया। ग्रामीण लोगों को बहुत कष्टों का सामना करना पड़ा। अंग्रेजी हुकूमत के साम्राज्य वाद ने भारत के स्थानीय उद्योगों का नाश कर दिया। इग्लैंड में निर्मित कपड़े, लोहे के सामान और हर प्रकार के माल आयात होने से यहाँ के सभी प्रकार के उद्योगों का पतन हो गया।

मशीनीकरण प्रक्रिया ने श्रमिकों को बेकार बना दिया। प्राकृतिक आपदा अकाल के समय में भी गरीबों का शोषण चरम पर था। अंग्रेज शासकों द्वारा इस परिस्थिति को भली भाँति अपने लाभ के लिए उपयोग किया गया। कठिन परिश्रम करने के बावजूद उन्हें पर्याप्त पारिश्रमिक नहीं मिलती थी। जिससे उनका जीवन निर्वाह हो सके। एक वक्त का खाना के लिए भी पर्याप्त नहीं होता था। गरीबों पर अंग्रेजों के अत्याचारों की कोई हद नहीं। मनमाने ढंग से प्रताड़ित किया जाता था। इसी उपन्यास में एक प्रसंग है, जहाँ जैकिसुन के दादाजी पर हण्टरों की बौछार पड़ती है क्योंकि वह साहब को सलाम करने से चूक गया था। जो आगे की पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है ''तुम्हारे दादा को जौन साहब के साले ने महज इसलिए पीट दिया एक बार कि वह सलाम करने से चूक गया था। बाजार से आ रहा था। एक हाथ में तेल का बर्तन था, दूसरे में मछली लटक रही थीं, बगल से लाठी दबा रखी थी और माथे पर अरहर की छोटी–सी गड्डर। इधर से घोड़े पर सवार गोरा जा रहा था, जौन साहब का साला। दोनों एक–दूसरे को पहचानते थे। तेरा दादा आपा खोकर कुछ सोचता चला जा रहा था। उसे साहब को सलाम करने का ख्याल ही न रहा। अगले ही रोज साहब के सामने अधिक भाई की पीठ पर हंटरों की बौछार पड़ी...ता जिंदगी तेरे दादा की पीठ पर हंटर के वे निशान बने रहें।''[2]

ये बाते बाबा बटेसरनाथ ने जैकिसुन से कहा है।

इस प्रकार जमीदारों द्वारा भी निरीह जनता पर शोषण किया जाता था। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में जमींदार रायबहादुर दुर्गानंदन सिंह ऐसे जमीदंार का प्रतिरूप है जो गाँव के मालिक है और ग्रामीण जीवन के नियन्त्रा भी। इन्हीं के द्वारा सब निर्णय मान्य होता है ये जमींदार अन्याय और अत्याचार के केन्द्र हुआ करते थे–''आसपास की पाँच कोस जमीन पर उनकी छत्रछाया थी। तीन लाख रूपये पचीसों बस्तियों के इस समुद्र में दाँत निपोड़े पूँछ कड़ी किए मगरों की भाँति टहल बूल रहे थे। व्याज की दर प्रति मास डेढ़ रूपये सैकड़ो थी। राजाबहादुर पुराने अँगूठे को साल–साल नया करवाते जाते। सूद भी मूल बनता जाता। चक्रवृद्धि का यह क्रम राजाबहादुर की शरीर वृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था । कहते है, हवेली में नकद रूपये रखने के लिए उन्हें चहबच्चा बनाना पड़ा था।''[3]

गाँव के संपन्न जमींदार गरीबों के श्रम का निर्दय शोषण करते है। 'बलचनमा' शीर्षक उपन्यास में बलचनमा और उसके परिवार के अन्य सदस्यों पर मालिक और मालकिन के अत्याचार को दिखाया गया है। बलचनमा अपने पिता के उस भूल के विषय में कहता है कि उसके पिता ने दोपहर के समय बाग से दो किसन भोग (कलमी आम की एक किस्म) तोड़ लाए थे। किसन भोग आम खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है। तोड़ते हुए तो किसी ने नहीं देखा, परंतु आम सोहते समय किसी ने चोरी –छिपे देख लिया था और जाकर मालिक से चुगली कर दी। उससे जो दशा हुई उसके वर्णन मात्र से सिहरन उत्पन्न हो जाती है–''मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभेली के सहारे कसकर बाँध दिया गया था।...सभी पर बाँस की कैली के निशान उभर आए है। चोट से कहीं –कहीं खाल उधड़ गई है और आँखों से बहते आसुओं के टघार गाल और छाती पर से सूखते हुए नीचे चले गए है... चेहरा काला पड़ गया है। होंठ सूख रहे है। अलग कुछ दूर पर छोटी चौकी पर यमराज की भाँति मझले मालिक बैठे हुए हैं।

...मेरी दादी कांपते हाथों मालिक के पैर छाने हुए है।

उसके मुँह से बेचैनी में बस यही एक बात निकल रही है कि दुहाई सरकार की, मर जाएगा ललुआ! छोड़ दीजिए सरकार! अब कभी ऐसा न करेगा' दुहाई मालिक की! दुहाई माँ–बाप की...।''[4]

इसी उपन्यास में उपन्यासकार ने तत्कालीन निम्नवर्गीय शोषण का बखुबी वर्णन किया है। मालिकों के यहाँ काम तो कम नहीं होता है सुबह से लेकर शाम तक काम में लिप्त और फिर शाम के बाद बचे हुए कामों को निपटाना। शोषण केवल श्रम तक सीमित नहीं था। सूद, ब्याज आदि के नाम पर संपन्न जमींदार मेहनतकश वर्ग को जिदगी भर निचोड़ते रहते थे। निम्नवर्गीय लोगों पर जमीदांरों का जैसे जीवन भर का अधिकार था। छोटी–छोटी गलतियों के लिए बेरहम सजा मिलती थी। जो किसी भी तरह से उचित नहीं होता था। बलचनमा कहता है–''मैं तो सिर्फ चरवाहा ही नहीं था, उनका बहिया भी था। मेरी हड्डी–हड्डी, नस–नस और रोएँ–रोएँ पर उनका मौरूसी हक था। पोसने–पालने, सड़ाने–गलाने और मारने–पीटने का भी उन्हें पूरा हक था।''[5]

इस प्रकार बलचनमा उपन्यास में शोषण की चरम सीमा का चित्रण हुआ है।

'वरूण के बेटे' शीर्षक उपन्यास मछुओं के जीवन का एक मात्र जीविकापार्जन का साधन गाँव का विशाल जलाशय गढ़पोखर है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के समय जमीदांर लाभ कमाने के लोभ से जनता के हित को दरकिनार कर अपने पास की भूमि पोखर आदि एक–एक करके बेचने लगते है। जिससे लोगों की परेशानी बढ़ जाती है।''गरोखर और उससे पश्चिम कोस –भर का इलाका देपुरा के मैथिल जमीदांरों के अधिकार में था। कभी वे सचमुच 'बाबू साहेब' और 'सरकार' थे। तिरहुत के खानदानी शासक... व्यक्तिगत जोत की जमीन, बाग–बगीचे, कुआँ–चमच्चा और पोखर, देवी–देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चरागाह, परती–परौत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ–एक अचल सपंतियों के मामले में जमीदांरी–उन्मूलन कानून ने भू–स्वामियों को खुली छुट दे दी। नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चरागाहों तक को वे चुपके–चुपके बेचने लगे– आग लगते झोपड़ी जो निकले सो लाभ।''[6]

नागार्जुन के अन्य उपन्यासों में भी शोषण का चित्रण हुआ है। जिनमें नारी विषयक उपन्यासों में नारी का शोषण दिखाया गया हैं, जैसे– कुंभीपाक, रतिनाथ की चाची, उग्रतारा आदि। उपन्यासकार ने देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थितियों का भी चित्रण किया है जिसमें मुख्य रूप से सत्ताधारी नेताओ द्वारा जनता का शोषण और कहीं–कहीं भ्रष्टाचार को भी उजागर किया है। कुंभीपाक उपन्यास जो पटना और बंगाल के महानगरों में होनेवाले स्त्री व्यापार पर आधारित है। पुरूष प्रधान समाज, जिसमें स्त्री को बिकाउ समझा जाता है। वहाँ स्त्री का शोषण होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्त्री का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं बच पाता है, असली नाम भी बदल जाता है। भुवन यानी इंदिरा, चंपा यानी बुआ, कंपाउंडर की पत्नी उर्फ निर्मला, प्रतिभामा आदि सभी शोषित नारी समाज के विभिन्न पहलू है। नारी शोषण के हिसाब से चंपा का शोषण वैध्वयजनित है। जो समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। इंदिरा जो विधवा होने के बाद गर्भवती हो जाती है, और एक पुरूष द्वारा धर्मशाला में छोड़ दी जाती है। जहाँ से वह लड़कियों के व्यापार करनेवाले के हाथों में पहुँच जाती है। उम्मी की माँ शोषित है। गृहस्वामी पुरूष के अधीन रहने में वह अभिशप्त है।

'उग्रतारा' शीर्षक उपन्यास में भी नारी शोषण को मुखरित किया गया है। उगनी या उग्रतारा कम उम्र में ही विधवा हो जाती है। रूप–यौवन से पूर्ण उगनी पुनर्विवाह के बारे में सोच भी नहीं सकती थी। पुनर्विवाह करना समाज के विरूद्ध था। आश्रयहीन उगनी को जबरन पचास साल के अधेड़ भभीखनसिंह अपनी घरवाली बनाता है। यह सब उगनी के इच्छा के विपरीत घटित हुआ। वह कामेश्वर नामक राजपूत नौजवान के प्रति आकर्षित थी। जिसकी पत्नी की मृत्यु विवाह के छः माह बाद हो चुकी थी। दोनों की स्थिति एक थीं, इसलिए दोनों गाँव से भाग जाते है। और पकड़े जाने पर दोनों को जेल की सजा होती है। उगनी के जेल में सजा के दौरान भभीखनसिंह का व्यक्तत्व है– ''उम्र तो पच्चीस–छब्बीस से ज्याद तो क्या रही होगी। लेकिन उम्र से क्या आता जाता है। पहले मिजाज का तो पता चले... सिपाहीजी ने अपने को संभाला और अगले कमरों के छोर तक जाकर वापस आए और पहले कमरे के सामने ठिठककर खड़े हो गए... यहीं पहली बार मैंने उगनी को देखा था।... महीने भर की सादी सजा थी। पंद्रह–सोलह दिन गुजर चुके थे। चार–छह रोज और गुजर गए, मगर उगनी ने मेरी तरफ नही देखा। इस ओर पहली दीवार से सटकर लेटी रहती थी।''[7]

इसमें मानसिक शोषण को रेखाकिंत किया गया है। शोषण का रूप चाहे किसी भी प्रकार का हो, मनुष्य को दुख और पीड़ा झेलनी ही पड़ती है। शोषण आर्थिक, शारीरिक और मानसिक प्रकार का हो सकता है। एक व्यक्ति का अपने बेटी समान लड़की के प्रति मन में इस प्रकार की भावना रखना ही उसके उद्ण्डता को दर्शाता है। और कहीं न कहीं नारी की विवशता को कमजोरी मानता है। इस प्रकार पुरूष जाति की मानसिकता नारी के प्रति अच्छा नहीं कहा जा सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने तत्कालीन समाज में घटित हो रही सभी प्रकार के शोषण को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। शोषण जनित समस्याओं को उजागर किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नागार्जुन रचनावली – खण्ड 4, सं–शोभाकांत, पृ–348, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2003 ई.*
2. *नागार्जुन रचनावली – खण्ड 4, सं–शोभाकांत, पृ–394, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2003 ई.*
3. *रतिनाथ की चाची–नागार्जुन– पृ–83, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –1995 ई.*
4. *नागार्जुन रचनावली– खण्ड 4, सं–शोभाकांत, पृ–127, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2003 ई*
5. *नागार्जुन रचनावली– खण्ड 4, सं–शोभाकांत, पृ–135, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2003 ई*
6. *नागार्जुन रचनावली– खण्ड 4, सं–शोभाकांत, पृ–462, राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण– 2003 ई.*
7. *नागार्जुन रचनावली– खण्ड 5, सं–शोभाकांत, पृ–310–311, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण –2003 ई.*

जैन सन्तों का पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में योगदान

डॉ. सुनिता टांक (सांखला)
व्याख्याता, दयानन्द आर्य बालिका महाविद्यालय, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पर्यावरण संरक्षण का समस्त मानव जीवन तथा इस धरती के समस्त प्राकृतिक परिवेश से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः पर्यावरण के संरक्षण से ही धरती पर जीवन संरक्षण संभव है इसके लिए हम अपने चारों और के वातावरण को संरक्षित करें तथा उसे जीवन के अनुकूल बनाये रखे। प्राचीन काल से ही जहाँ वैदिक धर्म में पर्यावरण संरक्षण की बात कही गई वही जैन धर्म में महावीर स्वामी द्वारा पर्यावरण संरक्षण पर शिष्यों को उपदेश देने के उल्लेख मिले है तथा जैन धर्म में ही वनस्पति जगत में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर दिया था जिसे विज्ञान भी मानता है। पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए इससे मानव जीवन को कई विपदाओं का सामना करना पड़ सकता है। जैन मुनियों के अनुसार सभी जीवों का प्रकृति से गहरा सम्बन्ध है अतः अहिंसा आधारित वन्य संरक्षण पर बल दिया। जैन सन्तों ने पृथ्वी प्रदूषण के अनेक कारण बताये कृषि कार्यों हेतु रासायनिक उर्वरक, जंगलों का कटाव, खनन तथा परमाणु परीक्षण, कीटनाश दवाऐं जो कई बीमारियों का कारण बनते है जिनसे लाखों पक्षी मर भी जाते है। इसी से मिट्टी प्रदूषण भी पशु-पक्षी व मानव जगत को प्रभावित करता है। इसी प्रकार जल प्रदूषण से जल कायिक जीवों की हिंसा होती है। सूर्य और चन्द्रमा भी पर्यावरण को प्रभावित करते है जिसका बहुत ही सुन्दर तरीके से उल्लेख किया गया है। अग्नि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण सभी पर वैज्ञानिक कारणों सहित पर्यावरण संरक्षण को परिभाषित किया है। निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि जैनाचार्यो द्वारा वायुमण्डल के प्रदूषित होने से बचा लेने का अथक प्रयत्न किया है व वनस्पति सम्प्रदा को सुरक्षित रखने का सर्वाधिक कार्य किया है।

संकेताक्षर : *जैनाचार्य, तीर्थकर, पर्यावरण, चेतना, जीव-जगत, वन्य संरक्षण, रासायनिक, उर्वरक, परिशोधन।*

पर्यावरण जिसका शाब्दिक अर्थ होता है परि+आवरण अर्थात् हमारे चारों और का वातावरण अर्थात् जो हम अन्न, जल खाते जो प्राण वायु लेते, जिससे हमारा जीवन आगे बढ़ता यही पर्यावरण है। पर्यावरण के संरक्षण की बात जहाँ वैदिक धर्म में मिलती वही पृथ्वी को बचाने की बात महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद से कही। धरती को बचाने के उपदेश जहाँ ईसा मसीह ने दियें वहीं बात जैन तीर्थंकरों ने बढ़ चढ़कर कहीं। महावीर स्वामी ने सदैव पर्यावरण के संरक्षण एवं परिवर्धन को आधार बनाकर अपने शिष्यों को उपदेश दिये जिसमें प्रकृति के साथ जवाब देही न रखने को प्राणी जगत के लिए खतरा बताया है। जैन धर्म में दो हजार पांच सौ वर्ष पूर्व ही वनस्पति जगत में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध कर दिया था जिसे आज विज्ञान भी मानता है।[1]

आचारांग, दशवैकालिक, मूलाचार, भगवती आराधना आदि समस्त जैन ग्रन्थों में षड्कायिक जीवों की हिंसा से विरत रहने का उपदेश दिया गया। पर्यावरण चेतना पशुपक्षियों और वनस्पति जगत से विशेष सम्बन्ध है। जैन संत ऐसा मानते है कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने से हम नई-नई विपदाओं को आमंत्रित करते है। यह उल्लंघन प्रायः लालच और स्वार्थ की वजह से होता है।

पर्यावरण संरक्षण और जैन धर्म

जैन मुनियों ने सदैव पर्यावरण के बचाव हेतु प्रयत्न किये उनका मानना था कि सभी जीवों का प्रकृति से गहरा

सम्बन्ध है। सभी एक दूसरे पर निर्भर है। किसी एक के साथ भी हिंसा से पर्यावरण में गड़बड़ हो जाती है। इसी कारण जैन धर्म में अहिंसा सिद्धान्त सर्वोपरी है। जैन मुनियों ने अहिंसा आधारित वन्य संरक्षण पर बल दिया एवं जीवों की सुरक्षार्थ एक विशुद्ध पर्यावरण के निर्माण पर बल दिया। जैन संतों ने पृथ्वी के प्रदूषण के भी अनेक कारण बताए जिसमें कृषि कार्यो में काम में लिये जाने वाले रासायनिक उर्वरक जंगलों का अविरल कटाव एवं खनन तथा परमाणु परीक्षण भी पृथ्वी के विनाश के लिए उत्तरदायी बने है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों ने कहा है कि कीटनाशक दवाओं के अंधा-धुंध प्रयोग से माताओं के दूध B.H.C. के अल्फा बीटा गामा व डेल्टा आई सोमल मिले हुए है। पेसटीसाइड भी वर्षा जल के साथ घुलकर पृथ्वी में पहुंचते है व समुद्री जीवों के लिए खतरा बनते है। डी. डी. टी. के प्रयोग से कैंसर यकृत में सूजन एवं पीलिया जैसे रोग आम हो गये है साथ ही इन कीटाणुनाशकों से लाखों पक्षी मर जाते है। खाद्य पदार्थो में मिलने से ये कीटनाशक दवाएं गर्भपात एलर्जी एवं मानसिक रोग उत्पन्न कर देती है।[2]

मिट्टी या भूमि पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है जैनधर्म की दृष्टि से वह एकेन्द्रिय जीव है इसमें चेतना है यह सांस भी लेती है और गंदगी को दूर करती है। मिट्टी का प्रदूषण वनस्पति और पशु-पक्षी तथा मानव जगत को प्रभावित करता है जहाँ मिट्टी लवणमय हो जाती है वहाँ वर्षा जल नीचे नहीं जा पाता और फसले भी नहीं उग पाती डी. डी. टी. नाईट्रोजन तथा फासफौरस उपयोगी अवश्य है पर मिट्टी पर बुरा प्रभाव पड़ता है। सीसा, पारा, केडमियम आदि धातुएं मिट्टी पर फेंक दी जाती है जिससे प्रदूषण बढ़ जाता है।

जल प्रदूषण एवं जलकायिक जीव

जल एक प्राकृतिक स्त्रोत है पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल होते हुए भी मानव उपयोग योग्य जल की मात्रा बहुत कम है अधिकांश जल समुद्री, जल है उपयोग भोग्य जल के स्त्रोत, धाराएं, झीले, नदियां, तालाब, जलाशय, संचित वर्षा जल झरने व कुएँ है। जल वस्तुतः जीवन है[3] सर्वोपयोगी है इसलिए संरक्षणीय जैन संतो द्वारा जल के परिशोधन के निम्न उपाय बताए है :-

1. जल में विद्यमान केल्शियम तथा मैग्नीशियम के कार्बोनेट और सेल्फेटो को दूर करने की दृष्टि से जल को उबाल लेना सोडा आदि के द्वाराउसके क्षारत्व को कम कर देना।
2. पेयजल के स्त्रोतो, तालाब, नदी कुंआ आदि के चारों ओर दीवार बनाकर गंदगी से दूर रखना।
3. नदी, तालाबों आदि के आस-पास स्नान करना वस्त्रादि धोना वर्जित हो।
4. पेयजल के स्त्रोतो में पशुओं को न नहलाये।
5. कृर्षि कार्यों में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग कम हो।
6. औद्योगिक जल को पेयजल स्त्रोतो से दूर रखा जाएं।
7. जल में अणु परीक्षण बंद हो।
8. नदी-नालों के पास में कल-कारखानों को बंद किया जाए।

जल प्रदूषण से जल कायिक जीवों की हिंसा होती है आचांग सूत्र में कहा गयाहै कि जो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है। उसे जलीय चेतना को भी स्वीकार करना चाहिए। इसका कारण है जल द्रव है वह शस्त्र से प्रभावित नहीं होता उसमें अंधे या बहरे आदि की तरह अव्यक्त चेतना होती है और सभी जीवों के समान उसमें कष्टानुभूति होती है। आश्चर्य है लोग मान-सम्मान पूजा प्रतिष्ठा या जन्म मरण के दुखः से मुक्त होने के लिए लोग जीवों का आरंभ-समारंभ करते है।

पृथ्वी के नीचे ऊपर कूप, तालाब, नदी, सरोवर, पर्वतीय जल स्त्रोत, झरने, द्वीप, समुद्र और जलाशय सभी स्त्रोतो में औषधियां मिली रहती है इनमें स्नान करना स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। ऐसे विशुद्ध जल में तीर्थंकर नेमिनाथ को नहलाया गया था। जल की शुद्धता एवं उपयोगिता के बारे में जैन मुनियों ने अनेक बातें कही जैन परंपरा में जल के परिमित उपयोग पर बल दिया गया है उसे छानकर काम में लेने का विधान बनाया गया है। अनर्थ दण्ड नामक पाप को इससे जोड़कर जैनधर्म में पर्यावरण को और भी सुगठित कर दिया है। जैन धर्म में गंगा, नर्मदा, नदियों में स्नान करने से पाप धुलते है इस प्रकार के अंधविश्वास का भी खंडन किया है।[4]

सूर्य और पर्यावरण

सूर्य हमारे पर्यावरण का अभिन्न अंग है वह समुद्र और नदी-नालों के पानी को भाप के माध्यम से सोंककर वर्षा करता है वहीं वर्षा खेती को फैलाती है और हमारे

लिए पीने का पानी देती है पशु पक्षी एवं समूचा वनस्पति जगत, वायु जगत सूर्य की कृपा पर निर्भर है सूर्य, सौर मंडल का केन्द्र है ग्रह नक्षत्र उससे प्रभावित होते है। सौर विकिरणों का संबंध महामारी जैसी विकट बीमारियों और भूकंपों से रहता है। पृथ्वी का सारा मौसम सूर्य पर आधारित होता है।

सूर्य की तरह चन्द्रमा भी हमारे पर्यावरण को प्रभावित करता है। डॉ. फ्रेंक ब्राउन ने स्पष्ट किया है कि शुक्ल पक्ष में पौधे लगाने से उनमें बीस प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है चन्द्रकलाओं से प्रभावित होकर हमारे शरीर पर भी चन्द्रकलाओं का प्रभाव पड़ता है। सूर्य किरण चिकित्सा आज कल लोकप्रिय होती जा रही है। प्राचीनकाल में इसका अच्छा प्रचार था। हमारा चैतन्य जगत उदगल तत्व से प्रभावित रहता है हमारा शरीर वाणी और मन भी पददलित है वर्ण, रंग, गंध, रस और स्पर्श उसमे रहते है। रंगचिकित्सा शरीर के साथ ही हमारी प्रकृति को परिवर्तित करने में भी सहायक बनती है।[5] सूर्य की किरणों में सात रंग पाये जाते है इनमें से तीन रंग महत्वपूर्ण होते है नारंगी, हरा और नीला, लाल–पीला मिश्रित नारंगी रंग रक्त संचार में वृद्धि करता है। मांसपेशियों को स्वस्थ रखता है। गुर्दे और आंतों को प्रभावित करता है। इच्छाशक्ति को विकसित करता है। कफ जनित रोगों में लाभदायक होता है। हृदय रोग गठिया और पक्षाघात में गुणकारी है। यह खून में लाल कणों की पूर्ति करता है। मोटापा कम करता है। और माँ के स्तन में दूध की वृद्धि करता है।

जैन संतों के अनुसार पीले और नीले रंग से मिश्रित हरा रंग नाड़ी संस्थानों तथा मस्तिष्क को बल देता है मांसपेशियों का निर्माण करता है मन को प्रसन्न करता है।प्राकृतिक रंग होने से यह मैत्री भावना को उत्पन्न करता है। स्वार्थ भाव को कम करता है यह रंग वातजनित रोगो पर अधिक लाभकारी होता है। मलेरिया, नेत्र रोग, चर्म रोग, सूखी खांसी, अल्सर, मधुमेह, केंसर, सुजाक, रक्त चाप आदि रोगों में भी कार्यकारी है।[6] जैन संत ऐसा भी बताते है कि नीला रंग अम्लीय होता है यह कीटाणुनाशक है। जलन को शांत करता है आध्यात्मिक विकास में सहायक होता है। मन को शांत और शिथिल करता है। इस रंग का प्रयोग विशेषतः पित्त जनित रोगों पर होता है सिरदर्द, शरीरदाह, रक्तचाप, टॉसिल, डायरिया, मिर्गी, पीलिया आदि रोगो में उपयोगी है।

जैन संत ऐसा भी मानते है कि दवा जिस रंग की बनानी होती हो उसी रंग की कांच की बोतल में दवा भरकर रखनी चाहिए। रंग चिकित्सा में मानसिक एकाग्रता एवं ध्यान का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है इस प्रकार सूर्य के माध्यम से रंग चिकित्सा व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अंग है इससे पर्यावरण तो विशुद्ध होता ही है उसके साथ ही भाव चिकित्सा भी हो जाती है। सूर्य के अतिरिक्त चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु, केतु, वरूण और प्रजापति का भी उपयोग किया जा सकता है।[7]

अग्नि प्रदूषण और जैनधर्म

जैन संत अग्निकायिक जीवों में चेतना मानते है इसलिए जैन मुनि बिजली का उपयोग नहीं करते। पर्यावरण की दृष्टि से सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हम यह निश्चित कर ले कि अग्नि में भी जीव होता है आचारांग में यह बताया गया कि अग्नि में क्योंकि ऊष्मा शक्ति होती है प्रकाश शक्ति होती है ईधन के होने से उसकी वृद्धि बढ़ती–घटती रहती है, इसलिए उसका अस्तित्व है वैज्ञानिकों के अनुसार भी प्राण वायु ऑक्सीजन के बिना अग्नि प्रज्जवलित नहीं हो सकती इसलिए जैन संत अग्निकायिक जीवों की हिंसा से विरत रहता है वायुमण्डल में प्रदूषण को देखते हुए तीर्थकर महावीर का यह उपदेश बड़ा सार्थक हो जाता है कि अग्निकायिक जीवों को पीड़ित करना स्वंय को पीड़ित करना है।[8]

वायु प्रदूषण और जैन धर्म

वायु में वायुकायिक जीव रहते है इसलिए जैन मुनियों को पंखे से भी हवा करना विहित नहीं माना गया हैइसी तरह पसीने से लतपत होने पर हवा आने मार्ग पर रूक जाना चन्दन, खस आदि गंध द्रव्यों की सुगन्धी इसकी ज्वाला और प्रतिपक्ष वायु से भी वायुकायिक जीवों की हिंसा होती है। पैरों को पीट–पीटकर चलने से उत्पन्न वायु, धौकनी से उत्पन्न वायु, गीले कपड़ों के निचोड़ने से उत्पन्न वायु डकार या उच्च वास से गत वायु, पंखा डालने से उत्पन्न वायु ये वायुकायिक जीवों को कष्ट पहुंचाती है। वायु की महत्ता को देखते हुए तीर्थकंर महावीर ने वायु को एकेन्द्रिय जीव माना और उसमें व्याप्त चेतना के अस्तित्व का निर्धारण किया।आचारागं के शस्त्र परिज्ञों के सप्त उद्देश्य में वायु की सजीवता का प्रतिपादन किया गया है और ये भी

कहा गया है कि यदि व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना जाग्रत हो गई है तो वह वायुकायिक हिंसा से विरत रह सकता है।

ध्वनि प्रदूषण और जैनधर्म

जैनदर्शक में शब्द को पुदगल का पर्याय माना गया है। क्योंकि वह किसी स्कंद विशेष से टकराने पर उत्पन्न होता है वह आकाश का गुण नहीं होता है पुदगल द्रव्य का विकार है तीर्थंकर महावीर ने वायुकायिक हिंसा से बचने के लिए जो उपदेश दिये वे बड़े महत्वपूर्ण है उन्होंने वाद्य ध्वनि को भी निषेध किया। जैन मुनि बताते है कि ध्वनि दो प्रकार की होती हैः– (1) श्रव्य और (2) पराश्रव्य। श्रव्य तो सुनी जाती है पर पराश्रव्य नहीं सुनी जाती। श्रव्य ध्वनियों की तीव्रता स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है पर पराश्रव्य ध्वनि तरंगों का उपयोग स्वास्थ्य के सुधार में उपयोगी है जैन मुनि ऐसा मानते है कि रंग, प्रकाश और ध्वनि का पारस्परिक घनिष्ठ संबंध है। इन तीनों में प्रय कम्पन्न एवं तरंगे है। इन तरंगो से ध्वनि विज्ञान से संगीत की उत्पत्ति हुई है।[9]

तीर्थकर महावीर ऐसा मानते है कि संगीत ही वीरों में नया उत्साह भरता है युद्धकाल में ऐसे समय लाल रंग की प्रमुखता होती हैपशु–पक्षी वनस्पति जगत सभी संगीत से प्रभावित होते है। संगीत ऐसा प्रभावी होता है कि इससे पशुओं का दूध बढ़ जाता है वनस्पति शीघ्र पुष्पित और फलित हो जाती है इन ध्वनियों में हरे रंग की प्रधानता होती है। आज का भौतिक विज्ञान भी इसे स्वीकार करता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जैनाचार्यों ने वायुमंडल को प्रदूषित होने से बचा लेने का अथक प्रयत्न किया है उन्होंने स्वच्छ हवा में रहना स्वरूप रहने का सर्वोत्तम उपाय माना है। हवा में चार तत्व होते है प्राण वायु, शुद्ध वायु, मिश्रित वायु और जल के सूक्ष्म परमाणु। प्रदूषित वायु स्वास्थ्य के लिए बड़ी हानिकारक होती है धुआं, गैस, धूल, सड़ते हुए पेड़–पौधों की गैस आदि से हमारा वायुमंडल दूषित हो जाता है और उसमें जब हम श्वास लेते है वह स्वास्थ्य के पतन का कारण बनता है।

जैनाचार्यों ने वनस्पति सम्पदा को सुरक्षित रखने का सर्वाधिक कार्य किया। महावीर ने स्पष्ट कहा है कि जो वनस्पति कायिक जीवों की हिंसा करवाता है या अनुमोदन करता है वह स्वंय इसके लिए अहितकर हैं। जैनों की इस परम्परा ने ही उन्हें शान्त, अहिंसक और उदारक बनाया है। जैनाचार्यो के अनुसार वनस्पति जगत सर्वाधिक विस्तृत है इससे उसके संरक्षण पर अधिक जोर दिया गया।[10]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. भागचन्द जैन – जैन धर्म और पर्यावरण, पृ. सं. 110, न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, लाडनू, 2000*
2. *डॉ. नरेन्द्र भानावत – जैन संस्कृति और राजस्थान, पृ. सं. 79, सम्यक ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, 2002*
3. *नत्थुलाल गुप्ता – पर्यावरण एवं जैन धर्म, पृ. सं. 96, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1973*
4. *मोहनलाल कणेतिया–सूर्यकिरण चिकित्सा अथवा रंग चिकित्सा, पृ. सं. 27, आध्यात्म साधना केन्द्र प्रकाशन, महरौली, 1993*
5. *मुनिरूप चंद्र – जैन आगम एवं वनस्पति, पृ. सं. 203, जैन विश्व भारती, लाडनू, 1996*
6. *डॉ. प्रेम सागर जैन – जैन शोध एवं समीक्षा, पृ. सं. 50, जैन शोध विद्यापीठ, महावीर जी, राजस्थान, 1993*
7. *समुरे चन्द्र दिवाकर – अहिंसा, पर्यावरण एवं विश्वशान्ति, पृ. सं. 22, अहिंसा प्रचार समिति, कलकत्ता, 1986*
8. *डॉ. वशिष्ट नारायण – जैन धर्म में अहिंसा, पृ. सं. 74, सिन्हा सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर, 1998*
9. *मदन मोदी – श्रमण संस्कृति एवं पर्यावरण संरक्षण, पृ. सं. 21, मनु प्रकाशन, मनु टाइम्स, कार्यालय, उदयपुर 1987*
10. *डॉ. लक्ष्मीचन्द जैन – जैन परम्परा एवं प्रदुषण, पृ. सं. 54, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 1975*

शेखावाटी किसान आन्दोलन में भजनों की भूमिका

देवेन्द्र कुल्हार
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

शेखावाटी किसान आन्दोलन का सफल संचालन का श्रेय अगर किसान मसीहाओं को जाता है तो इस सफल आयोजन का श्रेय भजनोपदेशकों को जाता है। भजनोपदेशकों ने आम जनता को जागृत करने के साथ अपने भजनों से शिक्षा की अलख, हिन्दू-मुस्लिम एकता का भाव, समाज को जागृत करने की ललक तथा तत्तकालिन समय में किसानों की स्थिति का विशुद्ध वाचन किया। उन्होंने जागीरदारों के अत्याचारों के खिलाफ अपने भजनो से किसान, मजदूर, नवयुवको तथा महिलाओं को जागृत किया। इन भजनोपदेशकों में पण्डित हुक्मीचंद, पृथ्वीसिंह बेधड़क, मोहर सिंह, तेज सिंह, पं. कालूराम शर्मा, पं. खेमराज शर्मा, चौधरी जीवणराम, देवकरण पालौता तथा उमराव आर्य प्रमुख थे।

संकेताक्षर : *शेखावाटी, भजनोपदेशक, हिन्दू-मुस्लिम एकता, देशप्रेम, समाज जन-जागृति, शिक्षा, किसान।*

शेखावाटी किसान आन्दोलन राजपूताने के सफलतम किसान आन्दोलनों में एक है। जागीरदारों के अत्याचारों से मुक्ति का यह एक जन-आन्दोलन था। इस आन्दोलन का सफल संचालन किसान मसीहाओं ने किया था व आन्दोलन का सफल आयोजन भजनोपदेशों ने किया। भजनोपदेशकों ने विविध माध्यम के भजनों से जन-जागृति की अलख जगाई। इसमें देश-प्रेम की भावना, हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल, समाज को जागृत करने पर बल, किसान वर्ग की पीड़ाओं को व्यक्त करने वाले भजनों से किसान आन्दोलन की नींव को मजबूत रखा।

देश प्रेम आधारित भजन

शेखावाटी क्षेत्र में जन-जागृति आन्दोलन में देश प्रेम आधारित भजनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वाधीनता आन्दोलन में देश के लिए मर मिटने वाला भजन बहुत लोकप्रिय था जिसे पं. हुक्मीचन्द अपनी सभाओं में गाया करते थे –

देश धर्म पर मिटने वाला पास हो जायेगा।
दुनियां में जिंदा उसका इतिहास हो ज्यागा।।

दुनिया सै कसौटी फौरन परख कर दैगी।
जैसी दिखेगी वैसी ही साख भर दैगी।।

भले पुरुष के चरणों में झट झुका सर देगी।
बदी करणिये के सिर पर बदनामी धर देगी।।

बुरे करम करने वाला बदमाश हो ज्यागा।
भले पुरुष का स्वर्ग पुरी में वास हो ज्यागा।।

तन मन धन से दुनियां में शुभ काम होता है।
काम करण वाले का जग में नाम होता है।।

शुभ कर्मों से जग में सुख का धाम होता है।
सुख के खातर मनुष्य दुखी सुबह शाम होता है।।
सुख होगा उस कुण्बे का इकलास हो ज्यागा।
आपस में लड़ने वालों का नाश हो ज्यागा।।
देश धर्म का काम करणिये पार हो गये।
ऋषि दयानन्द गांधी से अवतार हो गये।।
राजगुरू सुखदेव भगत सरदार हो गये।
मोती के घर पैदा वीर जवाहर हो गये।।
दुनियां में पैदा फिर वीर सुभाष हो ज्यागा।
गद्दारों का पर्दा बिल्कुल फास हो ज्यागा।।
देश भलाई चाहे तो करो मान विद्या का।
हिरदे के मां धरना चाहिए ध्यान विद्या का।।
ऋषि मुनि बतला गये बढ़िया दान विद्या का।
''हुकमीचंद'' अभ्यास करे नित गान विद्या का।।
विद्या से ही ज्ञान का प्रकाश हो ज्यागा।
दुनियां में तेरा रोशन मनसर बास हो ज्यागा[1]।।

उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर के निवासी तेज सिंह का भजन देश भक्ति की भावनाओं को आत्मविभोर कर देता था। यह भजन था–

देश–दृष्टि में माता के मैं चरणों का अनुरागी था।
देश–द्रोहियों के विचार से, मैं केवल दुर्भागी था।।
माता पर मरने वालों की
नजरों में मैं त्यागी था।
निरंकुशों के लिये अगर मैं,
कुछ था तो बस वागी था।।
माता के बन्धन तोडूंगा,
रखता था नित ध्यान यही।
मातृ मान पर मर जाऊंगा,
था केवल अभिमान यही।।
चाह रहा था मैं जीवन में फांसी का वरदान यहीं।
जन्मूंगा फिर भारत में था होता उर[2] में भान यही।।
देश प्रेम के मतवाले कब,
झुके फांसियों के भय से।
कौन शक्तियां हटा सकी हैं
उन वीरों को निश्चय से।।
हो जाता है शक्तिहीन जब,
शासन अतिशय अविनय से।
लखता[3] है जग बलिदानों की,
पूर्ण विजय तब विस्मय से।।
वीर शहीदों के शोणित से,
राष्ट्र महल निर्माण हुए।
उत्पीड़क बन राजकुलों के भाग्य
द्वीप निर्वाण हुये।।
माता के चरणों पर अर्पित,
जिन देशों के प्राण हुये।
रहे न पल भर पराधीन फिर,
प्राप्त उन्हें कल्याण हुये।।
जाता हूँ दो माता यही वर,
भारत में फिर जन्म धरूं।
सेवा करता हुआ तेरी,
सेवा में सौ–सौ बार मरूं[4]।।

नित्यानंद भजनोपदेशक के भजनों ने भी नौजवानों में जोश जगाने का प्रयत्न किया–

ऐसे नौजवानों की फिलहाल जरूरत है।
जो देश धर्म पर मरजा,
मुख जाति का उज्ज्वल कर जा
ऐसे बलिदानी की फिलहाल जरूरत है।।
कोई होवे प्रताप राना, कोई शिवाजी मर्दाना।
ऐसे बलवानों की फिलहाल जरूरत है।।
चलते प्रताप का थामा, थे सेठ महाजन भामा।
ऐसे धनवानों की फिलहाल जरूरत है।।
कोई दयानन्द बन जावे, जग से पाखण्ड हटावे।
ऐसे विद्वानों की फिलहाल जरूरत है।।
कोई जवाहर सिंह बन जावे, जाति की जात बचावे।
ऐसे मर्दानों की फिलहाल जरूरत है।।
कोई लोटन सिंह बन जावे,
मरती हुई गोवों को छुड़ावे।
ऐसे पहलवानों की फिलहाल जरूरत है।।
''नित्यानन्द'' चिड़ो कोई बेशक,
बनो सच्चे धर्मोपदेशक।
ऐसे श्रीमानों की फिलहाल जरूरत है[5]।।

सामाजिक जन–जागृति आधारित भजन

किसान आन्दोलन में समाज में जान फूँकने वाले भजनों में पृथ्वीसिंह बेधड़क का भजन बहुत ही लोकप्रिय था–

ऐजी ऐजी जगत में बड़ा बताया काम।
बिना काम करने वालों की कीमत एक छदाम।।
जगत में .....

काम करने वाले जब काम करने खड़े हुए।
मुरदे भी जाग उठे मसानों में गड़े हुए।।

शेर बबर जाग उठे गुफाओं में पड़े हुए।
आइने भी जुड़ने लगे इधर-उधर पड़े हुए।।

हुई सुबह से शाम जगत में बड़ा बताया काम।.....

नामदेव दर्जी और रैदास चमार था।
बाल्मिकी आते जाते राहगीरों को मारता।।

दादा भाई नौरोजी के मामूली परिवार था।
हर हिटलर मजदूरी करके दिनों को गुजारता।।

मुसोलिनी का बाप पहले इटली में लूहार था।
जाणे जगत तमाम जगत में बड़ा बताया काम.....

भोजन में खीर बड़ा फलों में अंजीर बड़ा।
हथियारों में शमशीर बड़ा अपनी
अकल से बातीर बड़ा।।

चौधरी छोटूराम बड़ा जगत में बड़ा बताया काम[6]....

पण्डित खेमराम अपने भजनों से अशिक्षा, मृत्युभोज, जाति-पाति छुआछूत आदि कुरीतियों पर अपने भजनों से प्रहार करते थे -

कई लाख मांगत फिरे - कई लाख गये ऊत।
घर की कुड़की हो रही - नूंत जिमाके भूत।
दिल देख देख डरता है -
इन ''भूतों'' के सत्कार से।।1 ।।

आदर साथ बुलाये जाते,
फिर वे उस घर क्यों ना आते।
खूब चिकना माल उड़ाते-पेट बिना विस्ता से गिर
गिर कर धरता है।।2 ।।

यह है बात बड़ी विख्यात,
जो जिसके भोजन का खाता।
खुद वैसा ही बन जाता - देखो आप विचार से।
मन साफ बयान करता है - ।।3 ।।

हमने मुर्दा नूत जिमाया,
संग से मिलकर माल उड़ाया।
वही असर अब हम पर आया,
मुश्किल बचना वार से।।
बल बुद्धि को हरता है।।4 ।।

पेट माल मुर्दों से रंगे, हम भी मुर्दे बनाए चंगे
''खेमराज'' दौलत खो नंगे,
बड़न लखे परिवार से।।
बे मौसर यां मरता है[7]।।5 ।।

किसान-मजदूर की पीड़ाओं आधारित भजन

तत्कालीन समय में किसान वर्ग का मजदूर वर्ग के हालात बहुत खराब थे। उनकी दयनीय स्थिति को कहने वाला कोई नहीं था। उस समय भजनोपदेशकों ने किसान-मजदूर वर्ग का साथ देकर उनका उत्साह बढ़ाया। पृथ्वीसिंह बेधड़क के भजन आज आम-जन की जुबान पर है। उन्होंने राष्ट्र जागृति के परिचय के क्रम को आगे बढ़ाया। वे औजस्वी गायक व भजनोपदेशक थे। उनके भजन मुर्दा लोगों में भी जान फूँक देते थे[8]। उनका प्रमुख भजन था-

मजदूर किसानों एक हो जाओ

जो हालत हमने देखी,
यहां पर मजदूर किसानों की।
उससे अच्छी हालत देखो,
बिल्ली की और स्वानो की।।

बांस टूट गया मेह में टपके ऐसी हालत छानो की।
दिन पर दिन बढ़ रही उघाई[9]
ईख और धानों की।।

पटवारी की 35 वेतन 1600 प्रधानों की।
रणभूमि पर जो लड़ते 55 वीर जवानों की।।
काम करणिया पैदल चलते,
उन पर जोड़ विमानों की।
इससे अच्छा तो मिलकर जिंदगी खो जाओ।।1 ।।

बिजली चमके हवा चले, ऊपर से पाला पड़ता है।
नंगे पैरों ओढ़ दौलड़ा घर से बाहर निकलता है।।

गैर दौलड़ा बियावान में पानी अन्दर बड़ता है।
रात अंधेरी पूस महीना चार घड़ी का तड़का है।।

जुकाम हो गया और बुखार घर पर चढ़ता है।
पेट निकलते ही रुक्का मारे हो कोई धो
जाओ।।2 ।।.....

कहीं तो कोठे बंगले खाली,
हमें तमौटी मिलती ना।
कहीं पर हलवे खीर मिठाई,
हमको रोटी मिलती ना।।

खाने को रोटी मिलती ना,
चूसन को टोटी मिलती ना।
खोले, बांधे, न्यार[10] करें,
पर दूध की झोटी[11] मिलती ना।।

जिसके जरिए सुख मिलता
वह एक कसौटी मिलती ना।

वह विद्या की एक कसौटी,
उसको टोह जाओ।।3।।.....

अगर जिंदगी चाहते हो तो, छोरी–छोरा पढ़वा दो।
बुंदे कण्ठे, हार नेवरी, सारा जेवर छुड़वादो।।

जिस कारण बर्बाद हुए हैं, उस पर्दे को तुड़वा दो।
चार बीघे तक के भूमिधर,
बीसम्बीस तक जुड़वादो।।

शराब की बोतल तुड़वादो,
और मांस की हंडिया फूड़वादो।
'पृथ्वीसिंह' अपने घर में से, फूट अविधा उड़वा दो
वही बीच काटोगे एक दिन,
जैसा बो जाओ[12]।।4।।.....

भजनोपदेशक देवकरण पालौता के दिल में किसान व मजदूर वर्ग के लिए पीड़ा थी। देवकरण की लेखनी बहुत व्यवहारिक थी। वे अपने भजनों के माध्यम से स्नेहशील वातावरण तैयार करते थे। उनकी भाषा कठोर थी। उन्होंने अपने भजनों के माध्यम से समाज की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया। उनके भजन हमेशा किसान–मजदूरों को समर्पित रहे। उनका एक प्रसिद्ध भजन बहुत लोकप्रिय था–

तेरी फूटगी किसान, जिसको कहता तू भगवान
वह भूगोल पर से चला गया है करके गोल
बिस्तर।

मस्जिद में बड़कर मुल्ला,
मचा रहा है शोर गुल हल्ला
मंदिर में फिरे पण्डा खुल्ला,
पकड़ रहा ईश्वर का पल्ला।

लड़ा दिये हिन्दू मुसलमान,
बन रहे भक्त आलीशान
मत भेदों का डाल दिया ठगों ने कफुर।।1।।

भक्तजनों के नहीं तन पे लंगोटी,
खून चूस की देखो बोटी
भक्तों के लिए नहीं तमोटी
खून चूस के बंगले कोठी

रोटी बना रहे अज्ञान, खाते मनमाने पकवान
तू अज्ञान बिन पकवान कर लेता है सबर।।2।।

दुश्मन अल्लाह, ईश्वर पापी,
फिर भी क्यों रहता नर पापी
बन रहे दुश्मन लीडर पापी,
बढ़ रहे कर पे कर पापी

बन रहा क्यों मूर्ख अज्ञान, कब तू समझेगा नादान
उलटी बाड़ खेत को खाती लीडर पहनकर
खद्दर।।3।।

लीडर रिश्वतखोर बने हैं,
राज्य के मालिक चोर बने हैं
ग्राम–ग्राम में दोर बने हैं,
जुल्म देखलो घोर बने हैं

फिरते ग्राम–ग्राम हैवान हो रहे
दिन–दिन लहू लूहान
रिश्वत खाकर घर–घर में आज मचाया गदर।।4।।

या अल्लाह भगवान देखले हिन्दू,
मुसलमान देख ले
करके हरिजन ध्यान देख ले,
नरकों का सामान देख ले

सुनकर 'देवकरण' का गाना
अब तो जागो रे नौजवान
आया क्रांति का भाव रंग चाव की सफर[13]।।5।।

शिक्षा पर बल आधारित भजन

शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षा का पूर्णतः अभाव था। केवल उच्च वर्ग के कुछ लोग ही शिक्षा को प्राप्त करते थे। शेखावाटी क्षेत्र के भजनोपदेशकों ने अपने भजनों के माध्यम से किसान वर्ग को शिक्षा के लिए प्रेरित किया।

ईश्वर सिंह व पृथ्वी सिंह बेधड़क प्रमुख भजनोपदेशक थे जिन्होंने शिक्षा का महत्व समझाया–

इल्म, हूनर, विद्या बिन बंदा पशु बराबर हुआ करे।
सांप, सेर से बढ़कर मूर्ख का डर हुआ करे।

मूर्ख आदमी लाल लालड़ी एक लड़ी में पोवे।
नीची संगत देखकर लाल विचारा रौवे।

ज्ञानी और ध्यानी बैठे बात ज्ञान की टौवे।
मूर्ख धोरे मूर्ख बैठे अगली पिछली खोवे।
मूर्ख बन्दा धौरे सज्जनों ज्ञान
जरा न हुवा करे।।टेक।।

कागा चाले चाल हंस की, अपनी चाल बिगारी।
उल्लू, गधा भी करना चावै कोयल की असवारी।

गधा लट्ठ खाय बौझा ढौवे
कोयल की बोली न्यारी।
इल्म, हूनर और जबां रसीली मिलती नहीं उधारी।
पतिव्रता और लक्ष्मी नारी, यात्री के घर हुआ
करें।।1।।

मूर्ख के संग बात करने से बिल्कुल टोटो हो सै।
कम खावणिया, गम खावणिया मानस मोटो हौ सै।।

अपने मुंह से करे बड़ाई मानस खौटा हो से।
मित्र प्रेमी, प्यारा दोस्त मरहम लोटा हो सै।।
जहां सतसंग उपदेश हों विद्वान का
घर हुवा करे।।2।।

भले शक्स की भली कमाई, भले काम में लागे।
नेकी करने वाला आदमी, प्यारा गांव में लागे।।

अच्छे काम करने से, ध्यान ओम में लागे।
'ईश्वर सिंह' शत हमेश मोक्ष धाम में लागे।।
जो तन–मन–धान वारे उसका आधार हुआ करे[14]।।

पृथ्वीसिंह बेधड़क के गीत आज भी अनेक लोगों के जुबान पर हैं। उन्होंने अपने भजनों के माध्यम से शेखावाटी के लोगों में शिक्षा प्रेम जगाया। इस भजन में विद्या प्राप्त करने के लिए लोगों को प्रेरित किया गया है।

विद्या से बढ़कर दुनियां में कोई धनी नहीं है।
इससे अच्छा लाल, जवाहर, मोती कहीं नहीं है।।

डाकू, चोर चुरा नहीं सकता आग जला नहीं सकती।
इधर–उधर भी एक ईंच इसे हवा चला नहीं सकती।।

सदाकत ताकत इसको हिला नहीं सकती।
पानी डूबा नहीं सकता, बर्फ गला नहीं सकती।।
लोहे का सोना करे और कोई पारसमणी
नहीं है।।1।।

तेज धार का कोई खंजर इसको काट सकेगा ना।
भाई भतीजा, चाचा, ताऊ कोई भी बांट सकेगा ना।।

विद्वान को अनुचित वाणी से कोई डांट सकेगा ना।
किसी समय भी विद्या माता निज से पाट सकेगा
ना।।
पूर्ण विद्या होने से तो कोई सनसनी नहीं है।।2।।

राजा अपने देश के अन्दर–अन्दर इज्जत पाते।
जो होते विद्वान मनुष्य संसार में पूजे जाते।।

अपने लड़के–लड़की को जो भाई नहीं पढ़ाते।
माता शत्रु पिता है बैरी चाणक्य जी बतलाते।।
वह क्या गांव जहां पढ़ने की बिल्डिंग नहीं है।।3।।

पांच से ज्यादा आवे बाराती उन्हें उल्टा मुड़वादो।
शराब, सुल्फा, भंग, चरस की सब बोतल
फुड़वादो।।

ऊंचे चुण्डे, टूम, धाधरी बहनों से छुड़वादो।
जिस कारण बरबाद हुए उस परदे को तुड़वादो।।
''पृथ्वीसिंह'' फिर तुझ से बढ़कर कोई गुणी नहीं
है[15]।।

निष्कर्ष में कह सकते है कि भजनोपदेशकों ने अपनी औजस्वी शैली के माध्यम से जन–जन तक अपनी आवाज पहुंचाकर एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया। जिससे उनकी आवाज जन क्रांति बन कर उभरी। वे शेखावाटी में अपनी वाणी का जादू फैलाकर संघर्षशील यौद्धा के रूप में कार्य करते रहे। आखिर में जन आन्दोलनों ने सरकारों को झुकने पर मजबूर कर दिया। शेखावाटी को राजनैतिक आजादी तो मिली ही वे अन्य क्षेत्रों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगे। वे शैक्षिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने लगे। ये भजनोपदेशक ही थे जिन्होंने अपनी लेखनी और वाणी के जादू से जन आन्दोलनों की एक श्रृंखला बना दी और ताकतवरों की तलवारों को खामोश कर दिया[16]।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आर्य, हुक्मीचन्द ; युग धारा, पृ. 7*
2. *उर : हृदय*
3. *लखता – देखता*
4. *शास्त्री, वेदवृत ; चौधरी तेजसिंह भजन संग्रह, पृ. 76–77*
5. *बेधड़क, पृथ्वीसिंह ; बेधड़क बिजली, पृ. 8*
6. *गौदारा, डॉ. पितराम ; शेखावाटी में स्वाधीनता आन्दोलन व जन आन्दोलन में भजनोपदेशकों की भूमिका, पृ. 121–122*
7. *मिश्र, डॉ. रतनलाल ; आर्य समाज के तपोनिष्ठ नेता पं. खेमराज, पृ. 110*
8. *सिंह, शिवनाथ ; शेखावाटी किसान आन्दोलन, पृ. 7*
9 *उघाई : उधारी वापस लेना।*
10 *न्यार : पशुओं का चारा*
11 *झोटी : भैंस (स्थानीय भाषा में)*
12 *बेधड़क, पृथ्वीसिंह ; खतरे की घण्टी, पृ. 17*
13 *गजराज, देवकरण ; सुन ले पापी, पृ. 10*
14 *ईश्वर सिंह भजनावली, पृ. 22*
15 *पृथ्वी सिंह भजनावली, पृ. 13*
16 *गौदारा, डॉ. पितराम ; वहीं, पृ. 310*

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् हरियाणा में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन

अशोक कुमार
शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

डॉ. सतेन्द्र
ऐसोसिएट प्रोफेसर, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अगस्त 1914 में शुरू होने वाले प्रथम विश्व युद्ध में विश्व की कई महाशक्तियां दो गुटों में विभाजित थी। जिनके अपने हितों के कारण यह युद्ध शुरू हुआ, लेकिन उनके उपनिवेश होने के कारण अनेक देशों को में भी इस युद्ध में शामिल होना पड़ा था। इसी तरह भारत भी ब्रिटेन का उपनिवेश था, जिसके कारण उसे ब्रिटिश साम्राज्य की तरफ से भारत के सभी क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाई। इन्हीं क्षेत्रों में हरियाणा जो उसमें पंजाब का एक भाग था ने भी प्रथम विश्व युद्ध में सैनिक एवं आर्थिक रूप से अपना योगदान दिया था। युद्ध के समाप्त होने पर इस क्षेत्र पर युद्ध के अनेक प्रभाव देखने को मिले। जिससे हरियाणा क्षेत्र की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति परिवर्तित हुई। किसी भी देश के समाज को जानने के लिए उस देश की क्षेत्रीय इतिहास को जानना अति आवश्यक है। जब तक क्षेत्रीय समाज व उसकी जटिलताओं को नहीं समझेंगे, उस देश से संबंधित इतिहास का ज्ञान अधूरा प्रतीत होता है किसी भी राष्ट्रीय इतिहास के पीछे उस देश के क्षेत्रीय समाज का योगदान एवं उस पर पड़ने वाले प्रभाव अहम भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार शोध पत्र में हरियाणा क्षेत्र पर प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे।

संकेताक्षर : *प्रथम विश्व युद्ध, ब्रिटिश साम्राज्य, हरियाणा क्षेत्र, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन, क्षेत्रीय इतिहास।*

हरियाणा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण सभी कालखण्डों में महत्वपूर्ण रूप से जाना गया है। यहां के समाज में अनेक धर्मों एवं जातियों के लोग निवास करते हैं। जिसके कारण हरियाणा के समाज का अध्ययन और भी रोचक व जटिल बन जाता हैं। हरियाणा के निवासियों ने प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसकी भौगोलिक स्थिति के कारण ही पुराने समय में उत्तर–पश्चिमी से काफी आक्रमण हुए एवं हरियाणा को कुरुक्षेत्र, करनाल, तरावड़ी और पानीपत जैसी अनेक लडाइयों का सामना करना पड़ा। इसी को लेकर यहाँ के लोगों ने अपनी रक्षा को लेकर एक सैनिक गुण पनपने लगा। इस संदर्भ में लॉर्ड राबर्ट (कमांडर–इन–चीफ ऑफ द आर्मी) 1885–1893 ने कहा कि ''सेना के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति उत्तर–पश्चिम भारत में है''[1]

अनेक लड़ाईयां होने के कारण हरियाणा के लोगों में भी सैनिक गुण पनपने लगा और वे वीरता, साहस और कुर्बानी में अद्वितीय हो गये एवं इसी कारण हरियाणा की सैनिक हमेशा प्रसिद्ध रहे। भारत में जब प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हुआ तो अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप हरियाणा के लोगों ने भी इसमें बहुत अधिक योगदान दिया। जिसके कारण ही 1858 में हरियाणा क्षेत्र को पंजाब में मिला दिया गया जो पहले उत्तर–पश्चिम प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) का हिस्सा था। हरियाणा एक कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहां के अधिकतर निवासी कृषि पर ही निर्भर थे। परंतु प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व की किसानों की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर हो चुकी थी एवं शिक्षा और रोजगार की कमी के चलते हरियाणा क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता महसूस हुई। प्रथम विश्वयुद्ध वह समय था जब हरियाणा के निवासियों अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते थे।

प्रथम विश्वयुद्ध जिसे महायुद्ध के नाम से भी जाना जाता है। 1914 में यूरोप दो प्रतिद्वंदी गठबंधन प्रणालियों में विभाजित हो गया था। जिसमें एक तरफ जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हंगरी और इटली जैसी ध्रुवी शक्तियां और दूसरी तरफ फ्रांस, रूस और ग्रेट ब्रिटेन जैसे मित्र राष्ट्र शामिल थे। ऑस्ट्रिया–हंगरी और बाल्कन में राष्ट्रीयताओं की उथल–पुथल 1914 में भड़क उठे तनाव में निर्णायक भूमिका रखती थी।[2]

सभी महाशक्तियों के हितों के टकराव से शुरू होने वाले युद्ध में उन देशों को भी शामिल होना पड़ा जो उस समय उनके उपनिवेश थे। उन्हीं में भारत भी एक ऐसा ही देश था जो ग्रेट-ब्रिटेन का उपनिवेश था। ब्रिटिश शासन के अधीन होने के कारण भारत में अनेक सैनिक युद्ध क्षेत्रों में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा व सम्मान के लिए जा पहुँचे। इस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं गांधीजी जैसे दिग्गज नेताओं ने भी लोगों से युद्ध में अधिक से अधिक सहायता करने का आह्वान किया।

यह समय हरियाणा के बेरोजगार लोगों के लिए उचित समय था जब वे कृषि के साथ-साथ अन्य रोजगार में स्वयं को सम्मिलित कर सकते थे। इस समय हरियाणा की स्थानीय नेताओं ने भी अपने लोगों से अपील की कि यथासंभव हरियाणा के व्यक्ति युद्ध में सहायता करें जिससे प्रेरित होकर हरियाणा से अनेक नवयुवक सेना में भर्ती होने के लिए दफ्तरों और भर्ती रैलियों में जा पहुँचे।

हरियाणा के विभिन्न जिलों में प्रति वर्ष भर्ती होने वाले सैनिकों की संख्या

जिला	1 जनवरी 1915	4 अगस्त 1914 से 31 मार्च 1916	1 जनवरी 1917 से 30 जून 1917	1 जुलाई 1917 से 31 दिसम्बर 1917	1 जनवरी 1918 से 31 मई 1918	1 जून 1918 से 30 नवंबर 1918
हिसार	3046	2795	1438	4589	1251	3698
रोहतक	6245	5025	3014	3361	1546	3950
गुडगाँव	2481	3440	2241	4048	2184	4869
करनाल	633	532	635	1463	683	3005
अंबाला	1755	1256	482	989	1893	2070
देशी राज्य	1289	....	703	783	1049	1515

स्रोतः- लेह. एम. एस., दा पंजाब एण्ड दा बार, लाहौर, 1922, पृ. 59

केवल सैनिकों के द्वारा ही नहीं, अपितु आर्थिक रूप से भी हरियाणा के लोगों ने बहुत अधिक सहायता प्रदान कि जिसके लिए उन्होंने 'इंपिरियल रिलीफ फंड' में चंदा जमा किया। युद्ध के दौरान पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों ने भी सहयोग दिया। अगर आर्थिक सहायता के रूप में हरियाणा क्षेत्र के योगदान को देखा जाये तो अकेले भिवानी से 25 लाख रूपये की आर्थिक सहायता प्रदान की गई थी।[4]

1914 से 1918 तक अनेक मोर्चो पर युद्ध लड़ा गया तथा हरियाणा क्षेत्र के निवासियों ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया परंतु 1918 में जैसे ही युद्ध समाप्ति की घोषणा हुई, इसका प्रभाव सभी देशों के साथ-साथ भारत व भारत के क्षेत्रीय भागों पर भी देखने को मिला। युद्ध के बाद सरकार ने धनियों, जमीदारों, व्यापारियों एवं राजभक्तों को खिताब, मुरब्बे, तमगे व इनाम आदि दिये।[5]

लेकिन यह पुरस्कार अधिकतर उन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को प्रदान किए गए थे जो या तो अंग्रेजों के वफादार थे या फिर जिन्होंने बड़ी संख्या में लोगों को सेना में भर्ती करवाया था। जिसमें पुराने राजा, नवाब, जागीरदार, मध्यमवर्गीय व्यापारी, वकील, भूस्वामी शामिल थे। हरियाणा में जिनको यह प्रोत्साहन राशि व पुरस्कार दिए गए उनकी संख्या लगभग 109 थी।[6]

प्रथम विश्वयुद्ध में भारत से दस लाख से भी अधिक नवयुवक भर्ती किए गये। अकेले हरियाणा से इनकी संख्या 84001 थी लेकिन युद्ध समाप्त होने पर हरियाणा की सामाजिक स्थिति पर इस युद्ध के अनेक अच्छे व बुरे प्रभाव देखने को मिले। युद्ध के दौरान भर्ती हुए युवकों की युद्ध समाप्ति के पश्चात छटनी प्रारंभ हो गई। 'डिमोबिलाइजेशन' के तहत उन युवकों को घर वापस भेज दिया गया जो 18-20 रूपये के लिए अपने प्राणों की परवाह न करते हुए ब्रिटिश सरकार के लिए दूरदराज के क्षेत्रों में लड़ने चले गए थे। अब हरियाणा के नवयुवकों के सामने वापस वही स्थिति थी

जो युद्ध प्रारंभ होने या भर्ती होने से पूर्व थी या यूं कहें कि उससे भी खराब स्थिति का सामना करना पड़ा क्योंकि युद्ध में अनेकों युवकों अपाहिज भी हो गए थे जो अब कृषि–कार्य में भी नहीं जा सकते थे। इस युद्ध में हरियाणा के कुल 1927 लोग बिल्कुल नकारा हो गए थे।[7] कुछ सैनिकों को पेंशन दी गई जो उनके जीवन–यापन के लिए अपर्याप्त थी। कृषक–वर्ग के मुख से उसमें यही सुनाई पड़ता था– 'यह सरकार बड़ी कृतघ्न, मतलब परस्त सरकार है, बेईमान अंग्रेज तेरा बेड़ा गर्क हो, तू ने दो–दो पैसों में बेशकीमती जाने लुटा दी : फिरंगी किसका अपने स्वार्थ का।'[8]

युद्ध के दौरान हरियाणा के किसान एक बड़ी संख्या में सेना में भर्ती हो गए थे जिसके कारण अनाज में उत्पादन में गिरावट आ गई तथा बहुत अधिक मात्रा में अनाज युद्ध क्षेत्र में भी भेजा गया जिसके कारण खाद्यान्नों की कीमतें आसमान छूने लगी। सरकार ने आवश्यक वस्तुओं की कीमतों को कम व निश्चित करने का प्रयास भी किया, परंतु वह पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाई। इस समय हरियाणा के एक विशेष वर्ग जिसमें ग्रामीण व शहरी मजदूर वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ।[9] वस्तुओं की कीमतें बढ़ने के कारण वस्तुओं की जमाखोरी में बढ़ोतरी देखने को मिली। अब आवश्यक वस्तुओं को भी काले बाजार में प्राप्त करना पड़ा था। इससे सिपाहीयों को मिलने वाली तनख्वाह भी राहत नहीं दिला सकी। उसी समय 1917–18 में हरियाणा में बाढ़ आ गई, जिसके कारण महामारी फैल गई व जान माल की बहुत अधिक मात्रा में क्षति हुई। इस महामारी में रोहतक व गुड़गांव को सबसे अधिक प्रभावित किया। सरकार ने महामारी की रोकथाम के लिए अनेकों राहत कार्य किए लेकिन गावों में कोई संतोषजनक साधन व सहायता उपलब्ध नहीं करवा सकी।[10]

प्रथम विश्व युद्ध का एक प्रभाव हरियाणा के घरों की बनावट में भी देखने को मिला। हरियाणा के पुराने घरों में सफाई की कोई व्यवस्था नहीं थी। घर अधिकतर बंद होते थे, उनमें पानी की निकासी की कोई व्यवस्था ना होने के कारण अनेकों बीमारियां फैल जाती थी जो महामारी का रूप धारण कर लेती थी। पशु व इंसान एक साथ रहते थे। हरियाणा के लोगों में अज्ञानता का स्तर इतना अधिक था। कि अगर एक पशु को कोई बीमारी हो जाती तो उसको दूसरों के साथ ही रखते थे जिससे दूसरे पशुओं को भी रोग हो जाता था और उसी समय यहां के समाज में पशुओं को किसान की सबसे बड़ी पूंजी समझा जाता था।[11] जो सैनिक युद्ध में गए थे उन्होंने वहाँ के रहन–सहन को देखा, जिसे देखकर अपने जीवन स्तर में भी परिवर्तन करते हुए घरों को खुला, हवादार और रोशनदानन युक्त बनाने लगे जिनके कारण घरों में प्रकाश व हवा की कमी से होने वाले रोगों में कमी आने लगी। पहले घरों में बैठने के लिए चारपाई व खटोले प्रयोग में लाए जाते थे जिसकी जगह अब मेज, कुर्सी व बेंच ने ले ली थी।

समाज में एक अन्य बदलाव बर्तनों में भी देखने को मिला। अब मिट्टी के बर्तनों की जगह शीशे व चीनी मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग भी बढ़ने लगा। तांबा, पीतल व कांसे के बर्तनों का भी प्रयोग पहले से अधिक होने लगा।[12] हरियाणा में अधिकतर पुरुष लंगोटी, कुर्ता, धारण करते थे, लेकिन जो युवक युद्ध में शामिल हुए अब उनके वापस आने पर उनके पहनावे में बदलाव देखने को मिला। आर्थिक स्थिति में सुधार उन्होंने मोटे कपड़े को महीन कपड़े में परिवर्तित करना प्रारंभ कर दिया। औरतें भी आभूषणों में चांदी की स्थान पर सोने का प्रयोग करने लगी गई।

युद्ध से जहां इतने दुष्प्रभाव देखने को मिले वही हरियाणा के समाज पर परोक्ष रूप से कुछ फायदे भी देखने को मिले। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हरियाणा से बहुत अधिक मात्रा में सैनिक अपने देश से दूर बेल्जियम, फ्रांस, यूरोप के अन्य क्षेत्रों में मोर्चों पर युद्ध में शामिल हुए और वहां के लोगों के रहन–सहन का अवलोकन किया व स्वयं को बदलने का प्रयास किया। हरियाणा का समाज कई जाति–वर्गों में विभाजित समाज होने के कारण सभी उच्च जातियों ने स्वयं को सभ्य और निम्न जातियों को असभ्य समझती थी जिसके कारण अब यह एक दूसरे के साथ बैठना भी पसंद नहीं करते थे। युद्ध क्षेत्रों में भी सभी जातियों ने भाग लिया था एवं सभी को साथ में रहना पड़ता था, साथ ही यात्रा भी करनी पड़ती थी जिसके कारण हरियाणा के समाज में वर्ग–विभाजन की खाई कम होने लगी। फिर स्वतंत्रता आंदोलन में उठी आवाज 'हिंदू–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आपस में सब भाई–भाई' सभी के दिलों तक पहुंची व व्यवहार में आई।[13]

प्रथम विश्वयुद्ध में भर्ती होने वाले सैनिकों को पत्र–व्यवहार करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता महसूस हुई क्योंकि यहां के समाज पिछड़ा हुआ था और अनपढ़ता और अज्ञानता से इनके जीवन का

प्रत्येक पहलू प्रभावित था। इन सैनिकों ने शिक्षा के महत्व को समझते हुए अपनी आय में से कुछ हिस्सा विद्यालय खोलने के लिए अनुदान में दिया जिससे यहाँ का समाज शिक्षा–ग्रहण करके शगुन– अपशगुन व अज्ञानता से बाहर निकल कर एक सभ्य समाज के उत्थान में अपना योगदान दे सके। शिक्षा के कारण यहाँ के लोगों का दृष्टिकोण रूढ़िवादिता से हटकर वैज्ञानिक व तर्क पर आधारित होने लगा।

हरियाणा के लोगों के खाने में भी परिवर्तन देखने को मिला। यहाँ के लोगों ने खाने में मोटे अनाज जैसे– जौ, ज्वार, बाजरा, मकई की रोटी खाते थे क्योंकि गेहूं को अमीरों का भोजन माना जाता था तथा आम व्यक्ति इसको प्रयोग केवल त्योहारों के आगमन पर करता था। परतुं अब आम व्यक्ति की आर्थिक स्थिति में सुधार होने के कारण गेहूं का प्रयोग होने लगा। पहले गुड़ व शक्कर का इस्तेमाल अधिक होता था अब उसका स्थान चीनी ने ले लिया था। पहले घरों में दालों का प्रयोग होता था लेकिन अब अन्य सब्जियां का भी इस्तेमाल होने लगा।

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व लोग अखबार नहीं पढ़ते थे, परंतु अब शिक्षा के कारण ही गांव में भी अखबार पढ़ने लगे। जब भी कोई व्यक्ति गांव से शहर जाता तो वह अखबार लाने लगा था जिसके फलस्वरूप अब उनको देश के अन्य हिस्सों की जानकारी मिलने लगी व हरियाणा के निवासी देश के अन्य क्षेत्रों से जुड़ा हुआ महसूस करने लग गए। यही वह समय था जब बहुत सारे फौजी युवक अपने साथ रेडियो भी लाए। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आंशिक–रूप से ही सही, हरियाणा के समाज में अनुशासन व शिष्टाचार भी प्रभावित हुआ। बच्चे अब शिक्षा प्राप्त करने लगे थे, उनके बोलने से भी में भी परिवर्तन आया, अब एक दूसरे को वे 'तू' की जगह 'आप' कह कर संबोधित करने लगे। अब अंग्रेजी भाषा के शब्द आम बोलचाल में प्रयोग होने लगे, उनको एक अनपढ़ व्यक्ति भी समझने लग गया था।

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व यहां की महिलाएं केवल घर का कार्य करती थी। घर से बाहर के कार्य पुरूष ही करते थे परंतु विश्वयुद्ध में जाने के बाद अब घर के पुरुषों के घर पर ना रहने के कारण यहाँ की महिलाओं ने भी घर से निकल कर बाहर के कार्यों को करना प्रारंभ किया जो समाज में बहुत बड़ा बदलाव था। रूढ़िवादिता के समाप्त होने के फलस्वरूप विज्ञान के आगमन ने किसानों को कृषि की नई–नई तकनीकों से अवगत कराया जिससे कृषि में उत्पादन बढ़ने लगा। इससे हरियाणा के लोगों का सामाजिक स्तर उठने लगा व यहाँ के लोग आर्थिक रूप से भी लाभान्वित होने लगे।

निष्कर्ष

1914 में होने वाले प्रथम विश्वयुद्ध में विश्व के देश शामिल थे कोई मुख्यशक्ति के रुप में तो कोई पराधीनता के कारण, स्वाधीनता की उम्मीद लगाकर, भारत में ब्रिटिश शासन के सम्मान के लिए युद्ध में भाग लिया। ब्रिटिश भारत के सभी क्षेत्रों ने अपना योगदान दिया। इन्हीं में से हरियाणा में भी बहुत बड़ी संख्या में सैनिक, आर्थिक सहायता प्रदान की थी जिसका युद्ध समाप्त होने के बाद इस क्षेत्र में प्रभाव भी देखने को मिला। यह प्रभाव हरियाणा के प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिले जिसमें सुधार भी शामिल थे तथा महंगाई व दोबारा से बेरोजगार होने होना भी शामिल थे। इस प्रकार कहा जा सकता है विश्वयुद्ध हरियाणा प्रदेश के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया था। जिसके दुरगामी परिणाम मिलते रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कर्नल योगेंद्र सिंह, हल–व–शमशीर, सेल्फ पब्लिशड, आई.आर.एस. डिस्ट्रीब्यूटरस, बधानी, झज्जर, 2019, पृष्ठ 234.*
2. *एलिस–कैथरीन कार्ल्स और स्टीफन डी कार्ल्स, यूरोप फ्राम वार टू वार, 1914–45, न्यूयॉर्क, 2018, पृष्ठ 3.*
3. *हरियाणा राज्य गजेटियर, खंड–1, पृष्ठ 163.*
4. *के. सी. यादव, हरियाणा : इतिहास और संस्कृति, खंड–2, मनोहर पब्लिकेशन, 1992, पृष्ठ 196–97.*
5. *वही.*
6. *वही.*
7. *श्री राम शर्मा, हरियाणा का इतिहास, पृष्ठ 69.*
8. *के.सी. यादव, उपरोक्त, पृष्ठ 196.*
9. *वही.*
10. *पंजाब हिस्ट्री कॉन्फ्रेंस, 11वाँ सैशन, नवंबर 27–28, 1976.*
11. *सर छोटूराम : राइटिंग्स एंड स्पीशीज, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, कुरुक्षेत्र, 2019, पृष्ठ 8–9.*
12. *के. सी. यादव, उपरोक्त पृष्ठ 337.*
13. *वही*

'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास की पात्र–परिकल्पना : एक विश्लेषण

पंकज गौड़
शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

हिन्दी उपन्यास में पात्रों का का सौन्दर्य कला–कृति के केन्द्रीय सौन्दर्य की भांति एक–सी नवीनता लिए होता है। प्रस्तुत शोध पत्र उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' पात्र–परिकल्पना पर आधारित है। इस उपन्यास में मछुआरों की जिन्दगी का यथार्थ प्रसतुत किया गया हैं। उपन्यास के मुख्य पात्रों में बिट्टल, वंशी, यशंवत, माणिक, डॉ. पांडुरंग, सारिका, रत्ना, पार्वती, वर्लीकर आदि मिलते है। उपन्यास में नायिका रत्ना का जीवन संघर्ष ही चित्रित किया गया है।

संकेताक्षर : *नारी, चरित्र, विवाह, स्त्री पुरुष, संघर्ष, जीवन, मछुआरें, प्रेम, स्वतंत्रता, शिक्षा।*

उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' 1956 में प्रकाशित हुआ है। इसमें बम्बई के एक तटीय गांव बरसोवा में रहने वाले मछलीमारों के जीवन को वाणी मिली है। यह सागर की लहरों के साथ जीने वाने मनुष्यों की कथा है, तूफानों में उमड़ते, समुद्र की लहरों में सांस लेते मनुष्यों की कहानी है, जहां घोंघों, मछलियों और बेशुमार जन्तुओं की तरह हवाएं बोलती है। बादल गरजकर लहराते है, बिजलियां लहरों से श्रृंगार करती है। डॉ. सुषमा धवन के अनुसार 'इस जीवन को आंकने वाली जीवन दृष्टि समष्टि मूलक न होकर व्यष्टि–मूलक है जो नव–स्वच्छंदतावाद से अनुप्राणित है।'[1] उपन्यासकार ने मछलीमारों के जीवन की बाह्य कुरूपता के भीतर झांक कर इसकी आंतरिक मानवीयता तथा सुंदरता को उभारने में अपनी नव–स्वच्छंदतावादी दृष्टि का परिचय दिया है। इनका जीवन महानगरीय से संबद्ध होने के कारण बदलने लगता है, इनके रूढ़िवादी संस्कार शिथिल पड़ने लगते हैं, इनमें नई चेतना का संचार होने लगता है। इस जीवन के विपरीत महानगरी का जीवन विडम्बनाओं, कुंठाओं आदि से घिरा हुआ अंकित है। इस विपरीतता के चित्रण में भी लेखन की नव–स्वछंदतावादी दृष्टि की झलक मिल जाती है।[2]

कथा में कोली–जीवन की धारा का एक तट है सागर और दूसरा तट है मनुष्य। इन दोनों के बीच सागर की ओर और कभी मनुष्य की ओर मोड़ लेती हुई इस विशिष्ट जीवनधारा की विभिन्न लहरें, वैषम्य और विद्रोह के तूफानों में बिखरती और साम्य तथा शांति की ऊर्मियों में सिमटती हुई वर्गगत समष्टि में पर्यवसान पाती है। हीरा, नाना, जागला, वंशी, इट्ठा, दुर्गा, बिट्टल, भीमसी, वर्लीकर, यशंवत आदि वैयक्तिक पात्र नहीं हैं, वे मच्छीमार जीवन के प्रतिनिधि हैं, बरसोवा के आंचलिक जीवन में रात–दिन देखे जा सकने वाले टाइप हैं। लेखक ने एक उपेक्षित समाज को इतने करीब से देखने का प्रयत्न किया है, उसके एक–एक कोने को इतनी सावधानी के साथ झांका है और उसके सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का इतना सूक्ष्म अध्ययन किया है कि उसके जीवित प्राणी अपनी भाषा, रहन–सहन, स्वभाव के साथ इसमें बोल उठे हैं।

पात्र–परिकल्पना या चरित्र–चित्रण

उपन्यास में पात्र मेरुदंड के समान है। उपन्यास मानव जीवन की कथा है और उपन्यास के पात्र मानव–जीवन के प्रतीक है। उपन्यासकार प्रेमचंद ने 'उपन्यास को मानवचरित्र का चित्र–मात्र'[3] कहकर, उपन्यास में पात्र को महत्त्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है। प्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स ने भी चरित्र–चित्रण के महत्त्व को मानकर कहा है

कि 'उपन्यास के अस्तित्त्व का एक मात्र कारण यह है कि वह मानव–जीवन के चित्रण का प्रयास करता है।'[4] साहित्य में ''चरित्र का अर्थ आचरण शास्त्र में समझा जाने वाला धर्म नहीं है। साहित्य के अंतर्गत चरित्र का अर्थ मानव पात्रों का चित्रण है, जिसका आधार मनुष्य के भाव व मनोयोग है।''[5] इस तरह से कहा सकता है कि उपन्यासकार की अनुभूति कल्पना के रंग में रंगकर पात्र के चरित्र का निर्माण करती है। पात्रों के चरित्र अर्थात् उसके स्वभाव, गुण, अवगुण आदि का प्रकाशन करना ही चरित्र–चित्रण या पात्र–परिकल्पना है। वरिष्ठ कथाकार उदयशंकर भट्ट के उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य' के मुख्य पात्रों का चरित्र–चित्रण इस प्रकार है–

बिट्टल – बिट्टल एक मछुआरा है। जो कि अपनी आजीविका चलाने के लिए समुद्र से मछलियां पकड़ता है। मछली मारना और बेचना, शराब और बीड़ी–सिगरेट पीना यही बिट्टल का काम है। वह तो पूरी तरह से पत्नी वंशी का गुलाम है, न उसकी कोई अपनी इच्छा–अनिच्छा है और न कोई अपना विचार और व्यक्तित्व। वह अपनी पत्नी के आगे कितना निरीह और बेबस है, यह उसकी बातों में प्रमाणित हो जाता है। वह अपनी पत्नी के आगे आत्मसमर्पण–सा करता हुआ कहता है–''तो हम कू पूछने का क्या ? जो चांगला लगे सो करेगा। वंशी कू कौन बोलेगा, अइसा करो, अइसा मत करो बाबा।''[6]

बिट्टल उन लोगों में से था जो शरीर से मजबूत होते हुए भी दिमाग से पैदल था। अपनी पत्नी वंशी से वह डरता था। उसके इशारे और बुद्धि को ही सब मानता था।....इस पहले जवानी में उसने कई खेल, कई औरतों से प्रेम किया, पर वंशी के घर में पहुंचते ही वह भीगी बिल्ली बन गया।''[7] इसलिए वंशी कभी–कभी उसे मोटी रस्सियों से 'साड़–साड़' कर उसकी पीठ भी उधेड़ देती है।

वंशी – वंशी बड़ी दबंग और मर्दमार औरत है और इसलिए वह अन्य कोली औरतों से बहुत भिन्न भी दिखायी देती है। अन्य कोली स्त्रियां जहां अपने पतियों से हर प्रकार से दबती है, अत्याचार सहती है, पीटी जाती है, वहीं वंशी अपने पति बिट्टल को पीटती है तथा डांट–फटकार करके काम करवाती है। शराब पीकर निठल्ले पड़े अपने पति से कहती है, ''हम बोलताय खबरदार, आगे ताड़ी पिया तो हम घर से निकाल देयेंगा। हमको ऐसा आदमी नहीं पाहिजे। समझु ले बिट्टल, तेरे कू मार–मारकर ठीक करना होयेंगा। आज तू समुद्र में जायेंगा, जागला को नई जाने का।''[8]

वह एक व्यभिचारी स्त्री है। विवोहापरान्त अपने पति बिट्टल के रहते हुए अपने ही एक नौकर जागला के साथ अनैतिक संबंध स्थापित तो करती ही है, विवाह के पूर्व भी वह अपने एक प्रेमी को आलिंगन दे चुकी थी। वंशी जागला से संबंध इसलिए नहीं स्थापित करती कि उसकी कामभावना अतृप्त है बल्कि इसलिए करती है कि वह कहीं असन्तुष्ट कामभावना के कारण किसी अन्य स्त्री के साथ न हो ले और एक वफादार मेहनतकश नौकर उसके हाथ से निकल कर उसे आर्थिक क्षति न पहुंचा दे। ये स्त्री पुरुष की नारी विषयक दुर्बलता से लाभ उठाकर अपनी प्रस्तावित अर्थ–व्यवस्था को सुगठित करना चाहती हैं। उसके भीतर धन–दौलत की अमिट प्यास है और अपने कोली समाज में सबसे संपन्न और प्रतिष्ठित बनने की ऐसी भयंकर लालसा है कि उसके लिए वह बिना दाम के गुलाम जागला को अपना दूसरा पति का स्थान भी दे देती है, ''सो हमारे पास रै। एक बिट्टल और दूसरा तू समझा ?''[9]

उपन्यासकार ने वंशी के रूप–वर्णन का वर्णन करते हुए लिखा है कि–''बड़ी–बड़ी आंखें, मामूली उठी चौड़ी नाक, उभरी कनपटी की हड्डियां, रसीले पतले होंठ, उभरी ठोड़ी, सुता हुआ सांवला शरीर पर चिकना, कद न बहुत ऊंचा न ठिगना, मुख पर रौब और गंभीरता के चिन्ह, जूड़े में वेणी और माथे पर चवन्नी के बराबर टिकुली।''[10] इसका ही वर्णन करके रह जाते है, बल्कि साथ–साथ उसके चरित्र की विशेषताएं बतलाने के लिए यह कहना भी नहीं भूलते कि वह अपने ढंग से शृंगार करती, रात को शराब पीती.....नाचने–गाने और शराब से रात–रात बिता देती।''[11] वंशी एक वात्सल्यमयी मां के रूप में भी सामने आती है। रत्ना की खोज में रत्ना न मिलने पर उस आघात में उसकी आंखों की रोशनी चली जाती है और मिलने पर वापिस आ जाती है।

यशवंत– यशंवत एक आर्दश प्रेमी और चरित्रवान व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। उसका चरित्र प्रारंभ में एक वर्गीय चरित्र–सा ही है पर धीरे–धीरे उस पर आदर्शों का इतना रंग चढ़ा दिया जाता है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही मिट जाता है। वह सीधा–सादा कोली युवक प्रेम की आंच में तपकर शरत् का देवदास ही नहीं, संत–महात्मा भी बन जाता है। यशवंत का ग्राम–सुधार में योग देना और शिक्षा–प्रसार तथा सफाई के कार्यों में लग जाना ही उसके संयम का

रक्षक है। रत्ना के प्रति यशवंत की उत्कट आसक्ति और रत्ना द्वारा उपेक्षित किये जाने से उत्पन्न हुई निराशा यशवंत को न तो आक्रामक ही बनाती है और न निष्क्रिय ही, और न ही उसमें किसी प्रकार की मानसिक विकृतियां उत्पन्न होती है। बल्कि वह आजीवन कुंवारा रहकर ''बरसोवा के गरीबों की सेवा करता है।''[12] यहां तक कि वह संपूर्ण गांव का ही काया–कल्प करने में अपने जीवन को समर्पित कर देता है।

माणिक– माणिक एक फरेबी एवं कुंठित व्यक्ति है। वह अपनी पहली पत्नी दुर्गा को मारता–पीटता भी है फिर वह रत्ना को वशीभूत कर लेता है। रत्ना भी उसके पैसों को देखकर उससे शादी कर लेती है। अपनी आत्महीनता की अनुभूति के कारण वह रत्ना से दूर भागने लगा और कामतुष्टि के अभाव में रत्ना का भूखा मन यशवंत के स्वप्न देखने लगा। माणिक व रत्ना दोनों का दाम्पत्य संबंध ज्यादा दिन नहीं निभता। माणिक अपनी पत्नी रत्ना को होटलों में गैर मर्दो से संबंध बनाने को मजबूर करता है। इस प्रकार वह एक डरपोक, वासना युक्त कामचोर व्यक्ति है।

डॉ. पांडुरंग– डॉ. पांडुरंग एक मानवीय गुणों से युक्त एक आदर्शवान पात्र है। वह रत्ना को अपने नर्सिंग होम में काम देता है तथा जब उसे पता चलता है कि रत्ना गर्भवती है तो वह उसे अपना नाम देकर शादी कर लेता है।

सारिका– सारिका रत्ना की सहेली है। वह मध्यवर्गीय जीवन से सम्बन्धित होने के कारण से पैसे को ही सब कुछ मानकर चलती है। पैसे की लालच के कारण अनजाने अपरिचित व्यक्ति से शादी कर लेती है। जीवन के साथ संघर्ष करना नहीं चाहती है और पढ़ी–लिखी होने पर भी उसकी दृष्टि विशाल नहीं है वह रत्ना को वापस घर जाने की सलाह भी देती है।

पार्वती– पार्वती जो कि वर्लीकर से प्रेम करती है और वर्लीकर के न मिलने पर यशवंत के प्रति आकर्षित हो जाती है। यशंवत के पार्वती के प्रति कोई भाव प्रकट नहीं करने पर वह उसके पीछे लगी रहती है। पार्वती में ईर्ष्या भाव अधिक है। वह गांव के लोगों को आपस में लड़ाकर खुश रहती है।

रत्ना– उपन्यास में रत्ना ही मुख्य पात्र है। जो कि बरसोवा गांव के एक सम्पन्न कोली परिवार से है। सारे बरसोवा में वही एक लड़की है जो कॉलेज जाती है। अंधेरी से दूर मछुआरों की यह गंदी बस्ती है, जहां के मछुओं का जन्म और मरण समुद्र से ही होता है, उनकी आजीविका समुद्र से ही पूर्ण होती है। 'रत्ना' के जीवन में धीरे–धीरे नगर की व्यक्तिवादी चेतना संचरित होने लगती है, उसके पुराने रूढ़िवादी संस्कार शिथिल पड़ने लगते है। इसका एक ही कारण उसकी सहेली सारिका है जो ब्राह्मण परिवार से है और आधुनिका है। 'रत्ना' ने उसे भी देखा है और बम्बई शहर भी देखा है। उसका मन प्रारंभ से ही सिनेमा, पार्टियों, भीड़, मोटर, बंगला में भटकता है। मछली का धंधा उसे कतई पसंद नहीं। रत्ना के प्रेमियों की कोई गिनती है और न उसके प्रेम–प्रसंगों की, क्यों वह स्वयं ही स्वीकार करती है–''प्रेम–प्रेम नहीं जानती, ब्याह हो रहा है। बस उस आदमी के पास रुपया है, ठाठ है, टैक्सी पर चलता है। मकान सजा हुआ है।''[13]

यह शहरी या सिनेमाई प्रेम की प्रवृत्ति है जो कोली जाति की पढ़ी–लिखी आधुनिका में विकृत के रूप में दिखायी गयी है। वह अपनी सहेली सारिका को कहती है कि मैं मत्स्यगंधा बनना चाहती हूं। अतः यह जानते हुए कि उसकी मां ने अपार धन भूमि में गाढ़ रखा है वह बरसोवा के दम–तोड़ वातावरण से ऊब जाती है और मोटर, बंगला के लालच में यशवंत जैसे नौजवान को छोड़ कर धूर्त माणिक से शादी कर लेती है।

बम्बई में माणिक के साथ रहते हुए उसका वैवाहिक जीवन पहले पहल सुखद व्यतीत होता है। सारिका के साथ कभी–कभी वह नगर में होने वाली सभाओं और उत्सवों में चली जाती है, परन्तु सब से अधिक उसे सिनेमा देखना ही भाता है। नृत्य, संगीत के आयोजन उसे अधिक सुख देते। उसे लगता है वास्तव में यही जीवन है, वही दुनिया है।[14] परन्तु जल्द ही उसका मोहभंग हो जाता है जब धन के लोभ में माणिक 'रत्ना' को अपने पार्टनर के साथ अकेला भेज देता है, 'रत्ना' तो बच जाती है परन्तु अपने पति के पार्टनर के साथ हाथ–पांव अवश्य तोड़ देती है। इसी प्रकार वह बारम्बार फंसती है और बार–बार उबरती है। होटल पर बैठती है तो शंकर गुंडे का यौवन उसे यशवंत की याद दिलाता है, तब माणिक के शरीर की हड्डियों से उसे वितृष्णा होने लगती है। उसका यौवन दब कर बौना हो जाता है। उसके सपने, सपने ही बने रहते है जब मोटर में घुमने की साध, मालाबार हिल देखने की चाह, मोटर, बंगले, नौकरानी की साफ बोली माणिक मछली मार्केट में बोल आता है। यही नहीं 'रत्ना' को जहां

लोगों के व्यंग्य–बाण झेलने पड़ते है वही उन्हें चाल से कमरा खाली कर देने का आदेश भी मिल जाता है। तब माणिक की गलियां रत्ना को मजबूर कर देती है, वह माणिक का त्याग कर दे। माणिक को त्यागने के बाद क्योंकि वह स्वालम्बी बनना चाहती है इसलिए गांव वापिस न जाकर एक सेठानी के यहां नौकर हो जाती है। यहां भी सेठानी के भाई द्वारा अपनी इज्ज्त पर हमला होता देखकर वह उसकी पिटाई कर देती है और सेठानी की नौकरी छोड़ देती है। तब वह 'टाईप' सीखती है और अपने पुराने सपनों को पूर्णतः देने के लालच में वकील धीरुवाला की वासना का शिकार हो जाती है। यहां धीरुवाला को पट्टियां बांधनी पड़ती है और रत्ना की गर्भ में धीरुवाला की संतान के लिए डॉ. पांडुरंग के यहां नर्स बन जाना पड़ता है। वह मेहनती है, मरीजों को खुश रखती है इस लिए डॉ. पांडुरंग भी उसकी ओर आकर्षित है। रत्ना के वियोग में उसकी मां की आंखें जाती रहती है और वह उसी नर्सिंग होम में दाखिल हो जाती है। यहां मां की ममता उसे फिर खींच लेती है। डॉ. को पता चलता है तो वह धीरुवाला की संतान को अपना बता कर, उसकी मां को, पति–पत्नी के रूप में अपना और रत्ना का परिचय देता है। संपूर्ण उपन्यास में रत्ना धन के प्रति आसक्त रहती है, जिसके कारण वह पूंजीवादी बंधनों से जकड़े रहती है। इसी लिए उसे आत्म–विस्मरण तथा आत्मघात की भावनाएं झंझोड़ती है। वह अपने परिवेश से इस कदर कट चुकी है कि लौटना अब उसके लिए असंभव है। इस तरह उपन्यास में रत्ना चरित्र जीवन संघर्षमय रहा है। जो अपनी महत्त्वाकांक्षा व आंतरिक शक्ति के बूते पर वर्तमान को सुनहले भविष्य में बदल देना चाहती है और अंत में बदल कर ही रहती है।

कुल मिलाकर 'सागर लहरों और मनुष्य' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें भट्टजी ने विशिष्ट से संश्लिष्ट, व्यक्तिगत से आंचलिक, रत्ना से कोली समाज और बरसोवा से बम्बई महानगरी को समन्वित करके काम को अर्थ से और अर्थ को भौतिक जीवन से जोड़ दिया है, विशिष्टता और संश्लिष्टता की पार्श्वभूमि पर सामाजिक चेतना में प्रवाहमान बिम्बों और संवेदनाओं को, मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति भी दी है और उसका मनोविश्लेषण भी किया है।[15]

इस तरह समग्र उपन्यास में स्त्री–पुरुष पात्रों के अनेक मनोवैज्ञानिक पहलुओं को लेखक भट्टजी ने बड़ी बारीकी से प्रस्तुत करते हुए बरसोवा के मछुआरों का जीवन यथार्थ प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आज का हिन्दी उपन्यास : इंद्रदान मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 75*
2. *हिन्दी उपन्यास : डॉ. सुषमा धवन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1961, पृ. 148–150*
3. *साहित्य का उद्देश्य : प्रेमचंद, पृ. 24*
4. *द आर्ट ऑफ फिक्शन : हेनरी जेम्स, पृ. 393*
5. *हिन्दी कथा–साहित्य–विविध आयाम : डॉ. महेन्द्र भल्ला, पृ. 18*
6. *सागर लहरें, और मनुष्य : उदयशंकर भट्ट, नई दिल्ली, पृ. 11*
7. *वही, पृ. 12*
8. *वही, पृ. 31*
9. *वही, पृ. 32*
10. *वही, पृ. 13*
11. *वही, पृ. 13*
12. *वही, पृ. 310*
13. *वही, पृ. 112*
14. *वही, पृ. 183*
15. *व्यक्ति चेतना और स्वातंयोत्तर हिन्दी उपन्यास : डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, पृ. 294*

ISSN 2277-5587

महाराणा जगतसिंह की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियां

रंजीत कुमार वर्मा
शोधार्थी, माणिक्यलाल वर्मा श्रमजीवी महाविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मेवाड़ के शासकों में महाराणा कुम्भा और जगतसिंह के समक्ष एक समान राजनैतिक चुनौतियाँ थी, जिसका दोनों शासकों ने सफलतापूर्वक सामना कर मेवाड़ को सुदृढ़ किया। जिस प्रकार राणा कुम्भा पड़ोसी राज्यों की महत्वकांक्षा को नष्ट किया, उसी प्रकार जगतसिंह केन्द्रिय शक्ति के विरुद्ध जाकर राज्य को समृद्ध बनाया। स्थापत्य कला, चित्रकला, व साहित्य के क्षेत्र में राणा कुम्भा का काल स्वर्णकाल था। जगतसिंह ने कुम्भा कालीन सांस्कृतिक विकास को परिष्कृत रूप में स्थापित किया। महाराणा जगतसिंह उदयपुर में पंचायतन शैली में विख्यात जगदीश मंदिर का निर्माण करवाया।

संकेताक्षर : *राजनीतिक, केन्द्रिय, समृद्ध, स्थापत्य, स्वर्णकाल, पंचायतन।*

महाराणा कुम्भा महाराणा मोकल का ज्येष्ठ पुत्र था जो 1433 ई. में मेवाड़ का शासक बना।[1] महाराणा कुम्भा एक ऐसा शासक था जो युद्धरत रहते हुए मेवाड़ के विकास को ऊँचाइयों तक पहुँचाया। इसके विपरित महाराणा जगत्सिंह ने शान्तिकाल के दौरान महाराणा कुम्भा के विकास कार्यो को आगे बढ़ाया। महाराणा कुम्भा के शासन काल में केन्द्रीय शक्ति विघटन के दौर से गुजर रहा था वहीं महाराणा जगत्सिंह के शासन काल में केन्द्रीय शक्ति सुदृढ़ अवस्था में थी। कुम्भा के समक्ष पड़ोसी राज्यों के आक्रमण से मेवाड़ की रक्षा की चुनौती थी तो वहीं जगतसिंह के समक्ष मेवाड़ के विखण्डन को रोकना था। इस प्रकार मेवाड़ के दोनों शासकों के समक्ष राजनीतिक परिस्थितियाँ समय काल के अनुसार लगभग एक जैसी ही थी। दोनों शासकों ने इन चुनौतियों को सफलतापूर्वक सामना किया तथा मेवाड़ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महाराणा जगत्सिंह ने कुम्भा के समान ही स्थापत्य कला, चित्रकला, संगीत कला, धार्मिक मान्यताएँ, सांस्कृतिक परम्पराओं, आर्थिक व्यवस्थाओं तथा राजनीतिक गतिविधियों के उच्चतम स्वरुप को स्थापित किया।

महाराणा जगत्सिंह का जन्म विक्रम् संवत् 1664, भाद्रपद सूदि 2, शुक्रवार (अगस्त 14, 1607ई) को हुआ था।[2] महाराणा कर्णसिंह के ज्येष्ठ पुत्र कुँवर जगत्सिंह था। जगत्सिंह की माता जाम्बुवती थी जो मारवाड़ के माहेया राठौड़ जसवंत सिंह की पुत्री थी।[3]

जगत्सिंह बालकाल से ही गम्भीर स्वभाव रखता था स्वाभिमान वीरता भी उसके चेहरे पर झलकता था। जब वह मुगल बादशाह जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुआ तो जहाँगीर ने उसकी प्रशंसा करते हुए अपनी आत्मकथा तुजुक-ए-जहाँगीरी में लिखा है कि 'यद्यपि उसकी (जगतसिंह) आयु उस समय मात्र 12 वर्ष की थी, परन्तु उसके चेहरे पर परिपक्वता के सारे लक्षण दिखाई देते थे। हमने खिलवत् व अन्य उपहार देकर उसे प्रसन्न किया'।[4]

महाराणा कुम्भा के बाद से मेवाड़ के शासक हमेशा बाहरी आक्रमणकारियों से अपने देश की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए संघर्षरत रहे। 1615 ई. की सन्धि के बाद ही मेवाड़ में शान्ति स्थापित हुई तथा मेवाड़ में बाह्य आक्रमणों का भय समाप्त हो गया। महाराणा जगत्सिंह स्वयं एक विद्वान तथा धर्मप्रिय शासक था। उसने स्वयं व्यक्तिगत रूचि लेकर सांस्कृतिक उन्नति में अपना योगदान दिया।

मेवाड़ में महाराणा कुम्भा के बाद ऐसा कोई शासक नहीं हुआ जो स्थापत्य कला की ओर ध्यान देता क्योंकि मेवाड़ व

मुगलों के बीच हमेशा टकराव की स्थिति चलती रही, जिसका अन्त 1615 ई.की मेवाड़-मुगल सन्धि के रूप में हुआ। सन् 1615 ई. तक मेवाड़ मुगलों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए टक्कर लेता रहा। महाराणा अमरसिंह के अपने अन्तिम समय में कुँवर कर्णसिंह व शाहजादा खुर्रम द्वारा आपसी सहयोग व मित्रतापूर्ण वातावरण में मेवाड़ व मुगल का टकराव बन्द हो गया। इस सन्धि के बाद महाराणा अमरसिंह अधिक समय तक जीवित नहीं रहा तथा 1620 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।[5] महाराणा अमरसिंह के बाद कुँवर कर्णसिंह महाराणा बना तथा उसने अपने इस शान्तिकाल में स्थापत्य कला के साथ अन्य क्षेत्रों में भी विकास कार्य करना शुरू किया परन्तु उसका शासन काल अल्प अवधि 1620-1628ई.मात्र 8 वर्ष का ही रहा, जिसकी वजह से वह कोई महत्वपूर्ण योगदान इस क्षेत्र में नही कर सका। महाराणा कर्णसिंह के बाद उसका ज्येष्ठ पूत्र कुँवर जगत्सिंह 1628 ई.में महाराणा बना।[6] जिसने ना केवल मेवाड़ को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया अपितु अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ स्थापत्य कला व मूर्तिकला को अपने शासन काल में चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था। महाराणा कुम्भा के पश्चात् मेवाड़ में सर्वाधिक विकास विशेषकर कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में महाराणा जगत्सिंह के काल मे हुआ।

महाराणा जगत्सिंह महत्वकांक्षी शासक था। उसने अपनी दूरदर्शिता व कूटनीति से अपनी इच्छाओं को साकार रूप दिया। महाराणा बनते ही उसने अपने आस-पास के इलाकों को विजित करने का सुनहरा अवसर जानकर देवलिया प्रतापगढ़, डुँगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही आदि राज्यों को अपने अधिकार में ले लिया,[7] क्योंकि उस समय जहाँगीर की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह शाहजहाँ सम्राट बना था तथा वह जुझार सिंह बुन्देला के विद्रोह को दबाने में व्यस्त था, इसी व्यस्तता का लाभ महाराणा जगत्सिंह ने उठाया था।[8] महाराणा जगत्सिंह के सैन्य अभियान की सुचना शाहजहाँ को मिली तो वह नाराज हुआ। परन्तु जगत्सिंह ने 1633 ई.में शाहजहाँ को दक्षिण विजय के उपलक्ष्य में उपहार व बधाई सन्देश झाला कल्याणमल के माध्यम से भेजकर अपने पक्ष मे कर लिया।[9]

महाराणा जगत्सिंह ने मुगलों के साथ एक संतुलित नीति अपनाई। जब कभी मुगल किसी राजनीतिक संकट में आता जैसे जुझार सिंह का विद्रोह या बल्ख संकट तब तब महाराणा जगतसिंह ने मेवाड़ की सीमा का विस्तार किया, परंतु जैसे ही वह अनुभव करता कि बादशाह, उसकी नीति से क्रोधित मेवाड़ पर आक्रमण करने की स्थिति में है, तब राणा बादशाह को प्रसन्न करने के लिए विनयशीलता तथा आज्ञाकारिता की नीति का अनुशीलन करता। मेवाड़ की और से सैनिक सहायता भी भेजता तथा अपने लाभ के अवसरों को तलाशता रहता। राणा की इस नीति की समीक्षा करते हुए दरबारी कवि रघुनाथ प्रशंसा करते हुए लिखते है कि ''जगत्सिंह हमेशा बलशाली शत्रु के साथ मित्रता का व्यवहार करता था और निर्बल शत्रु को दबाता था।''[10]

महाराणा जगत्सिंह एक कुटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी शासक था। उसकी प्रशासनिक सफलता का कारण यही नीति रही। इससे वह निश्चित होकर मेवाड़ राज्य की प्रगति, स्थापत्य कला, शिक्षा एवं साहित्य आदि की उन्नति एवं धार्मिक प्रवृतियों को पूर्ण करने में पूरा समय दे सका। उसके समय के स्थापत्य के नमूनो और धार्मिक प्रवृतियों से संबधित अभिलेखों से उसका योग्य शासक होना प्रकट होता है। यदि वह संघर्षो में फंस जाते तो मेवाड़ की अपार जन-धन की हानि होती व समृद्धि बाधित होती और निर्माण कार्य नहीं हो पाते। परन्तु महाराणा ने दूरदर्शिता से दोहरी नीति अपनाकर मेवाड़ की समृद्धि और जनहित कार्यो के लिए अधिकतम समय प्राप्त किया और इस उद्देश्य में वह सफल भी हुआ।

जहाँगीर के काल में मेवाड़ मुगल सन्धि के अनुसार महाराणा जगत्सिंह को चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत नहीं करवानी थी, उधर शाहजहाँ का उत्तराधिकार संकट शुरू हो गया था। इस परिस्थिति का लाभ उठाते हुए उसने बादशाह की प्रसन्नता की परवाह किये बिना अपने शासनकाल के अंतिम दिनों में चित्तौड़ दुर्ग की मरम्मत का कार्य शुरू किया। मरम्मत का कार्य पूर्ण होने से पूर्व ही महाराणा जगत्सिंह का अप्रैल 10, 1652 ई. को देहान्त हो गया।[11] इसमें कोई सन्देह नही कि महाराणा जगत्सिंह एक उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था, जिसके मुगल बादशाह के साथ न तो अच्छा सम्बंध रहा और न ही खराब रहा।

अपनी इस कुटनीति व चातुर्य से उसने अपने शासन काल में मेवाड़ की शक्ति, समृद्धि एवं प्रभुता के विस्तार के साथ-साथ मुगल सम्राट से मधुर सम्बन्ध कायम रखकर मेवाड़ को बाहरी आक्रमणों के भय से मुक्त रखा तथा सुख-शांति का वातावरण बनाये रखा

जिसके फलस्वरूप मेवाड़ में सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास हुआ।

मेवाड़ का राजा जगतसिंह हिन्दु धर्मशास्त्रों के अनुसार नियमों, दायित्वो और कर्त्तव्यों का पालन करता था। वह पूर्ण स्वेच्छाचारी नही था।[12] सैनिक अभियान, आक्रमण, शत्रुविरोध, राज्य–प्रशासन एवं उत्तराधिकार के निर्णय के लिए राजा अपने सामन्तो के विरोध का सामना भी किया किन्तु महाराणा जगत्सिंह सामन्तों के साथ भाइयों जैसा व्यवहार किया। उन्हें अपनी–अपनी जागीरों में स्वतंत्र शासन प्रबन्ध करने की छुट दे रखी थी। इससे राज्य की आन्तरिक शांति और व्यवस्था बनी रही। मेवाड़ के तत्कालीन स्रोत जगत्सिंह कालीन प्रशासनिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। कवि मान कृत राजविलास में महाराणा जगत्सिंह द्वारा केन्द्रीय प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए 41 अधिकारियों की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।

जगत्सिंह जैसा दानी अन्य कोई महाराणा नहीं हुआ था। समकालीन कवि तो महाराणा की दानशीलता से इतने प्रभावित थे कि अपने स्वयं को भी वह पक्षी रुप में मेवाड़ में ही जन्म लेना सार्थक मानते थे। महाराणा जगत्सिंह की दानशीलता प्रसिद्ध है। उसके द्वारा दिये हुए बड़े दानों में कल्पवृक्ष, सप्तसागर, रत्नधेनु और विश्वचक्र प्रसिद्ध है।[13] इनकी दानशीलता के बारे मे अनेक कवियों ने अपने गीतों में वर्णन किया है। अपने जीवन काल में जगत्सिंह ने असीमित धन दान में दिया। यदि उन्हें कुबेर का खजाना भी प्राप्त होता तो उसे भी व दान में देने की इच्छा रखते थे।

मेवाड़ के शासकों ने शैक्षणिक एवं साहित्यिक उन्नति को ही सामाजिक आर्थिक विकास का आधार माना। महाराणा कुम्भा का काल इस दृष्टि से 'स्वर्ण युग' माना गया।[14] कुम्भा काल में धार्मिक साहित्य के साथ–साथ कलापरक साहित्य में अनेक रचनाएँ हुई। धार्मिक साहित्य में शैव धर्म, वैष्णव धर्म व जैन साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। कलापरक साहित्यों में संगीत ग्रंथ, वास्तुशास्त्र व प्रतिमा शास्त्र से सम्बन्धित अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना किया।[15] मेवाड़ के शासकों में ठीक उसी प्रकार महाराणा जगत्सिंह ने कुम्भा के परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इस ओर ध्यान दिया व स्वयं ने भी शास्त्रों का अध्ययन किया और विद्वानों को कुम्भा की तरह राज्याश्रय प्रदान किया। राजकवि रघुनाथ पालीवाल ने जगत्सिंह–काव्यम् की रचना की जो मेवाड़ के तत्कालिन साहित्य एवं इतिहास के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।[16] महाराणा जगत्सिंह की प्रशंसा में विश्वनाथ ने ''जगत्प्रकाश'' की रचना की। जगत्सिंह के आश्रय में आयुर्वेद के पर्याप्त विकास को परिलक्षित करने वाला ग्रंथ ''सुश्रुतसार'' की रचना भी हुई, जिसके रचनाकार आचार्य बाला है।

जगत्सिंह की प्रशंसा में संस्कृत भाषा में प्रशस्तियों की रचना हुई जिनमें प्रमुख है मोहन भट्ट द्वारा लिखित ''जगत्सिंहाष्टक–प्रशस्ति''। इसके अलावा रामेश्वर प्रासाद प्रशस्ति, बाणनाथ प्रशस्ति, उँकारनाथ प्रशस्ति, धाय के मन्दिर की प्रशस्ति, एकलिंग मन्दिर की प्रशस्ति व जगन्नाथ राय प्रशस्ति महत्वपूर्ण है।

महाराणा जगत्सिंह के समय मेवाड़ में संस्कृत, जैन, मेवाड़ी, राजस्थानी व डिंगल भाषा में विभिन्न ग्रंथों की रचना हुई। इस काल में विभिन्न भाषाओं में साहित्य का सृजन हुआ है, जो महाराणा कुम्भा के बाद महाराणा जगत्सिंह के काल में हुआ। इस समय के कवियों में विदुर जोगीदास व भीमराज आशिया आदि प्रमुख थे। इन कवियों ने महाराणा जगत्सिंह की दानशीलता, वीरता, विद्वता और धार्मिक प्रवृति का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। जैन मुनि लब्धोदय का ''पद्मिनी चरित्र चौपाई'' पद्मिनी की ऐतिहासिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

चित्रकला की दृष्टि से महाराणा जगत्सिंह का काल महाराणा कुम्भा के बाद विकास का काल था। इस काल में कई साहित्यिक रचनाएँ हुयी जिनमें प्रमुख है – आर्ष रामायण, श्रीमद्भागवत, गीत–गोविन्द, कुमार सम्भव, सूरसागर, रागमाला, रसिकप्रिया व कविप्रिया इत्यादि से सम्बधित कथानक चित्रों को उस समय के प्रसिद्ध चित्रकार साहीबदीन व उसका सहायक मनोहर ने रंग व तुलिया के सांमजस्य से उत्कीर्ण कर चित्रकला को शिखर तक पहुँचा दिया। चित्रकला में प्रयुक्त रंग कुम्भाकालीन चित्र और मेवाड़ मुगल मिश्रित चित्रकला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। महाराणा जगत्सिंह के राज्यकाल में चित्रकला का सर्वांगीण विकास हुआ था तथा चित्रकला पूर्ण व परिपक्व अवस्था में थी। जितना विकास चित्रकला का महाराणा जगत्सिंह के काल में हुआ, इससे पूर्व कभी भी नहीं हुआ था तथा महाराणा जगत्सिंह के काल की चित्रकला की उन्नति को देखते हुए उस काल को चित्रकला का 'स्वर्णयुग' कहा गया है।[17]

महाराणा जगत्सिंह जो स्वयं वैष्णव धर्म का अनुयायी था, उसने अनेक धार्मिक कार्य किए जिनमें मुख्यतः जगदीश मन्दिर का निर्माण, उदयसागर की पाल पर महलों का निर्माण, मोहन मन्दिर, तोरण द्वार, तुला स्तम्भ, चित्तौड़ के प्रासादों तथा किलों की चार–दिवारी का पुर्ननिर्माण करवाया था।[18] महाराणा जगत्सिंह के काल में स्थापत्य कला के रूप में उन्ही के द्वारा निर्मित जगन्नाथराय प्रासाद जगदीश मन्दिर नागर शैली के पंचायतन रूप का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

जगन्नाथराय प्रासाद (जगदीश मंदिर) न केवल राजस्थान अपितु समस्त उत्तर भारत के विशाल एवं सुन्दर मंदिरो में से एक है। जगदीश मंदिर मे लगे विशाल प्रशस्ति इस मंदिर के निर्माण के बारे में तथा गुहिल शासको के विषय मे महत्वपूर्ण जानकारी देती है। महाराणा जगत्सिंह अपनी धार्मिक रूचि के कारण शाहजहाँ की धार्मिक नीति की परवाह किए बिना उदयपुर में महलों के उत्तर के समीप ही एक विशाल जगन्नाथराय जगदीश का विष्णु पंचायतन मंदिर[19] का निर्माण करवाया। इस मंदिर का निर्माण कार्य गूगावत पंचोली कमल के पुत्र अर्जुन की देखरेख मे समकालीन शिल्पी सूत्रधार भाणा तथा उसके पुत्र मुकुन्द व भूधर के अध्यक्षता में निर्मित किया गया।

जगन्नाथराय प्रासाद में निर्धारित मानानुसार ज्याड्यकुंभ, ग्रासपट्टी इत्यादी तथा उनके ऊपर गजस्थर, अश्वस्थर व नरस्थर इत्यादि निर्मित है। इस प्रासाद की एक के ऊपर एक तीन जंघा भाग निर्मित है। जिनमें से पहला भाग सादा निर्मित है एवं इसके ऊपर का भाग स्त्री पुरूष युगलो के प्रतिमाओ से युक्त है एवं इसके ऊपर तीसरा जंघा भाग पुनः स्त्री युगलो के प्रतिमाओ एवं मंदिर के विभिन्न दिशाओं में अष्ट दिक्पाल की मूर्तियों से सुसज्जित है। इस भाग की मूर्तियाँ द्वितीय जंघा भाग की मूर्तियों से बड़ी है।

मेवाड़ में महाराणा जगत्सिंह के समय जिस प्रकार स्थापत्य कला, चित्रकला की चहुँमुखी उन्नति हुई, उसी प्रकार उनके शासन काल में मूर्तिकला का भी पूर्ण विकास हुआ था। महाराणा जगत्सिंह कालीन मूर्तिकला परम्परागत शास्त्रोक्त विधि से विकसित हुई। उस समय महाराणा जगत्सिंह द्वारा निर्मित जगदीश मंदिर में पत्थरों पर उत्कीण मूर्तियाँ उत्कृष्ट है। इस काल की मूर्तियों में प्राचीन शैली के साथ–साथ मूर्तिशैली के विकसित एवं परिवर्धित रुप को समावेश किया। तत्कालीन मूर्तियाँ मेवाड़ के सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन को जानने के लिए महत्वपूर्ण है। जगदीश मंदिर के आंतरिक एवं बाह्य भाग में उत्कीर्ण विष्णु के दस अवतार, सुर–सुन्दरियां, अश्व, गज, सिंह तथा लक्ष्मी के विभिन्न स्वरूपों के अतिरिक्त गजस्थर, अश्वस्थर और नरस्थर आदि में छोटी–बड़ी विविध भावों व मुद्राओं की असंख्य मूर्तियाँ दृष्टिगोचर होता है जिनमें प्रमुख है अष्टदिक्पाल की मूर्तियाँ। ये मूर्तियाँ स्थानक मूद्रा मे ही निर्मित है।

इस प्रकार यद्यपि उस समय राजनीतिक विखंडन का दौर प्रारंभ हो गया था, परन्तु महाराणा जगत्सिंह ने अपनी कूटनीतिक योग्यता के द्वारा न केवल बाँसवाडा, डुँगरपुर, सिरोही आदि के सामन्तों को केन्द्रिय शक्ति के विरुद्ध अपने अधीन बनाये रखने में सफल रहा साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व कला एवं साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया और महाराणा कुम्भा के विरासत को संवर्धित किया। महाराणा जगतसिंह ने सनातन मूल्यों के धर्म, अर्थ व काम के स्वरुप को पुनः प्रजा के समक्ष नए रुप में स्थापित कर मेवाड़ को गौरवान्वित किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, पृ. 221*
2. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र; उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2 पृ. 520*
3. *पालीवाल, देवीलाल व माथुर, गिरीश नाथ, मेवाड़ के राजाओं की राणियाँ, कुवरों एवं कुवरियों का हाल पृष्ठ. 17*
4. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, पृ. 221*
5. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा 1992, पृ. 274*
6. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द; उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 520–21*
7. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा 1992, पृ. 276*
8. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा 1992, पृ. 275*
9. *(अ) मुंशी देवीप्रसाद कृत शाहजहाँनामा; अनुवादक रघुवीरसिंह व मनोहरसिंह, भाग 1, दिल्ली, 1975, पृ.101.*
10. *शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, पृ. 276*

ISSN 2277-5587

11. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द; उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 529
12. शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, पृ. 503
13. शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, पृ. 276
14. राठौड़, मोहब्बतसिंह; महाराणा कुम्भा, पृष्ठ सं. 31 प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर
15. शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, 1992, पृ. 189
16. शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, 1992, पृ. 243
17. राय, रामकृष्णदास; भारत की चित्रकला, पृ.78
18. शर्मा, गोपीनाथ; राजस्थान का इतिहास, आगरा, 1992, पृ. 243
19. सूत्रधार मण्डन विरचति प्रसाद मण्डन; श्लोक 43, संपादन-भगवान दास जैन, 1961 ई.

अज्ञेय के काव्य में प्रयोगधर्मिता

डॉ. हरिकेश मीना
सह आचार्य हिन्दी, हिन्दी राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

हिन्दी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद के बाद जिस प्रवृति का उदय हुआ उसे प्रयोगवाद के नाम से जाना जाता है। इसकी शुरूआत अज्ञेय के तारसप्तक 1943 से मानी जाती है । अज्ञेय ने तारसप्तको में नवीन प्रयोग किये उनके द्वारा कविता में नवीन प्रयोगधर्मिता से परिचय करवाया, उन्होने प्रयोगधर्मिता को साध्य मानते हुए पुरानी परम्पराओं को नकारते हुए प्रयोग को ही इष्ट माना है। उनके काव्य में सृजनात्मक आयाम प्रयोगधर्मिता के आयाम, भाषागत नीवनता, उपमान, प्रतीक एवं बिम्बात्मक नवीनता दिखाई देती है । काव्य में प्रयोगधर्मिता के लिए हिन्दी साहित्य अज्ञेय का आजीवन ऋणी रहेगा।

संकेताक्षर : *तारसप्तक, प्रयोगवाद, आयाम, बौद्धिकता, पारम्परिक, सृजनात्मकता, बिम्बात्मकता, नवीनता, भावभंगिमा, नियति, रहस्वाद, पलायन, प्रतिमा।*

हिन्दी साहित्य में लगभग 50–60 वर्षों से एक एसी नवीन काव्य प्रवृति के दर्शन दिखाई देते हैं। जिसके उन्नायकों और आलोचकों ने प्रयोगवाद की संज्ञा दी थी। हिन्दी की इसी नवीनतम प्रवृत्ति के क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य में इस प्रवृत्ति के प्रर्वतक अज्ञेय ही हैं। डॉ. जगदीश गुप्त ने अज्ञेय को प्रयोगवादी कविता के श्लाका पुरूष की अभिधा प्रदान की है।[1] अज्ञेय स्वयं तो एक नवीन विचाारधारा को लेकर चले ही और अपने साथ–साथ अनेक अन्वेषी कवियों को भी पाठकों से रूबरू करवाया इन्ही कवियों को हिन्दी साहित्य में राहों के अन्वेंषी कहा गया। अज्ञेय हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठत कवि, लेखक समीक्षक चिंतक दार्शनिक विचारक आदि अनेक प्रकार की प्रतिभाओं को समेटे ऐसे साहित्यकार हैं जिन पर हमारा हिन्दी साहित्य गर्व कर सकता है। एक आधुनिक लेखक होने के कारण अज्ञेय अपने देश की विलुप्त, उपेक्षित, विस्मृत शब्द और अर्थ की परम्परा में उतरते हैं। उनके लिए भारत और भांरतीयता ''से सन्दर्भित अनेक परम्पराएँ अतीत भले ही हों अनुपस्थित नही हैं। सामुहिक स्मृति, सामूहिक अवचेतन, आध्य विम्ब प्राक–स्मृतियाँ आदि विभिन्न प्रकार के नये आयाम उनकी चेतना में उसी प्रकार उठा–पटक करते हैं जिस तरह प्रकृति, परम्परा, धर्म ईश्वर, आत्म –अनात्म अस्तित्व इतिहास भूगोल की छायाएँ उनकी कवि चेतना पर झूलती रहती हैं।

प्रयोगवादी कविता में अज्ञेय के नये आयामों का परिवेश बहुत उपजाऊ, व्यापक एवं विस्फोटक है जिसे हम रचना समय का सांस्कृतिक सामाजिक परिवेश कहतें हैं। अज्ञेय की कविता में प्रयोगधर्मिता के नये आयाम इस दृश्य–अदृश्य परिवेश को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। अज्ञेय ने प्रयोगधर्मिता के नये आयामों के रूप में काव्य भाषा के अन्तर्गत विम्ब या प्रतिमा, उपमान और प्रतीक पर विधिवत चिंतन किया है। बिम्ब विधान में नूतनता और मौलिकता का प्रश्न भी कवि के लिए बड़े महत्व का है। डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र के अनुसार ''कवि अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय था उनका जन्म गोरखपुर के देवरिया जिले के कसिया नामक गाव में 7 मार्च सन 1911 को हुआ 'कसिया का संस्कृत में कुशीनगर है और भगवान बुद्ध ने इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था।[2] इन्होने इण्टर, बी.एस.सी,एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। हिन्दी साहित्य में परम्परा और आधुनिकता को एक अवधारणा के रूप में विकसित करने का श्रेय प्रयोगवादी कवि अज्ञेय को जाता है। हिन्दी साहित्य

में आधुनिक कविता, रस, बिम्ब, द्वन्द, उपमान प्रतीक और आलोचना के क्षेत्र में तथा आधुनिक कहानी, उपन्यास निबंध यात्रा वृतान्त और आलोचना के क्षेत्र में जो प्रगति मिली है। वह अज्ञेय की ही देन है। अज्ञेय ने अपने काव्य के माध्यम से रूढ प्रणालियों को तोड कर आधुनिक काव्य कौ शैल्पिक योजनाओं एवं अनुभूतियों को प्रतिष्ठत किया है। चन्द्रकांत बांदिवडेकर का कथन है कि'' ''इनके प्रयत्नों से युद्ध विरोधी अनुभत विरल, शब्द प्रचुर उच्छवासी कविता की प्रतिष्ठा प्रायः खत्म हुई और अनूभूति के खारेपन को प्राथमिकता देने वाली बुद्धि ने कथ्य के अनुसार शिल्प के लिए निरन्तर अन्वेषण करने वाली भाषा प्रतिष्ठत हुई, यह एक बहुत बडी क्रान्ति है, साहित्यक क्रान्ति।'' [3]

अज्ञेय की जीवन दृष्टि बौद्धिक और निष्ठा मानवतावादी है। वर्तमान हिन्दी साहित्य उनकी प्रतिभा से आलोकित है, विरले ही ऐसे साहित्यकार होते हैं जो अपने समय के साहित्य संसार को निरन्तर प्रभावित कर सकें तथा उस पर अपनी ऐसी अमिट छाप छोड सकें जो हमारी सृजना परम्परा का अमिट हिस्सा बन सके। समाज में रहने वाला कोई भी व्यक्ति या कवि राजनीतिक वातावरण से अछूता नही रह सकता अज्ञेय जी तो अध्ययन के दौरान ही राजनीति मे आ गये क्यों कि उस समय देश परतन्त्रता की बेडियों में जकड़ा हुआ था ब्रिटिश सरकार की ज्यादतियों से आम आदमी का जीना मुश्किल था। अज्ञेय जी ने सर्वप्रथम 1929 में लाहौर में क्रान्तिकारी जीवन का श्रीगणेश किया तथा 1930 में जेल गये, काल कोठरी में बंदी के रूप में रहें तथा 1934 में इनको इनके घर में नजरबंद रखा गया। [4] स्वतन्त्रता के प्रति जितना सम्मान तथा उच्चता का भाव अज्ञेय जी में था उतना हिन्दी साहित्य में किसी भी साहित्यकार में देखने को नहीं मिलता । उनके ''शेखर की खोज'' अन्तोगत्वा स्वतन्त्रता की खोज है। अज्ञेय का रचना काल सन 1943 ई. में तारसप्तक के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है इस काल में अज्ञेय ने एक नये वाद को जन्म दिया जिसे प्रयोगवाद के नाम से पहचान मिली। अज्ञेय ने कविता के क्षेत्र में नयी राहोंके अन्वेषण को बहुत महत्व दिया तथा नूतन काव्यधारा का निर्माण किया उसका मूल श्रोत पाश्चात्य काव्य ही है अज्ञेय स्वयं कहतें है ''घर में प्रकाश पूर्व या पश्चिम या किसी भी निश्चित दिशा से आता है पर खुले आकाश में वह सभी और समाया रहता है इसी में उसका आकाशत्व है उसी खुले आकाश को वह अपनी बॉहों में भर सके यही कवि का स्वप्न भी है''।

सन 1943 से 1954 ईस्वी तक सेना में नौकरी करते हुए अज्ञेय कवि के साथ-साथ निबंधकार, उपन्यासकार, आलोचक, पत्रकार व कथाकार होते हुए भी इन्होने चार तार सप्तकों का सम्पादन कर हिन्दी काव्य जगत का बहुत उद्धार किया। इन्होने अभिव्यक्ति तथा विषयवस्तु दौनों ही स्तरों पर हिन्दी काव्य में प्रयोग किये तथा इसे नयी भाव भंगिमा से समृद्ध किया, अज्ञेय स्वयं प्रयोग की प्रक्रिया से गुजरे इन्होने भाषा, भाव अलंकार उक्ति आदि के क्षेत्र में नये प्रयोग किए तथा नयी काव्य चेतना का संचार किया युग के जीवन की कुण्ठा, विघटन, नग्नता और खोखलापन इनके प्रयोगधर्मी नवायाम हैं। हिन्दी में प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रर्वतक के रूप में अज्ञेय ने तारसप्तक 1943 के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद का प्रारम्भ हुआ। ताारसप्तक में इन सात कवियों की कविताऐं संकलित कर (मुक्तिबोध, नेमीचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय) इस नवीन काव्यधारा के सम्बंध में अपने प्रयोगधर्मिता का परिचय हिन्दी से करवाया। प्रयोगवादी कवि प्रयोगधर्मिता को साध्य मानते थे ये कवि पुरानी परम्पराओं को नकारते हुए उन्हें निरर्थक मानते हैं और प्रयोग को ही एकमात्र इष्ट मानते हैं। भाषा शिल्प, छन्द अलंकार, प्रतीक, बिम्ब उपमान आदि की दृष्टि से नये प्रयोग किये हैं। अज्ञेय स्वयं मानते हैं कि तारसप्तक के कवि किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी एक मंजिल पर पहुचें नही हैं, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी हैं।

वस्तुतः यह अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता ही है। जिसके कारण वे इन कवियों को सप्तकों के माध्यम से प्रकाश में लाये। चिन्ता, इत्यलम, हरि घास पर क्षण भर, अरी ओ करूणा प्रभामय, बाबरा आहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए, ऑगन के पार द्वार इनके कविता संग्रहो में अज्ञेय ने नवीन प्रयोग कर प्रयोगधर्मिता को और आगे बढाने का काम किया है। अज्ञेय के सामने सबसे बडी समस्या थी प्रेषणीयता की। उनकी मान्यता है कि पुरानी भाषा, पुराने शब्द, पुराने उपमान, प्रतीक और पुराने बिम्ब वर्तमान संवेदनाओं और भावानुभूतियों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम नही हैं इसलिए कवि को नयी भाषा की तलाश रहती है वह नये उपमान खोजता है नये प्रतीकों और बिम्बों की खोज करता है।

इसी को आलोचकों ने प्रयोगधर्मिता कहा है। अज्ञेय इसमें अग्रणी रहें हैं। अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए पुराने परम्परित उपमानों का प्रयोग न करके नये उपमानों एवं नये प्रतीकों का प्रयोग करते हैं क्योंकि उन्हें लगता हे कि पुराने शब्द अपनी अर्थवत्ता को खो चुके हैं इन शब्दों की चमक गायब हो चुकी है, उनका जादू समाप्त हो चुका है। अतः भाषा के स्तर पर हमें नयें शब्द नए उपमान नए प्रतीक एवं नये बिम्ब खोजने पड़ेंगें। इस लिए वह नये प्रयोगों का समर्थन करते हुए कहते हैंः–

''अगर मै तुमको ललाती सॉझ के नभ की
अकेली तारिका
या शब्द के भौर की नीहार न्हाई कुंई,
तटकी कली चम्पे की,
बगैरह अब नहीं कह सकता।
ता नहीं, कारण कि मेरा हृदय
उथला है कि सूना है।
देवता अब इन प्रतीकों के कर गये कूँच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम छूट
जाता है''।

निरन्तर प्रयोग करने से जैसे बर्तन की कलई उतर जाती है उसी प्रकार पुराने उपमानों एवं शब्दों का जादू अब समाप्त हो गया है इसलिए अज्ञेय अपनी प्रेयसी के लिए नये उपमान गढ़ते हैं जैसे हरि ,बिछली घास और कलंगी बाजरे की कविता में कहते हैः–

हरि बिछली घास,
शरद की सॉझ के सूने गगन की पीठिका पर
ढेलती कलंगी छरहरी बाजरे की''।

प्रेयसी की स्निग्धता हरी दूब जैसी है और उसकी कोमल क्षीण छरहरी काया बाजरे की कलंगी के सदृश्य लगती है प्रियतमा का शरीर उसे कनक चम्पे की कली सा प्रतीत होता हैः–

''तुम्हारी देह
मुझको कनक चम्पे की कली है।
दूर से ही
स्मरण में भी गंध देती है''।

दूसरा तार सप्तक (1951) की भूमिका में अज्ञेय नें स्वीकार किया है कि प्रयोग किया जाना अच्छी बात नही है। क्योकि प्रयोग कवि का साधन है इष्ट नही ''प्रयोग अपने आप में इष्ट नही है। वरण वह दोहरा साधन है । एक तो वह सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह प्रेषण क्रिया को और उसके साधनों को जानने का माध्यम है।'' –5 कवि को अपनी अनूभूतियों को पाठक तक सम्प्रेषित करने की समस्या का सामना सदैव करना पड़ता है। उसे लगता है कि पुरानी भाषा और पुराने उपमान उसकी संवदेना को पाठकों तक आधे–अधूरे रूप में प्रेषित कर पा रहें है अतः वह अपने अनुभूत सत्य कों पाठक के मन में उतार देने के लिए निरन्तर साधन तलाशता रहता है। प्रयोगधर्मिता इसी खोज का परिणाम है। अज्ञेय के चिंतन और कृतिव को समझने के लिए सबसे पहले हमें अतिवादी धारणाओं से दूर जाना जाना होगा, जो कवि के रचनाकर्म को एकांगी दृष्टि से परखतीर है। किसी भी विषय पर स्वतन्त्र अभिव्यक्ति, रचनाकार का कर्म है'' साहित्यकार को किसी भी परिभाषा में नही बांधा जा सकता है[6]

हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद, छायावाद और प्रगतिवाद दौनों की प्रतिक्रियास्वरूप आया था वह अतीत को संकट के रूप में देखता तथा पुराने प्रतिमानों व उपमानों को ध्वस्त कर नवीन रूप से रचना चाहता है। इस काव्यधारा में बौद्विकता का आग्रह व शिल्प में परिवर्तन ही नहीं बल्कि भाव–बोध में भी परिवर्तन दिखाई देता है। इसमें फ्रायड का मनोविशलेषण तथा मार्क्स का, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दोनों ही उपस्थित हैं। उसमें व्यक्ति चेंतना का स्वर प्रमुखता से लक्षित होता है। अज्ञेय आधुनिक कवि के साथ ही रूप की दृष्टि से अधिक प्रयोगशील हैं। वे कवि कर्म तथा अभिव्यक्ति पर बल देते है। बिम्बवादी और प्रतीक वादी आन्दोलनों से प्रभावित होने के कारण बिम्ब और प्रतीक में नयापन दिखाई देता है। व्यंग, उक्ति वैचित्रय वक्रोति को आक्रोश की अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्त करते हुए मुक्त छन्द तथा गधात्मक भाषा का भी प्रयोग किया है। अज्ञेय की रचनाओं की विषयवस्तु उनकी क्रमशः विकसित काव्य प्रतिभा का प्रतिफल है प्रारम्भ में उनकी रचनाओं में भाव प्रवणता अधिक दृष्टिगोचर हुई जबकि बाद की रचनाओं में उनका चिंतक रूप दिखाई देता है। इनके काव्य में व्यक्तिवाद, अतृप्त प्रेम, नैराश्य वेदना, नियति एवं पलायन, करूणा एवं अवसाद, जिज्ञासात्मक रहस्यानूभूति, मुक्ति की कामना, राष्ट्रीयता लाक्षणिक पदावली, प्रतीकात्मक भाषा और अलांकारिक भाषा शैली दिखाई देती है।

अज्ञेय ने अपनी रचनाओं में यौन कुठाओं की समस्याओं का चित्रण किया है उनके अनुसार जब

मानव मन की गहराइयों में कोई भावना दब जाती है तो वह कुण्ठा का रूप ले लेती है काम जन्म कुण्ठाओं की अधिकता दिखाई देती है। उनकी ''सावन मेघ'' कविता का उदाहरण दृष्टव्य है :-

''वासना के फलक सी फेली हुई थी
धारयित्री सत्य सी
निर्लज्ज नंगी और समर्पित'' [7]

यह चित्र लज्जा रहित नग्न तथा भाव युक्त आत्मसमिर्पित भोग वनिता धरती का चित्र है। आधुनिक मनुष्य की खोज जिस प्रकार अज्ञेय जी की रचनाओं में विघटन से युक्त जीवन मूल्यों की समस्याओं से उभरता है उसमें वे यौन अतृप्त की समस्या को अनैतिक असंतोष की कुण्ठा से जोड़ते है।

अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण दिखाई देता है। चिन्ता, इत्यलम, भग्नदूत कविताओं में प्रकृति के मनमोहक चित्र दिखाई देते हे। इत्यलम काव्य संग्रह की आशी (बसन्त के एक दिन) की पंक्तियां दृष्टव्य हैः-

''फूल कचनार के,
प्रतीक मेरे प्यार के, प्रार्थना सी अर्ध स्फुट
कांपती रहे कली
पंक्तियों का सम्पुट
निवेदिता ज्यों अंजलि
आये फिर दिन मनुहार के दुलार के
फूल कचनार के''। [8]

अज्ञेय अपनी मानसिक दशा का पूरा चित्रण प्रकृति -चित्रण के माध्यम से करते है। यदि वह प्रसन्न है तो प्रकृति भी सुखकारी लगती है लेकिन वह दुःखी है तो प्रकृति भी उसें कष्टकारी उदास दुःख को बढाने वाली प्रतीत होती है। (बावरा अहेरी कविता की पंक्तियां दृष्टव्य है।) -

''अनमनी सी धुन्ध में चुपचाप हताश में ठगें से
वेदना से क्लित्र पुरणम टपकते तारे
हार कर मुरझा गये होंगें
अंधेरे में विचारे
विरस रेतीले नदी के दौनो किनारे''। [9]

अज्ञेय जी प्रकृति के समक्ष एक याचक की भॉति उपस्थित होते हैं वह प्रकृति के स्वभाव शील, रूप गुण पर मुग्ध होकर उसे पाने की याचना करते हैं यथा-

''मत संजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना
रहेगी बस एक मुठ्ठी खाक।
नश्वर। नश्वर। नश्वर।'' [10]

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण करते हुए कहते हैंः-

''बादलों का हाशिया है आसपास
बीच लिखीपांत काली बिजली की
कुजों की डार की अषाढ की निशानी।''

अलंकार रूप में ''बाबरा अहेरी'' कविता संग्रह की पंक्तियॉ दृष्टव्य है :-

''तुम्हारे नैन
पहले भोर की ओस बून्दें हैं
अछूती। ज्योंतिमय
भीतर द्रवित।
मानों विधाता के हदृय में जग गयी हो
भाप करूणा का अपरिमित'' [11]

अज्ञेय जी का हदृय राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। कवि का मन देश के कण-कण से जुड़ा हुआ है वह अपने विचारों तथा भावनाओं के माध्यम से शहर-शहर से लेकर गाँव-गाँव के छप्परों तक परिचित है वे जानते हैं कि गाँव के लोग किस़ तरह पूंजीपतियों के शोषण अत्याचारों के कारण अपनी झोंपडियों में सहमें है। शोषक वर्ग किस तरह अपनी विषैली वासना के साँप का जहर अपने शरीर में लिए अपनी हवेली में समाते नहीं बल्कि इधर-उधर फैले नजर आते हैं। अज्ञेय ने इन पर कटु व्यंग किया हैं। 'अखंड ज्योति' और ''रक्त स्नात वह मेरा साकी'' कविताऐं देश प्रेम से ओत-प्रोत है- अखंड ज्योति की कामना में कवि स्यवं को मिटाकर तथा जलाकर संसार का निर्माण और उसे प्रभामंडित करने के अभिलाषी हैं। स्वतन्त्रता के रास्ते को यदि रक्त से सींचना पडा तो भी वह उसे सीचींगें।

''मिटना स्वयं बनाना जग को जलना स्वयं जलाना जग को
शोषित से सींच स्वच्छ रखना उस स्वतन्त्रता के भग को''

वह अपने देश प्रेम को इन पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त करते हैं -

''देश के जन-जन का
यह स्नेह और विश्वास
जो हमें बताता है कि हम भारत के लाल है
वही हमे याद भी दिलाता है
कि हमी इसी पुण्य भू के
क्षिति सीमान्त के धीर दृढव्रती दिक्पाल हैं''। [12]

आज के भौतिकता से युक्त समाज में हर व्यक्ति अपनी स्वार्थ पूर्ति में लगा है। मानव सभ्यता की सीमा में इस प्रकार अंधा है किवह अपने थोड़े से स्वार्थ के लिए दूसरों का बड़ा से बड़ा नुकसान करने में नहीं हिचकता है–

''सभी जगह जिसकी मुठ्ठी में ताकत है
उसका भेजा है एक और भेडिये।
दूसरी और मर्कत का'' [13]

साहित्य के प्रति अज्ञेय जी एक सच्चे मानवतावादी है मानवता से युक्त साहित्य ही मनुष्य को संवेदनशील बनाता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में निवास करता है कवि भी उसी समाज का प्राणी है लेकिन सामाजिक चेतना से अपने को पूर्ण रूप से अलग कर लेना उसे सहन नही है। सामाजिक चेतना में समाज के कुछ दायित्वों का निर्वाह करते हुए वह कहता है –

''यह दीप अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो'' [14]

अज्ञेय की सामाजिक उन्मुखता में भी व्यक्तिगत चेतना परिलक्षित होती है। कविता कवि के हदृयस्थ भावों की पवित्र अभिव्यक्ति है। कविता के लिए जिस प्रकार की उत्तरदायित्वता व साधना होनी चाहिए वैसी साधना अज्ञेय में दिखाई देती है।

कविता को बाह्यलोक की विस्तृत भूमि से ले जा कर भावना लोक की गहराई को अज्ञेय जी ने पहचाना तथा सांसरिक जीवन की धूल धक्कड से उसे भुवन लोकवासी बना दिया –

''मैं कवि हूँ
दृष्टा उन्मेष्टा, सन्धाता
मैं कूत व्यय ।
मैं सच लिखता हूँ, लिख लिख कर सब
सबझूठ करता है''।

अज्ञेय जी ने अपने कृत्तिव को दीपक की भॉति साहित्य जगत के ऑगन में रखकर उसकी ज्योति से ''ऑगन के पार द्वार'' की और देखकर कहते हैं –

''मेरे छोटे घर कुटीर का दिया
तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत ऑगन में
सहमा सा रख दिया''। [15]

अज्ञेय की भाव भूमि विस्तृत तथा हदृयग्राही है । अज्ञेय एक श्रेष्ठ चिंतक साहित्यकार रहें हैं। समाज,व्यक्ति तथा साहित्य जैसे विषयों पर वे निरन्तर सोचते है। यही कारण है कि उनके विचार स्पष्ट भाषा में पुष्ट तर्को के साथ दृष्टिगोचर होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण प्रभाव को मिलाकर नवीन निर्माण करने वाली शक्ति ही कल्पना है । कल्पना ही हमारे चेतन मन की शक्ति है कल्पना द्वारा साधारण अनुभव रोचक हो उठते हैं। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावों के प्रर्वतन के लिए भी कल्पना अपेक्षित होती है। ''असाध्यवीणा'' में कवि के इसी गुण का दर्शन होता है। प्रियवंद आह्वान करता है–

''तू गाः
मेरे अंधियारे अन्तस में आलोक जगा
स्मृति का । श्रुति का
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा :।''

अज्ञेय जी ने अपनी कल्पना तथा रूचि के अनुरूप अपनी कविता में प्रकृति का श्रंगारिक मावनीयकरण किया है–

''सो रहा झोप अंधियाला, नदी की जॉघ परः
डाह से सहरी हुई यह चॉदनी, चारो पैरो से
उलझकर
झांक जाती है। प्रस्फुटन के दो क्षणों का मोल
शेफाली
विजय की धूल पर चुपचाप
अपने मुग्ध प्राणों से अनजाने
आँक जाती है''।

अज्ञेय कल्पनाओं के धनी हैं तथा उन्होने सार्वभौमिक और सार्वकालिक हदृयग्राही काव्य का सृजन किया है। अज्ञेय जी काव्य में माधुर्य के प्रयोग में सिद्वहस्त हैं उनकी काव्य कृतियॉ नवीनता, मधुरता और सरलता से युक्त हैं उनकी कविताओं में माधुर्य भाव दृष्टिगोवर होता है। यथाः–

''फिर उठे हम मुड चलने को
जब नैन मिले, हुए मानो जलने को
एक को जो कहना था दूसरें ने सुन लिया। [16]
''केवल बना रहे विस्तार हमारा बोध
मुक्ति का
सीमाहीन खुलेपन का ही।''

प्रस्तुत कविता में प्रेम की पीड़ा तथा माधुर्य भाव का चित्रण किया हैं। अज्ञेय का माधुर्य भाव कही व्यंगात्मक

तो कहीं प्रेम से सिक्त दृष्टिगोचर होता है। अज्ञेय जी की सौन्दर्य चेतना निराला जी के निकट है, इनकी सौन्दर्य चेतना का पूर्ण विकास 'हरि घास पर क्षण भर' कविता में कवि की नवीन दृष्टि दिखाई देती है। 'अरी ओ करूणा प्रभामय' ''कविता में कवि की प्रेमानूभूति, सामाजिक अनूभूति तथा आध्यात्मिक अनुभूति एक साथ दिखाई देती है।'' भग्नदूत कविता संग्रह में छायावादी रोमांटिक अनूभूति दिखाई देती है। ''चिन्ता'' में नारी पुरूष सम्बंधों का द्वन्द है। यहॉ कवि की सौन्दर्य चेतना नारी मनोविज्ञान को बड़ी सहजता से प्रस्तुत कर रहा है –

''प्रिय आओ इसकी सित फेनिल स्मित के नीचे
तप्त किन्तु कम्पन्न श्लथ हाथ मिलाकर
शोषित के प्रवाह में जीवन का शौथिल्य भुलाकर
कसी अनिर्वच सुख से ऑखे नीचे
हम खो जावें व्यक्तिक पार्थव्य मिटाकर। [17]

इसी प्रकार नारी शरीर की कोमलता, मृदुलता तथा सौन्दर्य को अज्ञेय ने बिछली घास तथा कलंगी छरहरी बाजरे की जैसे प्रतीकों के माध्यम से चित्रित किया है।

''अगर मै यह कहूँ
बिछली घास हो तुम
लहलाती हवा में कलंगी
छरहरी बाजरें की''।

अज्ञेय की भाषा में विविधता के दर्शन होते हैं। इनकी भाषा में तत्सम, तद्भव तथा देशज प्रधान शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। जैसे तत्सम युक्त शब्द, चरम द्वन्द, आत्मा, निसब्बेल, गोचर में एक अगोचर, अप्रेमय आदि : तदभव शब्द, हवाला कैसी बाट भरोसा, किनका तथा देशज शब्द' मतीयता, सागर, लहराया, भोर की, नीहार, नहाई कुई, अंजुरी भरभर कर पीलों इत्यादि। अज्ञेय ने आत्मनेपद में कहा है कि मैं उन व्यक्तियो में से हूँ और ऐसे व्यक्तियों की संख्या शायद दिन प्रति दिन घटती जा रही है जो भाषा का सम्मान करता है और अच्छी भाषा को अपने अर्थ में एक सिद्धि मानता है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि अज्ञेय ने अपनी भाषा को भावों तथा विचारों के अनुसार बनाने में विभिन्न प्रकार के शब्दों से अलंकृत तथा सुसज्जित किया है उनका शब्द भण्डार विशाल है नवीन शब्दों का भाषा में प्रयोग काव्य को उपयोगी बनाता है। हम कह सकते हैं कि अज्ञेय हिन्दी साहित्य में ऐसे कवि हैं जो नवीन मार्गोन्वेषी हैं। हिन्दी साहित्य को नये काव्य-शिल्प प्रदान करने में अद्वितीय हैं। काव्य भाषा ही कविता का प्रतिमान है। मानवीय संस्कृति की सर्वाधिक मूल्यवान उपलब्धि भाषा हैं भाषा ही सामाजिक जीवन का मूल्यवान उपकरण है। अज्ञेय ने काव्य भाषा के अन्तर्गत बिम्ब या प्रतिमान, उपमान और प्रतीक पर भी विचार किया है। अज्ञेय का कहना है कि छन्द के द्वारा हम साधारण बोल को गद्य की लय को नियमित करते है यानी स्थिर मात्राओं के परस्पर सम्बंधों को सरलतर बना देते है जो निहित रखता है उसे विहित कर देते है, छन्द शब्दों को मूर्त करता है मुखर करता है उसके ध्वन्यकार को आलोकित करता है।

इन्होंने प्रारम्भ में गीत, रोला, हरिगीतिका, वीर गीतिका, मालिनी, तदाकुलक, बर्वे छन्द भी उनके कविताओं में दिखाई देते हैं। विविध परम्पारित छन्दों का समन्वित रूप अज्ञेय के काव्य में खूब मिलता है सार हरिगीतका, चाण्डिका और मार हठा, माधवी आदि छन्दों का समन्वित रूप भी दिखाई देता है इन्द्रधनुष रौंदे हुए रचना अणिमा, कोकिला, मंजूलतिका और नयन छन्दों का मिश्रित रूप प्रस्तुत हुआ है।

''सीखा है तारों ने उमंगना
जैसे धूप ने विकसना।
हरी घास ने पैरो में लोट-लोट
बिछलना बिछलना''। [18]

छन्दों के क्षेत्र में अज्ञेय ने सबसे अधिक प्रयोग किए हैं। परम्परागत छन्दों से लेकर लोकगीतों की लय तथा नये मुक्त छन्द सभी कवि की पहुँच में हैं। शिल्पगत प्रयोगों को कवि ने पूरी गम्भीरता के साथ ग्रहण किया है। प्रारम्भ में अज्ञेय जी ने अधिकतर कविताऐं मात्रिक एवं वार्णिक छन्दों में लिखी थीं और बरवे, हरिगीतिका, रोला, नीरछन्द को अपना कर मात्रिक छन्द में भी रचनाऐं लिखी हैं। अन्त में कवि ने अपनी कविताओं को छन्दों के बंधन में कुण्ठित जानकर अपने भावों और विचारों को मुक्त छन्द में प्रवृत करने लगें ''हरि घास पर क्षण भर' तथा अरी ओ करूणा प्रभामय' कविता छन्द लय के मिश्रण से युक्त है यथा –

''कुहराझीना और महीन
झारझार पडे उकास नीम
उंजली लालिमा मालती,
गंध के डाढे डालती
मन में ढुबकी है ज्यो परछायी होरे की
तेरी बाट अगोरते ये ऑखें हुई चकोर की।'' [19]

जिस प्रकार प्राचीन या परम्परागत उपमान निरन्तर

प्रयोग से घिस जाता है उसी प्रकार परम्परागत बिम्ब भी निष्प्राण हो जाते हैं। अतः रूढ़ उपमानों और उन पर आश्रित बिम्बों को त्याग कर नया कवि नवीन सौन्दर्य चेतना के अनुरूप नवीन उपमानों की शोध तथा नूतन बिम्बों के निर्माण में अन्वेषी हो जाता है। पूर्वांचल में प्रकृति का उपयोग प्रणय के भाव को उभारने वाले उपमानों के रूप में किया गया हैः–

''पार्श्व गिरि का नम्र, चीडो में
डगर चढती उमंगो सी।
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा
विहग– शिशु मौन नीडों में
मैने आँख भर देखा'' [20]

अज्ञेय के अनुसार प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है जो सीधे–सीधे अभिधा में नही बंधता, उसे आत्मसात या प्रेषित करने के लिए प्रतीक का सहारा लिया जाता है ''अज्ञेय की कविताओं में प्रतीकों का बाहुल्य हैं आत्मप्रतीक, प्रेम सम्बंधी प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक एवं मानव भक्तित्व प्रतीक सभी अज्ञेय की कविताओं में दिखाई पडते हैं। अज्ञेय के आत्मप्रतीक के अन्तर्गत वे प्रतीक आते हैं जो उनके निजी जीवन से सम्बंधित है । जैसे हारिल पंक्षी के पंजे में दवा तिनका, नन्ही शिखा वासना का प्रतीक है। रेत के अन्तर्गत 'विलुप्त नदी' कवि की उद्धार भावना का प्रतीक है :–

''न जाने मछलियाँ है या नही
आँखे तुम्हारी
किन्तु मेरी दीप्त चेतना निश्चय नहीं है
हर लहर की ओट जिसकी
उन्ही की गति, काँपती जा रही है
पिरोती सी रश्मियाँ हर बूंद मे''।

प्रेम भावना प्रतीकों में जैसे ज्वार, मन के उथल–पुथल का प्रतीक है। कुमुद प्रेमी का प्रतीक है, झील का निर्जन किनारा वियोग का प्रतीक है, सूनी साँझ प्रेमिका की असफलता का प्रतीक हैः–

''वातायन, संसृति ये मेरे रागबंध के
लोचन दो, समपृक्ति निविड़की
स्फटित विमल वाणियाँ
अचंचल जल, गहरा गहरा गहरा [21]

अज्ञेय प्रतीकवादी कवि नहीं बल्कि प्रतीकधर्मी कवि हैं, इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में नये प्रतीकों का अविष्कार किया। बिम्ब योजना भी अज्ञेय के काव्य में उत्कृष्ट स्तर की रही है। बिम्ब का अर्थ है चित्र। कविता का निर्माण शब्दों के माध्यम से होता है। शब्द बिम्ब का अर्थ है – शब्द चित्र नये युग की सौन्दर्य चेतना ने तथा नवीन दृष्टिकोण में आज के कवि को नये उपमानों के अन्वेषण, सृजन, और प्रयोग के लिए बाध्य सा कर दिया है। वर्तमान मानव जीवन में यौन वर्जनाओं के कारण नयी कविता में नवीन उपमानों और बिम्बों का आना स्वाभाविक है। परम्परागत बिम्ब जब निर्जीव, अभिधा बनकर रह जाते हैं, तब उनमें इतना सामर्थ्य नही रह जाता कि कवि की संवेदना को मूर्त रूप दे सकें। अतः ऐसी अवस्था में नवीन बिम्बों की खोज आवश्यक हो जाती है । अज्ञेय जी ने विभिन्न प्रकार के बिम्बों की रचना की है। –

''पीपल की सूखी डाल स्निग्ध हो चली
सिरिस ने रेशम की वेणी बाँध ली,
नीम के भी बौर में मिठास देख
हंस उठी है कचनार की कली।''

इन पंक्तियों में दृश्य बिम्ब साकार हो उठता है। श्रव्य बिम्ब में कागा की कॉव–कॉव झूमर की कसक भरा अलाप सुनाई देता है।

''असाध्यय वीणा'' मे तो स्वर बिम्बो का भण्डार है।
''बदली कौंध पत्तियों पर वर्षा बूँदों की पट–पट
धरी रात में महुए का चुपचाप टपकना
चौंके खग शावक का चिहुँक।''
स्पृश्य बिम्ब का उदाहरण हैः
''शीतलता उसकी छुअन भर से
सारे रोमांच शिथिल कर देती है''।

अज्ञेय की कविताओं में वस्तुपरक और भाव बिम्ब भी दिखाई देते हैं। एक दृष्टव्य :–

''तुम्हारे नैन, पहली भोर की दो ओस बूंदे है
अछूती ज्योतिमय, भीतर द्रवित।''
''वासना के पंक सी फैली थी
धारयित्री सत्य सी निर्लज्ज नंगी
ओ समर्पित।''

अतः हम कह सकते हैं कि अज्ञेय हिन्दी साहित्य में एक मात्र ऐसे कवि हैं जिन्होने हिन्दी कविता में प्रयोगधर्मिता के नये आयामो की खोज की है उनकी कविताओं में सृजनात्मक आयाम, प्रयोगधर्मिता के आयाम वर्ण्य– विषय की नवीनता, भाषागत नवीनता एवं बिम्बात्मक नवीनता के दर्शन सहज रूप में हो जाते है। अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता के लिए हिन्दी साहित्य आजीवन चिर ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अज्ञेय का काव्य एक विशलेषण, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, पृष्ठ 55*
2. *अज्ञेय का काव्य एक विश्लेषण, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र पृष्ठ 5.*
3. *अज्ञेय की कविता एवं मूल्यांकन, चन्द्रकान्त वादिबडेकर पृष्ठ 214*
4. *इन्द्रधनुष रौंदे हुए, अज्ञेय, पृष्ठ 54*
5. *दूसरा सप्तक (भूमिका) अज्ञेय, पृष्ठ 14*
6. *साहित्य का परिवेश, अज्ञेय, पृष्ठ 103*
7. *सदानीरा (भाग –1) सावनमेघ, इत्यलम, अज्ञेय, पृष्ठ 176*
8. *इत्यलम : आशीः बसन्त का एक दिन, अज्ञेय, पृष्ठ 2*
9. *बावरा अहेरी : अज्ञेय, पृष्ठ 45*
10. *पूर्वा : अज्ञेय पृष्ठ, 220*
11. *बाबरा अहेरी : अज्ञेय, पृष्ठ 27*
12. *कितनी नावों में कितनी बार, अज्ञेय, पृष्ठ 57*
13. *अरी ओ करूणा प्रभामय, अज्ञेय, पृष्ठ 37*
14. *नदी के द्वीप, बावरा अहेरी, अज्ञेय, पृष्ठ 74*
15. *ऑगन के पार द्वार, अज्ञेय, पृष्ठ 68*
16. *सागर मुद्रा अज्ञेय, पृष्ठ 41*
17. *चिन्ता, अज्ञेय, पृष्ठ 108*
18. *प्रयोगवाद और अज्ञेय – शैल सिन्हा, पृष्ठ 112*
19. *अरी ओ करूणा प्रभामय, अज्ञेय पृष्ठ 129*
20. *हरि घास पर क्षण भर, अज्ञेय, पृष्ठ 29*
21. *ऑगन के पार द्वार, अंगरंग चेहरा कविता अज्ञेय, पृष्ठ 22*

राजस्थान की स्थापत्य कला : जालोर दुर्ग के संदर्भ में

सुरेन्द्र कुमार विश्नोई
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान की स्थापत्य कला में चार चांद लगाने वाले जालोर दुर्ग का अपना महत्त्व है। यह स्वर्णगिरी नाम से प्रसिद्ध है। जो संभवतः प्रतिहार शासकों द्वारा बनवाया गया था। यह कान्हड़देव और वीरमदेव जैसे शक्तिशाली शासकों से इस दुर्ग को गौरव मिला। यह पश्चिमी राजस्थान का महत्वपूर्ण गिरी दुर्ग है। जो अपनी स्थापत्य कला, देवालय, तोपखाना, अस्त्र शाला आदि के लिए प्रसिद्ध है। हिन्दू व जैन मन्दिर से सम्बन्धित अनेक लेख व शिलालेख भी उपलब्ध होते है। ऐतिहासिक स्थलो में महाराजा मानसिंह के महल और झरोखे, रानी महल, चामुण्डा माता व जोगमाया का मन्दिर, दहियो की पोळ व संत मल्लिकशाह की दरगाह प्रमुख है। यह दुर्ग अपनी वीरता, बलिदान और शौर्य से जुड़ी अनेक गाथाओं सहित स्वर्ण अक्षरों द्वारा अंकित करने योग्य है।

संकेताक्षर : *जालोर, दुर्ग, स्वर्णगिरी, प्रतिहार, चौहान, कान्हड़देव, वीरमदेव, लेख, मन्दिर, स्थापत्य कला, आक्रमण आदि।*

जालोर का दुर्ग राजस्थान के प्रमुख दुर्गो में स्थान रखता था तथा पश्चिमी राजस्थान के प्राचीन और शक्तिशाली दुर्गो में इसका स्थान आता है। इस दुर्ग के अनेक नाम है जैसे– सोनगिरी, स्वर्गगिरी, सोनलगढ़, जाबालिपुर आदि। गौरीशंकर हीराचन्द ओझाजी के अनुसार ''शिलालेखो में जालोर का नाम जाबालीपुर और किले का नाम सुवर्णगिरी मिलता है। सुवर्णगिरी का अपभ्रंश भाषा में सोनलगढ हुआ और इसी के नाम से चौहानों की एक शाखा सोनगरा कहलाई है।[1]

डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार ''प्रतिहार शासक नामभट्ट प्रथम ने जालोर में अपनी राजधानी को स्थापित किया और संभवतः जालोर के इस ऐतिहासिक दुर्ग का निर्माण भी करवाया जिससे वह बाहरी आक्रमण का प्रतिरोध कर सके।[2] ओझाजी के अनुसार पहले इसे परमारों ने बसाया था और इसके पश्चात यह चौहानो की राजधानी रहा।[3] परन्तु ऐतिहासिक साक्ष्य इस ओर इंगित करते है कि उन्होने पहले से विद्यमान व प्रतिहारों द्वारा निर्मित इस प्राचीन दुर्ग का जीणोद्धार या विस्तार करवाया था।

डॉ. मोहनलाल गुप्ता के अनुसार ''संभवतः प्रतिहार राजा नागभट्ट प्रथम ही इस किले का निर्माता था। कई विद्वान भ्रमवश इसे परमारों अथवा दहियों द्वारा बनवाया गया बताते है। परमारों के काल में इसका जीर्णोद्धार करवाया गया।[4] अलाउद्दीन खिलजी के समय सोनलगढ़, चौहानो से मुस्लिमों के कब्जे मे आ गया था, जहां मंदिरो को तोड़कर मस्जिद बनाई गई।[5]

नाडौल शाखा के कीर्तिपाल नामक व्यक्ति ने 1181 ई. में जालोर को प्रतिहारो से छीनकर स्वयं स्वतंत्र शासक बन गया। कीर्तिपाल के पुत्र, समरसिंह ने जालोर को एक मजबूत स्थान दिलाया। उसने कोषागार, दीवार, शस्त्रगार आदि का निर्माण कराया। उसके पश्चात उसके पुत्र उदयसिंह के समय जालोर की राजनीतिक प्रतिष्ठा में खूब वृद्धि हुई उदयसिंह सोनगरा चौहान शाखा का सबसे शक्तिशाली शासक था।

डॉ. दशरथ शर्मा ने उदयसिंह को जालोर की सोनगरा चौहान शाखा का सर्वाधिक योग्य और प्रतापी शासक लिखा है।[6] उसके पश्चात् चाचिंगदेव और सामंतसिंह जालोर के शासक बने। लेकिन जालोर की प्रसिद्धि और वीरता का गौरव

दिलाया सामंतसिंह के पुत्र कान्हड़देव सोनगरा और फिर उसके पुत्र वीरमदेव सोनगरा ने मुस्लिम सत्ता का पुर जोर विरोध किया। कान्हड़देव प्रबन्ध के अनुसार खिलजी ने 1298 ई. में गुजरात विजय के अभियान में जालोर का मार्ग मध्य में पड़ता तो वहां से गुजरने के लिए कान्हड़देव को संदेश भेजा जिसका कान्हड़देव ने अस्वीकार कर दिया। खिलजी की सेना मेवाड़ से निकल गई। वापसी करते समय जालोर की सीमा से गुजरी कान्हड़देव के मुख्यमंत्री जैता देवड़ा ने मुस्लिम सेनानायक से भेंट कर और अपने स्वामी को सम्मति दी कि इस समय शत्रुओं से युद्ध करना ठीक नहीं है। उसी समय उलुगखां जो खिलजी की सेना का नेतृत्व कर रहा था की ओर से मंगोल सिपाहियों ने लूट का धन लौटाने से इंकार कर दिया तो प्रति उत्तर राजपूत सेना ने हमला बोल दिया।[7] अतः खिलजी की साम्राज्यवादी नीति और कान्हड़देव से बदला लेने की तीव्र इच्छा जालोर आक्रमण का मुख्य कारण बना। खिलजी ने सिवाणा दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया परन्तु कान्हड़देव सोनगरा का भतीजा वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात जालोर के दुर्ग के लिए खिलजी ने अपने योग्य सेनापति कमालुददीन को बागडोर सौंपी। कमालुद्दीन की कूटनीतिक चाल के परिणामस्वरूप किले के भीतर खाद्य सामग्री का अभाव हो गया। परन्तु एक राजपूत सरदार के विश्वासघात के परिणामस्वरूप शत्रु सेना किले में प्रवेश कर गई कान्हड़देव और उसके पुत्र वीमदेव वीरगति को प्राप्त हुए। इनकी वीरता का उल्लेख कवि पद्यनाम ने कान्हड़ प्रबन्ध नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ में किया। जालोर का प्रसिद्ध साका 1311–12 ई. और जौहर ने इस दुर्ग को इतिहास में प्रसिद्धि दिलाई।

कान्हड़देव और उसके पुत्र के पश्चात लम्बे समय तक मुसलमानों का शासन रहा परन्तु, जोधपुर के शासक राव सांगा के शासनकाल में राठौड़ो ने जालोर पर चढाई की। राव मालदेव ने जालोर पर अपना अधिकार कर लिया। इसके पश्चात 1607 ई. में जोधपुर के महाराजा गजसिंह जी ने बिहारी पठानो को पराजित कर जालोर जीत लिया। तत्पश्चात जब जोधपुर की गद्दी के लिए भीमसिंह और मानसिंह के बीच उत्तराधिकार का संघर्ष चला तब संकट के समय महाराज मानसिंह ने इसी दुर्ग में आश्रय लिया और अपने बड़े भाई व जोधपुर के तत्कालीन महाराज भीमसिंह के इस आदेश का कि वे जालोर का दुर्ग खाली कर जोधपुर आ जाए। जिसका उन्होने उत्तर दिया–

आभ फटै, घर ऊलटै, कटै बगतराँ कोर।
सीस पड़े, धड तड़फड़ै, जद छूटे जालोर।।[8]

दुर्ग की स्थापत्य कला

पश्चिमी राजस्थान में जालोर का दुर्ग गिरी दुर्गो में प्रमुख स्थान रखता है। सोनगिरी पर्वतमाला पर स्थित यह दुर्ग क्षेत्रफल की दृष्टि से 800 गज लम्बा तथा 400 गज चौड़ा है और ऊंचाई 1200 फीट है। जालोर दुर्ग के अंदर जाने के लिए मुख्य मार्ग शहर के भीतर से है जो टेढ़ा–मेढ़ा और घुमावदार है इस मार्ग की चढ़ाई को पार करने पर सुरजपोल आता है जो दुर्ग का प्रथम प्रवेश द्वार है।

धनुषाकार छत से अच्छाति यह देखने में बड़ा सुन्दर है जहां छोटे कमरे बने हुए है जिनके नीचे दुर्ग रक्षक रहते थे। तोपो की मार से बचने के लिए एक विशाल प्राचीर घूमकर दरवाजे को सामने से ढक लेती है। यह लगभग 25 फीट ऊंची और 15 फीट मोटी है। इसके पश्चात आधा मील चलने पर दुर्ग का दूसरा द्वार ध्रुव पोल आता है यहां नाकेबंदी और मोर्चे को जीते बिना दुर्ग में प्रवेश असंभव था। तीसरा द्वार चांदपोल कहलाता है, जो अधिक भव्य, सुन्दर और सुदृढ है। तीसरे से चोथे द्वार के बीच का स्थल सुरक्षित है चौथा द्वार सिरे पोल कहलाता है।[9]

जालोर दुर्ग के ऐतिहासिक स्थलो में महाराजा मानसिंह के महल और झरोखे, रानी महल – जो मंजिला में बना हुआ है प्राचीन जैन मन्दिर, चामुण्डा माता और जोगमाया के मन्दिर दहियों की पाले, संत मल्लिकशाह की दरगाह प्रमुख व उल्लेखनीय है।[10]

ओझाजी ने जालोर के दुर्ग में राठौड़ो के महल मल्लिकशाह की दरगाह, दहियों का गढ और वीरमदेव की चौकी का उल्लेख किया है ऐसा कहते है कि यह किला दहियों के छल से ही अलाउद्दीन खिलजी के हाथ लगा था। मुसलमानो के हाथ में जाने के परिणामस्वरूप यह किला जालोरी पठानो के अधिकार में रहा, फिर राठौड़ो को प्राप्त हुआ।[11] जालोर के किले का तोपखाना बहुत सुन्दर और आकर्षक है जिसके विषय में कहा जाता है कि यह परमार शासक राजा भोज द्वारा निर्मित संस्कृत, पाठशाला थी जो कालान्तर में दुर्ग के मुस्लिम अधिपतियों द्वारा मस्जिद में

परिवर्तित कर दी गयी तथा तोपखाना मस्जिद कहलाने लगी।[12] कान्हड़देव प्रबन्ध में जालोर दुर्ग में स्थित ढेकुली मंगुरवी यंत्र, अग्निबाण आदि द्वारा शत्रु सेना पर कहर ढाने का उल्लेख इस प्रकार दिया है–

ऊपरि थकी, ढीकुली ढालइ लोढीगडा विछूटई
इाथी घोड़ऊँ आडइ आवई, तेहि मरइ अणषूटई।।
आगि वर्ण ऊंडता आवइ नांलइ नांष्या गोला।
भूका करइ भीति आंजीनइ तणषा काडइ डोला।।
यंत्र मगरबी गोला नांषइ इ सांधि सूत्रहार।
जिहा पड़इ तिहां तरूअर भांजइ पडतउ करइ संहार।।[13]

इसी प्रकार डॉ. दशरथ शर्मा ने जालोर किले में विद्यमान अनेक सैन्य यंत्रो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सैन्य सामग्री में मगरबी यंत्री, ढेकुली और झुझबाना प्रमुख थे।[14]

मानसिंह के महल में प्रवेश करते ही एक विशाल चौकोर सभा मण्डप आता है जिसके दायीं ओर एक हॉल है जहां टूटी–फूटी तोप व एक विशाल तोप पड़ी है। इसी महल में दो मंजिला रानी महल है उसके चौक में भूमिगत बावड़ी बनी हुई है। महल में बड़े–बड़े कोठार बने हुए है जिसमें धान, घी आदि भरा रहता था महल के मन्दिर स्थित है। मन्दिर के पिछवाड़े से बावड़ी की तरफ एक रास्ता जाता है जहां चामुण्डा देवी का मन्दिर बना हुआ है। वीरमदेव की चौकी पहाड़ी की सबसे ऊंची जगह पर दक्षिणी–पूर्व की ओर स्थित है।[15]

जालोर के किले में जैन तथा हिन्दू मंदिरों से सम्बन्धित अनेक लेख उपलब्ध हुए है –

1. परमार शासक वीसल वि.सं. 1174 (1118 ई) का लेख है जिसमें वीसल की रानी मेलरदेवी द्वारा सिन्धुराजेश्वर के मंदिर पर स्वर्ण कलश चढाये जाने का उल्लेख मिलता है। साथ ही परमार शासक वीसल के पूर्वजों की नामावली भी उपलब्ध होती है।
2. चौहान शासक कीर्तिपाल (जिसे कीतू भी कहा जाता है) के पुत्र समर सिंह का वि. सं. 1239 (1183 ई.) का लेख है जिसमें आदिनाथ जी के मंदिर का सभा मण्डप बनवाये जाने का उल्लेख है।
3. चालुक्य (सोलंकी) शासक कुमारपाल द्वारा वि.सं. 1221 (1165 ई.) में पाश्वनाथ के मंदिर बनवाये जाने का उल्लेख है जिसमें चार खण्डो का एक लेख जिसमें वि.सं. 1221, 1242, 1256 और 1268 (1165, 1186, 1200 और 1212 ई.) उत्कीर्ण है। साथ ही वि.सं. 1242 में चोहान शासक समरसिंह देव की आज्ञा से जीर्णोद्धार हुआ।
4. भट्टारक रावल लक्ष्मीकार द्वारा चंदन विहार के महावीर स्थायी की पूजा के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है, जिसमें वि. सं. 1320 (1265 ई.) का एक लेख भी है।
5. चौहान शासक चाचिगदेव वि.सं. 1323 (1266 ई.) के समय का एक लेख है जिसमें महावीर स्वामी के भण्डार हेतु दान दिये जाने का उल्लेख है।
6. स्वर्णगिरी के शासक महारावल सामंतसिंह और उसके पुत्र कान्हड़देव के समय पार्श्वनाथ मन्दिर के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है तथा एक स्तंभ पर वि.सं. 1353 (1296 ई.) का लेख है।[16]

महाराजाधिराज गजसिंह का अभिलेख

मूल पाठ जो संस्कृत भाषा में है।

संवत् 1683 वर्षे आषाढ वदि 4, गुरौ श्रवण नक्षत्रे

श्री जालोर नगरे स्वर्णगिरी दुर्ग महाराजाधिराज

महाराजा श्री गजसिंह जी विजयराज्ये

मुहणोत गोत्र दीपक मं. अचला पुत्र भं जैसा आर्य

जयवन्तदे, पु. भ. श्री जगमल्ल नाम्ना भा सरूपदे द्वितीय

या सुहागदे पुत्र नयणसी, सुन्दरदास, आसकरण नरसिंहदास

प्रमुख कुटुम्ब युतेन स्वश्रेयसे

श्री धर्म .....

नाथ बिम्ब कारित प्रतिष्ठित श्री तपागच्छ नायक

भट्टारक श्री हीररवि विजयसूरि पट्टालंकार भट्टारक

श्री विजयसेन (सूरि)

समय – वि.सं. 1683 (चैत्रादि) आषाढ वदि 4, गुरूवार 24 मई 1627 ई.सं.

विषय – इस दिन जालोर नगर के स्वर्णगिरी दुर्ग में महाराजधिराज महाराज श्री गजसिंह जी के विजयराज्य में मुहणोत गोत्र का दीपक मं. अचला पुत्र मं. जैसा भार्या जैवंत दे पु.मं. श्री जयमल्ल नाम्ना भार्या सरूपदे द्वितीया सुहागदे पुत्र नयणसी, सुन्दरदास, आसकरण, नरसिंह दास प्रमुख कुटुम्ब से युक्त अपने कल्याण के लिए श्री धर्मनाथ बिम्ब करवाया और प्रतिष्ठित किया श्री तपागच्छ नायक भट्टारक श्री हरि–विजयसूरि के पट्टालंकार भट्टारक श्री विजय सेनसूरि ने।[17]

इस मंदिर के निकट ही मस्जिद है जिस पर फारसी भाषा में एक लेख उत्कीर्ण है जो गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर द्वितीय ने बनवाया था।[18] कान्हड़दे प्रबन्ध में जालोर दुर्ग को विशेष बताते हुए इसकी तुलना प्रसिद्ध चित्तौड़ चम्पानेर, ग्वालियर जैसे दुर्गो से की गयी है –

कणयाचल जगि जाणीई ठांम तणंउ जावालि।
तहीं लगई जगिजालहुर जण जंपइ दूण कालि।।
विषम दुर्ग सुणीइ घणा इसिड नहीं आसेर।
जिसउ जालहुर जाणीइ तिसड नहीं ग्वालेर।
चित्रकूट तिसउ नहिं तिसउ नहीं चा पानेर।
जिसउ जालहुर जाणीइ तिसहु नहीं भांमेर।।[19]

अनेक इतिहासकार और विद्वानों ने जालोर दुर्ग के इतिहास और उसका स्थापत्य पर प्रशंसा की है।

प्रसिद्ध राजस्थान के इतिहासकार डॉ. गोपीनाथ शर्मा के अनुसार ''जालोर दुर्ग अलाउद्दीन खिलजी के अधीन हो गया पर यह गढ अपने अतीत के गौरव को अपने प्राचीन प्रतीको के द्वारा वर्तमान में प्रदर्शित कर रहा है। परमार शासक वीसल, चौहान शासक, कीर्तिपाल, चाचिंग तथा सांमतसिंह के शिलालेख प्राप्त हुए है वे इस तथ्य को साबित करते है कि ये शासक धर्म के प्रति कितने कर्त्तव्यनिष्ठ थे। जालोर के शासक कान्हड़दे द्वारा मनवायी गयी बावड़ी तथ्य उसके पुत्र वीरमदेव द्वारा बनवाये गये दरबार इस दुर्ग की उन्नति देते है। यहां के भव्य जैन मन्दिर तथा फारसी शिलालेख यह प्रमाणित करते है कि यह दुर्ग 17वीं शताब्दी तक यहां आबादी निवास करती थी तथा इसमें सभी धर्म के लोग सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार से निवास करते थे।[20]

इसी तरह सूंधा पर्वत के शिलालेख से भी हमें जालोर के दुर्ग की जानकारी प्राप्त होती है। इस शिलालेख के अनुसार शासक समरसिंह ने जालोर दुर्ग को विशाल और मजबूत प्राचीर ओर उसके युद्ध के समय अनेक यंत्रो और उपकरणो से भी सुसज्जित किया। जालोर दुर्ग के भीतर शास्त्रागार और अन्न भण्डार का निर्माण भी कराया।[21]

डॉ. राघवेन्द्रसिंह ने जालोर के गिरी दुर्गो में महत्वपूर्ण स्थान दिया है उनके अनुसार ''शत्रुओं ने इस दुर्ग पर अनेक आक्रमण किये ओर उसको विफल करने वाले वीर कान्हड़दे सोनगरा के पराक्रम का अध्याय जुड़ा हुआ है। दिल्ली के शासक अलाउद्दीन खिलजी की सशक्त सेना का सामना करते हुए अमर हो गये। कान्हड़दे की वीरता व पराक्रम का उल्लेख पद्नाभ द्वारा ऐतिहासिक ग्रन्थ 'कान्हड़दे प्रबन्ध' के रूप में हुआ। आने वाले समय में जालोर किले में जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी ने फौज बख्शी इन्द्रराज सिंघवी द्वारा लम्बे समय तक की गई घेराबंदी का जमकर सामना किया और भरसक प्रयासों के बावजूद भी दुर्ग खाली नहीं किया गया।[22]

जालोर दुर्ग पर विभिन्न समय में अनेक राजवंशो द्वारा शासन किया गया जैसे – प्रतिहार, परमार (सोलंकी) चौहान, राठौड़। इस जालोर दुर्ग पर दिल्ली के मुस्लिम शासको, मुगलकालीन शासको तथा अन्य मुस्लिम देशो के शासको का भी अधिकार रहा। विशेषकर इस दुर्ग में सोनगरो चौहानो की वीरता, बलिदान और शौर्य की अनेक गाथाएं जुड़ी हुई है। जो इतिहास में स्वर्ण अक्षरो द्वारा अंकित करने योग्य है।[23]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास भाग – 1, पृ. 34, 2010*
2. *डॉ. दशरथ शर्मा : राजस्थान थ्रू द एर्जेज, भाग – 1, पृ–128,*
3. *गौरीशकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास भाग–1, पृ. 34*
4. *डॉ. मोहनलाल गुप्ता : जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 169, 2019*
5. *गौरीशकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 34*
6. *डॉ. दशरथ शर्मा : अर्ली चौहान डाइनेस्ट्रीज, पृ. 174*
7. *पद्यनाभ : कान्हड़देव प्रबन्ध, प्रथम खण्ड पद्य – 32, 33, 112, 220, 221 आदि*
8. *डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 51, 2019*

9. डॉ. मोहनलाल गुप्ता : जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 170
10. डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 52
11. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 36
12. डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर : राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 52
13. पद्यनाभ : कान्हड़देव प्रबन्ध, प्रथम पृ. 89, जयपुर।
14. डॉ. दशरथ शर्मा : राजस्थान थ्रू द एर्जेज, भाग– 1, पृ–712
15. डॉ. मोहनलाल गुप्ता : जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ. 170–171
16. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 35
17. पूर्णचन्द्र नाहर : जैन लेख संग्रह, भाग – 1, पृ. 242
18. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 36
19. पद्यनाभ : कान्हड़देव प्रबन्ध, प्रथम पृ. 163, जयपुर।
20. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, पृ. 458
21. सूंधा पर्वत का शिलालेख, वि.सं. 1319
22. डॉ. राघवेन्द्र सिंह, मनोहर, राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, पृ. 14
23. डॉ. हुकमसिंह भाटी : सोनगरा सांचोर चौहान का इतिहास, पृ. 34
24. From surendra kumar bishnoi
25. Mobile number-7791865850

सिद्ध पुरुष दीवान रोहिताश्व जी

तुलसीराम सीरवी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान के सीरवी समाज के आईपंथ में आईमाता ने अपने जीवनकाल में दीवान परम्परा स्थापित की। सीरवी समाज के प्रमुख धार्मिक स्थल बडेर, बिलाड़ा में दीवान जी की गादी है। इस दीवान परम्परा में कई विद्वान, देवी के भक्त, समाज सुधारक, न्यायप्रिय, पराक्रमी और शूरवीर दीवान हुए। ऐतिहासिक स्रोतों से प्रमाणित होता है कि दीवान पद द्वारा तत्कालीन शासकों को राजनीतिक क्षेत्र में, युद्ध में एवं आर्थिक रूप से भी सहयोग दिया गया। इनके द्वारा सामाजिक व्यवस्था में सुधार के प्रयास हुए। अपने धार्मिक वचनों से जनमानस को सद्गुणों की ओर अग्रसर करते हुए धर्म पथ पर चलते रहने की प्रेरणा दी। इस दीवान पद परम्परा में तीसरे दीवान के रूप में रोहिताश्व जी गादी पर बिराजे। उन्होंने अपनी भक्ति के बल पर व्यास की उपाधि प्राप्त की। जनमानस में युग पुरुष के रूप में स्थापित हुए। दीवान रोहिताश्व जी को आज भी सिद्ध पुरुष के रूप में स्मरण किया जाता है।

संकेताक्षर : *आई माता, सीरवी समाज, आईपंथ, बडेर, बिलाड़ा, गादी, दीवान, करमसिंह, चंद्रसेन, रोहिताश्व।*

15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजरात के अम्बापुर में जन्मी कन्या का नाम जीजी रखा गया जो बाद में सीरवी समाज की अधिष्ठात्री देवी आईमाता नाम से विख्यात हुई। जीजी वृद्धा का रूप धारण कर अपने नंदी के साथ सर्व जन कल्याण हितार्थ यात्रा पर निकली। गुजरात से मेवाड़ में प्रवेश कर पाली जिले के नारलाई, डायलाणा, भैसाणा, बिलावास और पतालियावास में अपने चमत्कारों से दीन दुखियों के दुःख दर्द को दूर करती हुई संवत् 1521 में बिलाड़ा पधारी थीं। आईमाता के मंदिर में स्वयं माताजी ने एक गादी स्थापित कर आदेश दिया कि इस गादी पर बैठने वाले को सभी मेरा ही स्वरुप समझे।[1] इस परम्परा में प्रथम दीवान गोविन्दसिंह जी हुए। द्वितीय दीवान करमसिंह जी हुए जो कि जोधपुर राठौड़ शासक राव मालदेव तथा राव चन्द्रसेन के समकालीन थे। तत्कालीन समय में दिल्ली में मुगल साम्राज्य था। अकबर ने हसन कुली को सेनापति बनाकर चतुरंगी सेना के साथ जोधपुर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। हसन कुली सेना लेकर नागौर होता हुआ जोधपुर पहुंचा। चंद्रसेन जी ने भी युद्ध की तैयारी कर ली। राव चंद्रसेन ने छापामार युद्ध करने की नीति के लिए सेना सहित सिवाना की ओर प्रस्थान किया। सिवाना से राव चंद्रसेन ने दीवान करमसिंह को पत्र लिखा कि मारवाड़ पर तुर्कों का अधिकार हो गया है। अतः आप मारवाड़ के कास्तकारों (डोराबंधों) से मारवाड़ खाली करवा दो। (आईमाता के डोराबंध अपने धर्मगुरु दीवान का इतना कहना मानते थे कि जब किसी कारण से गाँव का जमींदार अन्याय करता है तो समस्त डोराबंध गाँव छोड़कर चले जाते थे। उसे छोडाणा कहते हैं। जब जागीरदार और दीवान में सुलह होती तो दीवान के कहने पर डोराबंध वापस आकर गाँव में बस जाते थे।) राव चंद्रसेन के पत्र अनुसार दीवान करमसिंह ने मारवाड़ के समस्त कास्तकारों को छोडाणा करने का आदेश दे दिया। दीवान साहब की आज्ञा होते ही समस्त कास्तकारों ने मारवाड़ छोड़कर मेवाड़ की ओर प्रस्थान किया।[2]

जब दीवान करमसिंह सभी कास्तकारों के साथ मारवाड़ छोड़कर मेवाड़ की ओर जा रहे थे तब मार्ग में सोजत के पास धांगड़ावास नामक गाँव में विश्राम के लिए रुके। सोजत में केशवदास नामक व्यक्ति ने हसन अली को दीवान करमसिंह के समस्त काश्तकारों सहित मेवाड़ की ओर जाने की सूचना दी। हसन अली दीवान जी के विश्राम स्थल पहुंचे और मारवाड़ न छोड़ने की चेतावनी दी। दीवान करमसिंह ने अपनी वचनों से राव चन्द्रसेन के प्रति अपनी

स्वामिभक्ति और निष्ठा का परिचय दिया। इस पर हसन अली ने उनके साथ युद्ध करने की ठानी। हसन अली के साथ आये 5000 सैनिकों ने किसानों और दीवान करमसिंह पर आक्रमण किया।[3]

अपने कास्तकारो के साथ दीवान जी ने भी शस्त्र हाथ में ले लिए। हसन अली और दिवान जी के मध्य घमासान युद्ध हुआ। दीवान जी के एक पुत्र को तुर्को ने मार दिया। इस युद्ध में दिवान जी संवत् 1637 में आसोज सुदी एकादशी को वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध की पुष्टि रेऊ की पुस्तक मारवाड़ के इतिहास से भी होती है।[4] गाँव धांगड़ावास में दिवान करमसिंह के स्मारक के रूप में छतरी बनी हुई है। दिवान करमसिंह के नौ पुत्र थे – मेराज जी, रोहिताश्व जी, डूंगरदास जी, चौथ जी, खींवसिंह जी, अखेराज जी, केसुदास जी, लिछमण दास जी, मोवन सिंह जी। इस युद्ध में मेराज जी की तुर्को द्वारा हत्या कर दी गयी। रोहिताश्व जी मात्र ग्यारह वर्ष के थे। करम सिंह जी के शहीद होने के पश्चात् उनके अन्य पुत्रों ने सोचा कि उनकी भी हत्या कर दी जाएगी। रोहिताश्व जी सहित अन्य भाई गुप्त रूप से वहाँ से निकल गए।[5]

रोहिताश्व जी का जन्म संवत् 1626 में पोष सुदी पंचमी को हुआ था। इनका नाम तो रोहिताश्व था परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों की बोली का प्रभाव होने की वजह से इनका नाम रोहितदास प्रचलन में आ गया। राजनैतिक स्थितियों की गंभीरता को देखते हुए दीवान गादी के उत्तराधिकारी रोहिताश्व जी को गुप्त रूप से सतलाना गाँव में एक विधवा सुनारी को सारा वृतांत सुना कर उसके घर रहने के लिए छोड़ दिया। जहाँ उनका लालन–पालन बिना किसी भय के होने लगा। राजसी ठाठ बाट से दूर अन्य ग्रामीणों के समान सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए चार माह हो गए। एक दिन की बात है गायें चराने के लिए रोहिताश्व जी जंगल गए। एक पेड़ के नीचे लेटकर सुस्ताने लगे। उस समय एक सर्प वहाँ आया और उनके सिर पर छत्र बनाकर बैठ गया। उसी समय धुन्धाड़ा ग्राम के एक वृद्ध राजपूत उसी मार्ग से होकर जा रहे थे। उनकी नजर रोहिताश्व जी के सिर पर छत्र फैलाए सर्प पर पड़ी। यह देखकर उन्होंने मन में विचार किया कि ये बालक साधारण नहीं है छत्रपति होगा। ऐसा सोचकर राजपूत ने रोहिताश्व जी के विषय में आसपास के बालकों से जानकारी मांगी। जब उन्हें ये पता चला कि वो विधवा सुनारी का बेटा है तो विश्वास नहीं हुआ। सतलाना उस समय छोटी–छोटी ढाणियों में विभक्त था। वृद्ध राजपूत ढूंढते–ढूंढते सुनारी के घर पहुंचा और सुनारी से रोहिताश्व जी का परिचय पूछा। सुनारी ने पहले तो इनकार किया परन्तु वृद्ध द्वारा जोर देकर पूछने पर सारा भेद बता दिया। इतना जान कर वृद्ध राजपूत सीधा जोधपुर दरबार पहुंचा और सारा वृतांत कह सुनाया। जोधपुर शासक रोहिताश्व जी को लेने पधारे तथा वि.सं. 1637 माघ सुदी पंचमी को दीवान पद का अधिकारी बनाया।[6] किसी भी पुस्तक में उस समय जोधपुर के तत्कालीन शासक का नाम नहीं लिखा हुआ है। परन्तु ज्ञात तथ्यों के अनुसार तत्कालीन शासक राव चंद्रसेन रहें होंगे। रेऊ के अनुसार सोजत में हुए एक संघर्ष में वि.सं. 1637 की माघ सुदी सप्तमी को राव चंद्रसेन की मृत्यु हो गयी।[7] रोहिताश्व जी इससे दो दिवस पूर्व पाटवी हुए। शिवसिंह मल्लाराम चोयल ने दीवान रोहिताश्व जी को वि.सं 1641 में पाटवी होना बताया है।[8] यह तिथि सत्य प्रतीत नहीं होती। सभी पुस्तकों में दीवान रोहिताश्व जी को 11 वर्ष की उम्र में पाटवी होना दर्शाया गया है। इनकी जन्म तिथि के अनुसार वि.सं. 1641 में इनकी आयु 15 वर्ष हो जाती है। दूसरा तथ्य यह है कि दीवान करमसिंह जी वि.सं. 1637 में वीरगति को प्राप्त हुए थे। अगर रोहिताश्व जी वि.सं. 1641 को पाटवी होते हैं तो इसका अर्थ यह है कि 4 वर्षो तक उस गादी पर कोई नहीं था। परन्तु इतिहास के किसी भी स्रोत से इस प्रकार की कोई बात सामने नहीं आती। इससे प्रमाणित होता है कि इनका पाटवी वर्ष वि.सं. 1637 ही रहा होगा।

राव चंद्रसेन के पश्चात् उनके भाई मोटाराजा उदयसिंह भी दीवान रोहिताश्व जी का बहुत सम्मान करते थे। महाराज उदयसिंह के पश्चात् महाराज गजसिंह जी जोधपुर के शासक हुए। असामाजिक तत्वों द्वारा दीवान जी के विषय में अनर्गल बातें महाराज को बताई गयी। महाराज ने रोहिताश्व जी को कारागार में डाल दिया। दीवान जी के जोधपुर कारागृह में डालने की सूचना मिलने पर बिलाड़ा में बडेर चौक में रोहिताश्व जी के 150 भक्तों ने आत्मबलिदान दे दिया। महाराज गजसिंह ने उनसे क्षमा मांगी और जोधपुर में आईमाता का मंदिर बनवाया।[9] उस स्थान पर उन बलिदानियों की स्मृति में उनके स्मारक के रूप में एक चबूतरा बनवाया गया। वर्तमान में उस चबूतरे पर बिलाड़ा के सीरवी समाज का पंचायत भवन बना हुआ है। .

दीवान रोहिताश्व जी आईमाता के अनन्य भक्त थे। उन्होंने आई माता के दर्शनार्थ कठोर तपस्या की। आई माता के मंदिर में एक सांकल टांग कर उससे अपनी चोटी बांध कर एक पैर पर खड़े रहकर वर्षो तक तपस्या की। कुछ वर्षो तक मंदिर में तपस्या करने के पश्चात् छः वर्ष तक मंदिर के सामने भूमिगत गुफा बनाकर उसमे तपस्या की। इस समयावधि में उनका विवाह हुआ एवं पुत्र रत्न हुआ। परन्तु उन्होंने भक्ति मार्ग नहीं छोड़ा। मंदिर परिसर में कुछ समय भक्ति करने के पश्चात् उन्होंने एकांत में तपस्या करने हेतु बिलाड़ा से 6 किलोमीटर दूरी पर स्थित सुनसान स्थान पर 6 वर्ष तक तपस्या की। अंततः आईमाता ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए।[10] दीवान आईमाता के दर्शनों का मनोरथ पूर्ण होने के पश्चात् रोहिताश्व जी पुनः बिलाड़ा पधारे। बिलाड़ा में उन्होंने गाँव–गाँव घूमकर धार्मिक प्रवचन दिए और डोराबंध बनाये। यात्रा करते–करते गाँव धांगड़ावास पहुंचे वहाँ अपने पिताजी की समाधी के दर्शन कर सतलाना ग्राम पहुंचे। दुःख के दिनों में सहायता करने वाली स्वर्णकार स्त्री के पास गये। स्त्री के आग्रह करने पर दीवान रोहिताश्व जी रात्रि विश्राम के लिए रुक गए। उसी रात्रि को जैसलमेर के भाटियों ने सतलाना गांव में डाका डाला। रोहिताश्व को डाकुओं के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्होंने भाटियों को ललकारते हुए उनका पीछा किया और जोधपुर से 30 किमी पश्चिम में काली जाल नामक गाँव में उन्हें पकड़ा। सभी डाकू रोहिताश्व जी से क्षमा मांगकर डोराबंध बन गए।[11] उस समय सतलाना गाँव 7 ढाणियों में विभक्त था। रोहिताश्व जी ने सभी को सम्मिलित कर एक गाँव सतलाना की स्थापना की तथा वहाँ आईमाता की बडेर बनवाई। आई माता के अन्य बडेर स्थलों की भांति यहाँ पर भी अखंड ज्योत प्रज्ज्वलित की गयी। जिसकी ज्योत से केसर टपकता है।

जिस सांकल से चोटी बाँध कर तपस्या की वह सांकल आज भी मंदिर में श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ लटकी हुई है। भूमिगत गुफा भी मंदिर के सामने कोठार के नीचे विद्यमान है। जिस एकांत स्थान पर रोहिताश्व जी ने तपस्या की और आईमाता ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए। उस स्थान को वर्तमान में रनिया बेरा नाम से जाना जाता है। इस स्थान पर भक्तों ने एक मंदिर का निर्माण करवाया। मंदिर निर्माण के पश्चात् 24 मार्च 1991 को एक भव्य समारोह में रोहिताश्व जी की मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा की गयी। इस समारोह में पश्चिमी राजस्थान के साथ गुजरात, मध्यप्रदेश, मद्रास, बंगलौर आदि स्थानों से लगभग 2 लाख भक्त आये। इसमे रोहिताश्व जी का स्मारक बना हुआ है। इसके भीतर रोहिताश्व जी की संगमरमर की प्रतिमा स्थापित की हुई है। इसमें रोहिताश्व जी को भगवती आईमाता के समक्ष हाथ जोड़कर ध्यान में मग्न होकर भक्ति करते हुए दर्शाया गया है। वर्तमान में यह एक धार्मिक स्थल के रूप में ख्याति प्राप्त है तथा श्रद्धालु दर्शन करने जाते है। रनिया अरहट पर बने हुए स्मारक के सामने पश्चिम की ओर एक बरामदा और छोटी सी कोटड़ी बनी हुई है। इस स्थान पर आई पंथ के नियमों के अनुसार मांस–मदिरा का सेवन वर्जित है। सीरवी समुदाय के लोग अपने घर में विवाह पर नव वर–वधु को इस स्थान पर जात दिलाने के लिए लेकर आते हैं।

बिलाड़ा के बडेर में स्थित पुरालेखों के आधार पर ऐसा प्रमाणित होता है कि दीवान रोहिताश्व जी ने आईमाता के मंदिर में एक कोठार और दिल खुशाल नामक महल का निर्माण करवाया था। इसका निर्माण कार्य वि.सं. 1654 के मार्गशीर्ष माह की कृष्ण पक्ष की सप्तमी को आरंभ किया गया एवं वि.सं. 1657 के आषाढ़ माह की शुक्ल पक्ष को यह कार्य सम्पूर्ण हुआ। दिल खुशाल महल के निर्माण कार्य में सिलावट जैसलमेर निवासी पंचायण, किसना और काठ के काम का कारीगर गजधर हरिदन, देवा और डुंगा के द्वारा कार्य किया गया था।[12]

सिद्ध पुरुष रोहिताश्व जी ने तत्कालीन जागीरदारों के विशेष अनुरोध पर कई गाँवों को बसाने मे सहायता की। इनमें पाली जिले के अटबड़ा और रायपुरिया विशेष उल्लेखनीय है। तत्कालीन जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह जी द्वरा अटबड़ा ग्राम में सीरवियों को बसाकर कृषि उपज बढ़ाने के लिए वि.सं. 1680 में उक्त ग्राम रोहिताश्व जी को सौप दिया था। इस सम्बन्ध में एक आदेश पत्र निकाला गया था।[13]

"श्री परमेश्वरजी"
श्री कृष्णाजी सही

स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री गजसिंह जी महाराज कंवर श्री अमरसिंहजी वचनात्–चौधरी रोहितासजी नुं मय्या कर गांव अटबड़ो सोंपीयो गांव आवादान करसी करसा बसावसी घणो हासल हुवै ज्यूं करसी, हैसो वंट जकु सदाई कुरावरी न लागे छै सु लेसी घास मारी सं. 1691 रा बरस रो हावगीण लेसी।

सं. 1690 रा वैसाख सुदि 11 मु. मेड़तै–हुवै श्री कंवरजी प्रवांनगी रा। राजसिंघ

डिंगल काव्य के सुप्रसिद्ध कवि दुरसा आढ़ा के अनुरोध करने पर रायपुरिया गाँव में भी सीरवियों को बसाया। दुरसा आढ़ा दीवान रोहिताश्व के परम मित्रों में से एक थे। गाँव बसने के उपलक्ष में रायपुरिया ग्राम में एक बेरा और कुछ भूमि आईजी के केशर धुप के लिए बडेर बिलाड़ा को भेंट की गयी थी। यह भूमि किसके द्वारा भेंट की गयी थी इसकी जानकारी का अभाव है।

रोहिताश्व जी का 68 वर्ष की उम्र में वि.सं. 1694 की पौष सुदी 4 को स्वर्गवास हुआ। रोहिताश्व जी के पांच रानियाँ तथा दस पुत्र थे। इनकी पाँचों धर्मपत्नियाँ क्रमशः पंवार फूलकंवर, पडियार प्यारकंवर, सिमणजी मानकंवर, जादम कनुणकँवर, पडियार स्वरुप कँवर, भटियाणी रायकँवर इनके साथ सती हुई।[14] तत्पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र लिखमीदास जी दीवान गादी पर आसीन हुए।

दीवान लिखमीदास ने अपने पिता की स्मृति में बहुत बड़ा जाग किया। जिसमें 3 हजार मण गुड़, 1200 मण घी, 5 हजार मण गेंहू तथा लाखों रुपये का अन्यय व्यय हुआ। रोहिताश्व जी की स्मृति में उन्होंने बाण गंगा पर छतरी बनवाई तथा पानी के दो कुण्ड बनवाए एक पुरुषों के लिए तथा एक महिलाओं के लिए।[15]

दीवान रोहिताश्व जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन आई माता की भक्ति में समर्पित किया। आई माता के आदर्शों पर चल कर गांव–गांव घूमते हुए उनकी शिक्षाओं का प्रचार – प्रसार किया। साधारण जन को भक्ति मार्ग के लिए प्रेरित किया। दीवान रोहिताश्व जी अपनी भक्ति के कारण ही सिद्ध पुरूष कहलाये एवं समाज में पीर और व्यास जैसी उपाधियों से विभूषित हुए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नारायण राम लेरचा – श्री आईमाताजी का इतिहास, पृ. 4,5,10,18,21,34, बिलाड़ा, वि.सं. 2073*
2. *नारायण राम लेरचा – श्री आईमाताजी का इतिहास, पृ. 43,44,45, बिलाड़ा, वि.सं. 2073*
3. *व्यास भवानीदा लालावस – आई आणद विलास – दोहा क्रमांक 477 से 480, 483, 484, पृ. 163–165, बिलाड़ा, वि.सं. 2065*
4. *विश्वनाथ रेऊ – मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग, पृ. 158, जोधपुर गर्वनमेन्ट प्रेस 1938 ई.*
5. *नारायण राम लेरचा – श्री आईमाताजी का इतिहास, पृ. 44,45, बिलाड़ा, वि.सं. 2073*
6. *मास्टर सीरवी रामलाल बर्फा – श्री आईमाता चेतावनी संग्रह, पृ. 35, बगड़ी, सन् 1992*
7. *विश्वनाथ रेऊ – मारवाड़ का इतिहास प्रथम भाग, पृ. 158, जोधपुर गर्वनमेन्ट प्रेस 1938 ई.*
8. *शिवसिंह मल्लाराम चोयल–दीवान रोहिताश्व संक्षिप्त जीवनी, पृ. 3, जोधपुर वि.सं. 2041*
9. *प्रेमचंद कोटवाल – श्री आईमाता पुराण, पृ. 275, उज्जैन, सन् 2019 ई.*
10. *नारायण राम लेरचा – श्री आईमाताजी का इतिहास, पृ. 56, बिलाड़ा, वि.सं. 2073*
11. *शिवसिंह मल्लाराम चोयल–दीवान रोहिताश्व संक्षिप्त जीवनी, पृ. 5, जोधपुर वि.सं. 2041*
12. *वही, पृ. 27*
13. *वही, पृ. 23*
14. *नारायण राम लेरचा – श्री आईमाताजी का इतिहास, पृ. 55, बिलाड़ा, वि.सं. 2073*
15. *मास्टर सीरवी रामलाल बर्फा – श्री आईमाता चेतावनी संग्रह, पृ. 39, बगड़ी, सन् 1992*

मुगल कालीन भारत में डाक – व्यवस्था का स्वरूप एवं महत्व – एक ऐतिहासिक अध्ययन

सोनिया शर्मा
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यलाय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

संचार व्यवस्था के क्षेत्र में डाकतार संबंधी सेवा सदैव से ही इतिहास को विकासात्मक गति प्रदान करने में बहुप्रयोगी साबित हुई है। मुगल कालीन सम्राटों ने अपने सूचनातंत्र को मजबूत कर प्रशासन को सुदृढ़ता प्रदान की, इस हेतू उन्होंने डाक चौकियों की निरन्तर स्थापना की। 18वीं शताब्दी में इस व्यवस्था के संबंध में अलेक्जेन्डर हैमिल्टन लिखते है, मुख्य मार्गो तथा सड़को पर हर दस मील की दूरी पर डाक चौकिया उपस्थित थी। यहाँ धावक (हरकारे) सदैव तैयार रहते थे। पत्रों को एक नक्काशीदार पेटी में रखा जाता था, जिसे धावक अपने सिर पर रखकर 5 से 6 मील प्रति घंटा की रफ्तार से दिन–रात दौड़ते हुए राज्य के कोने–कोने से सूचनाएं शाही दरबार में पहुंचाते थे।

संकेताक्षर : *हरकारे, मेवरे, गुमाश्ते, हुण्डियाँ, पियादा, सराये, डाक चौकियाँ, नक्काशीदार पेटी, मीनार, यामची।*

भारत में मुगल सम्राज्य की स्थापना के पश्चात् केन्द्रिय शासन, जिसके द्वारा देश के समाचारों के संबंध में जानकारी प्राप्त करता था, उसमें वाकियानवीस, सवनिह–निगार, खुफीया–नवीस तथा हरकारे सम्मिलित थे। मुगल काल में वाकियानवीस सप्ताह में एक बार और सवानिह–निगार महीने में आठ बार राज्य की सम्पूर्ण घटनाओं का विवरण शासक के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। औरंगजेब के शासन काल के दौरान मीर अजीजुद्दीन, जिसे अमादुतल मुल्क वजीर खान की सिफारिश पर इस्लाम शाह का वाकियानवीस नियुक्त किया गया था, उसे सप्ताह में एक बार सूचना शाही दरबार में भेजने का आदेश दिया गया था।[1] सूचना तंत्र को प्रभावी बनाने के लिए डाक चौकियों की स्थापना की गई थी, जहां हर समय दो घुड़सवार तैनात रहते थे।

बाबर जिन्होंने भारत में मुगल सता की नीव रखी थी, आगरा से काबुल के बीच हर 9 कोस की दूरी पर 12–12 गज ऊँचे मीनार बनवाये थे, जिस पर हर समय 6 घुडसवारों के साथ यामची (डाकिया) को रखा जाता था।[2] बाबर के समय हिन्दुस्तानी पियादा का उल्लेख मिलाता है, जो काबुल से खुरासान तक नियमित रूप से समाचार पहुंचाते थे।[3] हुमांयू ने बाबर द्वारा स्थापित डाक व्यवस्था को बिना किसी परिवर्तन के अपनाया। शेरशाह पहला शासक था, जिसे व्यवस्था को सुचारू संचालन हेतु उचित प्रबन्ध किया, जो उसके प्रशासन की सफलता का प्रमुख आधार बना। शेरशाह द्वारा प्रत्येक 2 कोस की दूरी पर घोडे तैनात रहते थे, जो राज्य की डाक लाते व ले जाते। शेरशाह ने अपने शासन काल में 1700 सरायो का निर्माण करवाया जिसका उपयोग उसने समाचार प्रसारण करने के लिए डाक चौकी के रूप में किया। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि शेरशाह ने डाक अथवा सूचना विभाग के कर्मचारियों के लिए अश्वपडावो की व्यवस्था की। सराये विशेष रूप से डाक विभाग के कर्मचारियों तथा हरकारो के लिए, जो कि राज्य शाही डाक लाते–ले जाते थे, विश्राम शालाओं का प्रयोजन पूरा करती थी। इन कर्मचारियों के लिए यहा भोजन की व्यवस्था रहती थी। सड़के तथा सराये केवल सैनिक दलो के यातायात के लिए ही उपयोग में नहीं आती थी, बल्कि यह डाक विभाग अथवा डाक चौकियों का भी काम करती थी।[4] अकबर के काल में संदेश वाहको के रूप में मेवरे (मेवातियो) की नियुक्ति की गई। ये समाचारों के साथ लम्बी दूरी की यात्रा पैदल ही तय करते थे। मेवरे, मेवात मूल के निवासी थी। मेवरो को उत्कृष्ट श्रेणी का जासूस माना जाता था। आरिफ कंधारी के अनुसार अकबर स्वयं जासूरी में माहिर था, इसलिए उसने मेवरे नामक पैदक धावको की नियुक्ति की थी। अकबर की डाक व्यवस्था में चार हजार मेवरे लगे हुए थे।[5] अकबर की यह डाक व्यवस्था इतनी मजबूत थी, कि बंगाल से आगरा तक मेवरे समाचार 10 दिन में पहुंचा देते थे।[6]

जांहगीर ने पत्र वाहक के रूप में कबूतरों का प्रयोग किया। ये कबूतर प्रशिक्षित होते थे तथा युद्ध व घेरे की स्थिति में शत्रुओ के बीच जाकर समाचार लाया ले जाया करते थे। ये संदेश वाहक प्रायः छोटी दूरी के लिए उपयोग में आते थे। जांहगीर के काल में इन कबूतरों के प्रशिक्षण का कार्य कबुतर–ए–नामा–बर द्वारा किया जाता था। ये संदेश वाहक आसमान साफ होने पर एक पहर में माडू से बुरहानपूर तक की यात्रा कर लेते थे।[7] इसके अतिरिक्त जैसे–जैसे सम्राज्य का विस्तार हुआ, बड़ी संख्या में डाक चौकियों का निर्माण किया गया। शाहजहां ने अपने पुत्र औरंगजेब को, जो उस समय ढक्कन का गवर्नर था, हैदराबाद से कर्नाटक के बीच डाकचौकिया स्थापित करने का आदेश दिया। इसके अतिरिक्त हैदराबाद से बुरहाननुर के बीच में भी डाक चौकिया स्थापित की गई।[8]

औरगजेंब ने डाक की गोपनीयता बनाए रखने के लिए राजकुमारों के लिए डाक चौकी में प्रवेश पर रोक लगा दी थी। वे बादशाह की आज्ञा से ही डाक चौकी का प्रयोग कर सकते थे। जब औरंगजेब के पुत्र मुहमद आजम ने बादशाह की अनुमति के बिना डाक चौकी पर अपना संदेश वाहक नियुक्त किया, तो औरंगजेब ने असंद खां, जो उस समय प्रधानमंत्री था, तुरन्त उसे वहां से हटाने का आदेश दिया तथा साथ ही आदेश दिया, कि बिना सम्राट की आज्ञा से कोई भी डाक चौकी में प्रवेश नहीं करेगा।[9]

मुगल शासन काल के अन्तिम दिनो में समाचार तथा डाक विभाग एक पृथक विभाग के रूप में पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका था, जिसका प्रधान डाक का सुपरिटेंण्डेट कहलाता था। इसके अधिकार क्षेत्र में समाचार, लेखक, गुप्तचर, हरकारे होते थे। ये अपने क्षेत्रों की मुख्य घटना का पूर्ण विवरण सम्राट तक पहुंचाते थे। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सुपरिटेण्डेंट भी होते थे, जो दरोगा–ए–डाक चौकी के आदेशानुसार कार्य करते थे।[10] वैसे तो डाक चौकियों का प्रयोग शाही उपयोग के लिए होता था, किन्तु व्यवसायिक एवं व्यापारिक दृष्टि से भी इनका व्यापक उपयोग होता था। व्यापारियों की हुण्डियाँ, व्यवसायिक दस्तावेज, उधार पत्र आदि हरकाऐ संदेशवाहक द्वारा पहुंचाये जाते थे। देश में अधिकांश बडे व्यापारियों तथा गुमाश्ते इनके माध्यम से कार्य करते थे। हुण्डियों का आदान–प्रदान इन डाकचौकियों के माध्यम से होता था।[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सक्षम संचार प्रणाली ही किसी समाज को संसार में होने वाली विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक एवं वाणिज्यिक परिवर्तनो का ज्ञान कराती है। सम्पूर्ण मुगलकाल में डाक व्यवस्था की दक्षता से ही विशाल साम्राज्य की केन्द्रिय सत्ता का विभिन्न प्राप्तों तथा सूबो से सम्पर्क बना रहा। यदि मुगलकाल से व्यवस्थित, सुसंगठित, डाक व्यवस्था न होती हो इतना विशाल मुगल सम्राज्य इतने लम्बे समय तक स्थायी न रह पाता।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

01. *खान, डॉ. युसुफ हुसैन, सलेक्टेड डॉक्यूमेंट्स ऑफ औरंगजेब रिजन (1659–1706 ई) सेन्ट्रल रिकार्ड ऑफिस गवर्मेन्ट ऑफ आंध्र प्रदेश–हैदराबाद 1958 पृ 100–101*

02. *बाबारनामा, अनु. मुशीदेवीप्रसाद, रजवी प्रेस दिल्ली 1940 पृ. 326; अबुल, फजल, आइन–ए–अकबरी अनुवादक एच ब्लोचमन, भाग–1, दिल्ली 2011 पृ. 140;*

03. *जियाउद्दीन मोहम्मद बाबर, तुजुक–ए–बाबरी, अनुवादक एस.एस. बेवरीज, भाग 1, न्यू दिल्ली 1970 पृ . 618*

04. *अब्बास खान सरवानी, तारीखे शेरशाही अनुवादक इलियट एण्ड डाउसन, द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बांय इट्स ऑन हिस्टोरियन, 1952, पृ.140, 149*

05. *अबुल फजल, आइने अकबरी अनुवादक एच. ब्लोचमन, भाग–1, (रिप्रिन्ट) दिल्ली 2011, पृ. 262, आरिफ कन्धारी, तारीखे अकबरी, अनुवादक तसनीम अहमद, प्रगृति पब्लिकेशन, दिल्ली 1993, पृ. 62*

06. *तारीखे अकबरी, उपर्युक्त पृ. 63.*

07. *जहाँगीर, तुजुक–ए–जाहंगीरी, अनुवादक एलेक्जेण्डर रोगरस एण्ड हेनरी बेवरीज, भाग–1, दिल्ली 1994 पृ. 247*

08. *फारूखी, ए.के.एम. रोड एण्ड कम्यूनिकेशन इन मुगल इण्डिया, दिल्ली 1977, पृ. 148.*

09. *रुकायत–ए–आलमगिरी, अनुवादक जे.एच. बीलीमोरिया, द लैटरर्स ऑफ औरगंजेब, दिल्ली 1972, पृ. 97.*

10. *श्रीवास्तव, डॉ. आर्शिवादी लाल, मुगलकालीन भारत, आगरा 1989, पृ. 448*

11. *पुरोहित, डॉ. अनिल, राजस्थान में व्यापार और वाणिज्य, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर 2018 पृ. 122*

Performance Evaluation of Growth oriented funds: A study of selected Thematic Infrastructural Mutual Funds in India

Dr. R. K. Jain
Retd. Associate Professir, Vardhman Mahaveer Open University, Kota

Aditi Sharma
Assistant Professor, Engineering College, Jhalawar

shodhshree@gmail.com

Abstract

Now a days Mutual Funds are gaining the interest of investors who have common financial goals. In this pool money is invested in different capital market instruments. Investors earn returns in the form of Net Assets Value appreciation. This makes Mutual funds a thrust area for investors as they are able to get the experience of professionally trained fund managers who handle diversified securities on an affordable cost. Mutual fund companies provide wide range of funds to invest in. Its easily accessible for common investors but they are not aware much that in which Mutual fund they should invest in, it become cumbersome job for them. The mutual fund industry was started in 1963 and unit scheme 1964 was the first scheme launched by UTI. At the end of 1988 it had Rs. 6700 crores of AUM and today this industry has Rs.33.67 trillon AUM As on 30th June 2021. In this paper an attempt is made to analyse the Growth oriented Thematic Infrastructure Mutual funds. On the basis of risk and return evaluation. The evaluation was done through various financial tests like Average return, Jensen Ratio, Sharpe Ratio, treynor Ratio, standard deviation and Beta.

Keywords: *Thematic Mutual Funds, Average return, Jensen's Alpha, Sharpe Ratio, Treynor Ratio, Standard Deviation.*

For any individual savings and investments are essential to fulfil their big future requirements. One has to make investment out his limited income thus he expects return on his sacrifices. That is why investment decision is called trade-off between risk and return. Mutual funds provide you many advantages like diversification, Professional management, low cost, and easy process. Investors are attracted towards equity because it comes with competitive returns. These thematic MFs comes with higher risk and higher returns.

Thematic MFs are bit different from sector funds. It identifies the theme and then invest in sectors and companies. Infrastructure funds became quite popular in 2006-07 when shares of companies in sector such as housing, cement and road building rose due to infrastructure boom. It is essential for any investor to understand the sector first before investing in thematic funds, as these are highly risky. But if you are aware about the sector, market and analysing the returns these will definitely give you exceptional returns, many times higher than the benchmark returns.

Literature Review

G Raghuram et al (2006) Infrastructure development and financing have been recognized as key areas which need attention for enhancing the competitive advantage of India. Provision of infrastructure facilities, traditionally in the government domain, is now being offered for private sector investment and management in most countries. India has joined this trend, which has been reinforced by the resource crunch faced by government.

Jensen Michael (1968) has developed a composite portfolio evaluation technique concerning risk adjusted returns. He has done evaluation of 115 fund managers. His analysis of Net Rreturns, indicate the 39 funds had above average returns while 76 funds yielded abnormally poor returns. He concluded that he has not considered the diversification has done risk return evaluation and those mutual funds were on average not able to predict security prices well enough to outperform a buy and hold policy.

M.Vijay Anand (2000) studied the schemes of Birlasunlife and competitor's study for 3 years and done SWOT analysis of BirlaSunlife and used Delphi technique. He found that BirlaSunlife outperformed in comparison with its competitors as well the benchmark.

Shivam Tripathi and Dr. Gurudutta P. Japee (2020) due to sharp fall in NIFTY during 2019 has impacted the performance of all the selected 15 equity funds. Therefore they suggested that investor should consider statistical parameters like Jenson's Alpha, , Beta, Standard Deviation , Sharpe Ratios while investing in mutual funds apart from NAV and total returns to ensure consistent performance.

Objective of The Study

1. To pick up the information about the performance of Thematic Infrastructure Mutual funds.
2. To analyse the CRISIL ranked top 5 TIMFs.
3. To compare the performance of selected TIMFs to the Benchmark i.e. NIFTY Infra Index.
4. To provide an insight to a common investor in Infrastructure sector.

Research Methodology

A. Scope of study: The period of the study if for 5 years (2015-2019). The study shortlisted the sample from CRISIL top 5 Infrastructure Mutual Funds.

B. Sources of Data: Secondary data has been used to study the current performance trends in Indian Mutual fund industry through data sheets, News Papers, magazines Journals, Periodicals and Time Series from NIFTY Infrastructure Index. Data was also collected from moneycontrol.com, AMFI, AMCs, etc. the returns have been collected of sample funds on monthly basis over a period of study. NIFT Infrastructure Index has been used as a benchmark for performance evaluation and provides fairly long period's time series.

C. Tools: to analyse the performance of TIMF whether it outperformed or underperformed following statistical methods and techniques have been used:

For Risk Analysis

Standard Deviation (Total Risk), Beta (Systematic Risk) and Correlation were calculated.

For Return Analysis

Average return over five years was calculated for analysing returns on mutual funds. And for doing the performance evaluation by Risk Adjusted measure Sharpe Ratio, Treynor Ratio and Jensen's Alpha were calculated.

Analysis of Dat

A. Average Returns

The performance evaluation of selected mutual funds is done by comparing the returns of individual scheme with returns of a benchmark index. In this paper returns have been called as Average returns. Average returns is obtained by taking the simple mean of monthly returns and those returns were accumulated in the yearly returns and took the mean. Whereas, monthly returns were calculated on the basis of NAVs.

B. Standard Deviation

The total risk of a mutual fund is estimated by

Standard Deviation (SD) In mutual funds SD discloses how much return on a fund is going astray from the normal profits based on the historical data. In simple words it assesses the volatility of a fund. It assures that sample is free from defects of sampling. The greater standard deviation will be magnitude of the deviation of the values from their mean. Small SD means high degree of uniformity and homogeneity of a series.

C. Beta

Beta is calculated to know whether investment in the company is risky or not. It basically indicates the level of volatility associated with the fund as compared to the benchmark. The success of a beta is heavily dependent on the correlation between fund and its benchmark. If the fund doesn't have relevant benchmark index then the beta would be inadequate to measure.

If beta is > 1 it means that fund is more volatile than the benchmark, while beta is < 1 , means fund is less volatile than benchmark. And if beta is very close to 1 means, fund's performance is very close to the index performance.

D. Correlation ®

Correlation measures the movement of a fund with that of a benchmark index. It shows the strength of a relationship between funds and benchmark. A perfect correlation means that if fund moves either up or down the benchmark moves in lockstep, in the same direction. A perfect negatively correlation means both funds and index move in opposite directions, while zero correlation implies no linear relationship at all. Its significance is these are used by investors and analysts to forecast future trends and to manage the risks within a portfolio.

E. The Sharpe Ratio

The performance extent progressed by Sharpe (1966) is established on capital asset pricing model (CAPM). It is a superfluous return received in excess of risk free return per unit of risk convoluted i.e. per unit of standard deviation. The Sharpe size regulates portfolio performance by overall risk moderately than beta risk. Sharpe's lucidity for familiarizing overall risk instead of beta lies with the hypothesis behind the beta risk. For this ratio calculation we must know three things, the portfolio return, risk free rate of return and the standard deviation of the portfolio. For the risk free return we may use the average rate of return (over the given period of time). The standard deviation measures the systematic risk of the portfolio. The Sharpe ratio measures the fund's excess return per unit of its risk total risk. A high Sharpe ratio indicates the superior risk adjusted performance, while low and negative ratio is an indication of unfavourable performance. Symbolically it can be written as:

$$S_p = \frac{R_p - R_f}{s_p}$$

Where,

S_p = Sharpe Ratio of Mutual Fund scheme

R_p = Average return on portfolio

R_f = Average risk free rate of return.

$_{p=}$Standard deviation of returns

The benchmark comparison with this measure of performance is

$$\frac{R_m - R_f}{s_m}$$

where,

R_m = Average return on the Market or benchmark portfolio

R_f = Average risk free rate of return.

$_{m=}$Total risk on market

F. The Treynor Ratio

Treynor (1965) is grounded on the perception of individualities ranks. He was the first researcher who computed measure of the portfolio performance. It is construed as testifying the incentive (return minus the risk-free amount) in relative to a logical risk, i.e. beta risk.In other words it measures the relationship between fund's additional return over risk free return and

market return is measured by beta. Using the beta , rather then stabdard deviation (in Sharpe ratio) we assumes that portfolio is well diversified portfolio. Higher the treynor Ratio the better the portfolio performed. This is useful for assessing the additional return , allowing incsters to evaluate how the structure of the portfolio to different levels of systematic risk will affect the return. Symbolically Treynor Ratio is $T_{p.}$

$$T_p = \frac{R_p - R_f}{b_p}$$

where

$T_{p=}$ Treynor Ratio of Mutual Fund

$R_{p=}$ Average return on portfolio

$R_{f=}$ Risk free rate of return.

$_p$ = Beta, sensitivity of fund return to market return.

The benchmark comparison with this measure of performance is measured by;

$$T_m = \frac{R_m - R_f}{b_m}$$

Where

$T_{m=}$ Treynor Ratio of the benchmark portfolio

$R_{m=}$ Average return on the market

$R_{f=}$ Average Risk free rate of return

$_{m=}$ Market Beta which is equal to 1

If Treynor Ratio is greater than the benchmark comparison ($R_m - R_f$)then the portfolio has out - performed the market and indicating superior risk adjusted performance.

G. The Jensen Ratio

The Jensen's Ratio is used to determine the excess return of a stock by the CAPM. This model is used to adjust the level of beta risk so that riskier securities are expected to have higher returns. It allows investors to testify the portfolio's super performance relative to the overall capital market. The important issue with the Jensen Ratio is the selection of Market Index, because portfolio's performance will be compared with the market portfolio.

$$\alpha_p = R_p - (R_f + (R_m - R_f)\, \beta_{p.m})$$

Where

$\alpha_{p=}$ Jensen Ratio measure of the performance of the portfolio

$R_{p=}$ Return on the portfolio

R_f = Risk free rate of return

$R_{m=}$ Return of the market portfolio

$\beta_{p.m\,=}$ Beta or systematic risk of the portfolio and market

Results and Findings

1. Performance in terms of Average Returns, Standard Deviation, Beta and R.

The performance of CRISIL Ranked top 5 Thematic Infrastructural Mutual Funds is evaluated using Average returns, Standard Deviation, Beta and R. It is not advisable to consider a mutual fund only on the basis of return, it should be measured in aligned with the risk taken by the fund manager, that's why every fund has different risk associated with them. Risk associated with the fund is being considered as the return's fluctuations or variability from the previous one. If there is is high variability of returns in a fund performance, it implied that fund has a high risk. Return is the primary motivating force behind any investment decision. It represents the reward for undertaking the investment and the risk inherent therein. Since the game of investing is about returns (after allowing for risk), measurement of historical returns becomes very essential to judge the performance of the investment manager.

Return =

(Value at the end of the period - Value at the beginning of the period) + Dividend x 100

Value at the beginning of the Period

Risk

It refers to the possibility that the actual outcome of an investment will differ from its expected outcome. Risk also refers to variability or dispersion. The wider, the range of possible returns, the greater will be the risk. The widely used measures of risk in portfolio evaluation are Standard Deviation and Beta.

Table 1.1
Risk and Return of Thematic Infrastructure Mutual Fund Schemes

S. No.	*Groups*	Average Returns (2014-19)	Total Risk (Std. Deviation)	Beta	Correlation R
1	Aditya Birla Sun Life Infrastructure Fund Growth Direct Plan	10.04	19.15	1.05	0.93
2	HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option	5.86	18.42	0.98	0.9
3	Franklin Build India Fund	17.83	18.9	0.76	0.68
4	Canara Robeco Infrastructure-Direct Plan – Growth	11.04	17.46	0.83	0.8
5	Invesco India Infrastructure Fund - Direct Pan - Growth Option	12.91	17.72	0.82	0.78
6	IDFC Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	12.01	23.62	1.38	0.99
7	ICICI Prudential Infrastructure Fund – Growth	8.52	14.92	0.81	0.91
8	ICICI Prudential Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	9.3	15	0.81	0.91
9	Nippon India Power & Infra Fund - Direct Plan Growth Plan - Growth Option	9.77	19.04	1.12	1
10	LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth	8.49	12.31	0.63	0.87
11	L&T Infrastructure Fund -Direct Plan-Growth	15.2	21	1.19	0.96
12	Kotak Infrastructure & Economic Reform Fund- Direct Plan- Growth Option	18.24	25.42	0.98	0.65
13	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	11.44	15.11	0.74	0.83
14	Sundaram Infrastructure Advantage Fund (Erstwhile Sundaram Capex Opportunities) Direct Plan Growth	8.98	14.57	0.84	0.98
15	SBI INFRASTRUCTURE FUND - DIRECT PLAN – GROWTH	11.37	11.37	0.58	0.86

16	Quant Infrastructure Fund	8.48	11.54	0.61	0.89
17	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	11.44	15.11	0.74	0.83
18	UTI Infrastructure Fund-Growth Option- Direct	9.51	15.44	0.82	0.9
19	DSP India T.I.G.E.R. Fund - Direct Plan – Growth	11.86	16.08	0.85	0.89
	NIFITY INFRASTRUCTURE INDEX	**4.41**	**16.89**	**1**	**1**

1.A. Interpretation

After doing the analysis of Table 1.1 its clear that in case of all Thematic Infrastructural Mutual Funds schemes all of them earned higher returns in comparison to Nifty Infrastructure Index (Benchmark). The top performers on the basis of average return Kotak Infrastructure & Economic Reform Fund- Direct Plan- Growth Option was ranked first, Franklin Build India Fund stood on second place, L&T Infrastructure Fund -Direct Plan-Growth placed on third position, Invesco India Infrastructure Fund - Direct Pan - Growth Option was on fourth place and IDFC Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth was the fifth in top schemes. Quant Infrastructure Fund, LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth, ICICI Prudential Infrastructure Fund – Growth, Sundaram Infrastructure Advantage Fund (Erstwhile Sundaram Capex Opportunities) Direct Plan Growth and ICICI Prudential Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth were at the bottom in the list.

1.B. Performance in terms of Sharpe Ratio

The Sharpe Ratio measures the fund's excess return per unit of its risk associated (). It indicates the association ship between Excess return over Risk free (R_f) and total risk (), which is known as standard deviation. Following are the results of Sharpe Ratios on selected Thematic Infrastructure Mutual funds of all the Growth oriented option with the Nifty Infra Index.

Table 1.2
Sharpe Ratio of Thematic Infrastructure Mutual Fund Schemes

S.No.	*Groups*	Sharpe Ratio
1	Aditya Birla Sun Life Infrastructure Fund Growth Direct Plan	0.17
2	HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option	-0.05
3	Franklin Build India Fund	0.59
4	Canara Robeco Infrastructure-Direct Plan – Growth	0.25
5	Invesco India Infrastructure Fund - Direct Pan - Growth Option	0.35
6	IDFC Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	0.22
7	ICICI Prudential Infrastructure Fund – Growth	0.12
8	ICICI Prudential Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	0.17
9	Nippon India Power & Infra Fund - Direct Plan Growth Plan - Growth Option	0.16

10	LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth	0.14
11	L&T Infrastructure Fund -Direct Plan-Growth	0.4
12	Kotak Infrastructure & Economic Reform Fund- Direct Plan- Growth Option	0.45
13	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	0.31
14	Sundaram Infrastructure Advantage Fund (Erstwhile Sundaram Capex Opportunities) Direct Plan Growth	0.16
15	SBI INFRASTRUCTURE FUND - DIRECT PLAN – GROWTH	0.41
16	Quant Infrastructure Fund	0.15
17	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	0.31
18	UTI Infrastructure Fund-Growth Option- Direct	0.18
19	DSP India T.I.G.E.R. Fund - Direct Plan – Growth	0.32
	NIFITY INFRASTRUCTURE INDEX	-0.14

1.2. Interpretation

A high and positive Sharpe Ratio shows a superior risk adjusted performance of a fund while low and negative Sharpe Ratio is an indication of bad performance. Usually if Sharpe ratio is higher than the benchmark , it indicates that fund is performing exyreamly well over the market and vice-versa. The date presented in Table 1.2 shows that out of 19 schemes only one mutual fund HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option has negative Sharpe ratio i.e. -0.05 which is lower than the Benchmark which shows the bad performance. Thus it can be concluded that performance in terms of Sharpe Ratio most of the mutual funds have been satisfactory performance and have outperformed the market index though market indicator is negative during the study period.

Table 1.3
Treynor Ratios of Thematic Infrastructure Growth Oriented Mutual Funds

S.No.	*Groups*	Treynor Ratio
1	Aditya Birla Sun Life Infrastructure Fund Growth Direct Plan	3.16
2	HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option	-0.87
3	Franklin Build India Fund	14.64
4	Canara Robeco Infrastructure-Direct Plan – Growth	5.23
5	Invesco India Infrastructure Fund - Direct Pan - Growth Option	7.52
6	IDFC Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	3.84
7	ICICI Prudential Infrastructure Fund – Growth	2.24
8	ICICI Prudential Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	3.19
9	Nippon India Power & Infra Fund - Direct Plan Growth Plan - Growth Option	2.71
10	LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth	2.81
11	L&T Infrastructure Fund -Direct Plan-Growth	7.13

12	Kotak Infrastructure & Economic Reform Fund- Direct Plan- Growth Option	11.71
13	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	6.35
14	Sundaram Infrastructure Advantage Fund (Erstwhile Sundaram Capex Opportunities) Direct Plan Growth	2.69
15	SBI INFRASTRUCTURE FUND - DIRECT PLAN – GROWTH	8.06
16	Quant Infrastructure Fund	2.91
17	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	6.35
18	UTI Infrastructure Fund-Growth Option- Direct	3.41
19	DSP India T.I.G.E.R. Fund - Direct Plan – Growth	6.07
	NIFITY INFRASTRUCTURE INDEX	-2.31

1.3. Interpretation

This ratio measures the relationship between fund's additional return over risk free return and market risk (β). The higher value of Treynor Ratio denotes the better performance of the fund. If fund's Treynor Ratio is higher than the benchmark comparison, it indicates that fund has outperformed the market. Table 1.3 represents the results of different mutual fund's Treynor Ratio in comparison with their benchmark index. In the above analysis except HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option with -0.87 has under - performed during the study period else every fund has Out - performed over the benchmark index. Though the benchmark wasn't going well due to recession but inspite of this every fund out performed.

Table 1.4
Jensen's Alpha of Thematic Infrastructure Growth Oriented Mutual Funds

S.No.	*Groups*	Jensen's Alpha
1	Aditya Birla Sun Life Infrastructure Fund Growth Direct Plan	-1.86
2	HDFC Infrastructure Fund -Direct Plan - Growth Option	-5.97
3	Franklin Build India Fund	5.98
4	Canara Robeco Infrastructure-Direct Plan – Growth	-0.68
5	Invesco India Infrastructure Fund - Direct Pan - Growth Option	1.19
6	IDFC Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	-0.2
7	ICICI Prudential Infrastructure Fund – Growth	-2.81
8	ICICI Prudential Infrastructure Fund - Direct Plan – Growth	-2.04
9	Nippon India Power & Infra Fund - Direct Plan Growth Plan - Growth Option	-1.78
10	LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth	-2.46
11	L&T Infrastructure Fund -Direct Plan-Growth	3.19
12	Kotak Infrastructure & Economic Reform Fund- Direct Plan- Growth Option	5.63
13	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	0

14	Sundaram Infrastructure Advantage Fund (Erstwhile Sundaram Capex Opportunities) Direct Plan Growth	-2.22
15	SBI INFRASTRUCTURE FUND - DIRECT PLAN – GROWTH	0.41
16	Quant Infrastructure Fund	-2.36
17	Tata Infrastructure Fund -Direct Plan Growth	0
18	UTI Infrastructure Fund-Growth Option- Direct	-1.91
19	DSP India T.I.G.E.R. Fund - Direct Plan – Growth	7.1

1.3. Interpretation

The Jensen's Ratio is used to determine the excess return of a stock by the CAPM. This model is used to adjust the level of beta risk so that riskier securities are expected to have higher returns. It allows investors to testify the portfolio's super performance relative to the overall capital market. The important issue with the Jensen Ratio is the selection of Market Index, because portfolio's performance will be compared with the market portfolio. Alpha is the contrast between the profits a financial specialist expect from the fund. A positive Alpha depicts that fund has out - performed the benchmark index. If Alpha is more positive its beneficial for investor's point of view. With -5.97 Jensen alpha ratio, HDFC Infrastructure Fund - Direct Plan - Growth Option was at first place among the selected schemes during year 2015 to year 2019. Then ICICI Prudential Infrastructure Fund - Growth (Jensen alpha ratio -2.81) was on second place followed by LIC MF Infrastructure Fund-Direct Plan-Growth with (Jensen alpha ratio -2.46) on third position of bad performance.

Conclusion

The study has done on Thematic Infrastructure Mutual Funds. This was the sector which was on boom during 2006-7 and reason to introduce these funds. It is a risky call to invest in this because you don't enjoy the more diversity, that makes its risky. But as per the analysis done, it is being observed that these mutual funds have performed well despite of slow down in economy in 2019. The common investor who is looking to take a more risk, having good knowledge of the Infrastructure sector and good return can try these Thematic Infrastructure Mutual Funds. The data employed in the study consisted of simple of annual returns and as well as the study period's NAVs of direct investment. The study conducted on Nifty Infrastructure Index, as it the dedicated index for the sector. The performance of Thematic Infrastructure mutual Funds was done on Average Returns, Standard deviation, Beta, Correlation, Sharpe Ratio, Treynor Ratio and Jensen's Alpha. After taking an analysis of Average returns it shows that 100% funds have performed better than the benchmark returns. And in analysis of Sharpe Ratio its being found that only one out of 19 funds was bad in performance, in the same way Treynor Ratio's only 5.26% funds were under – performed. Lastly Jensen's alpha shows 8 out of 19 funds i.e.42.91% funds have given good performance to their investors.

References

1. *Dwivedi Aditi (2017)."Infrastructure Financing in India: A Road Ahead" International Journal of Science, Technology and Management, Volume 6 Issue 1.ISSN No. (o) 2394-1537.*
2. *Sharma Ankit and Adhana Deepak Kumar (2020)."A Study on Performance Evaluation of Equity Share and Mutual Funds". NOVYI MIR Research Journal , voliume 5, Issue 9. ISSN No. 0130-7673. Pg.no. 45-76.*
3. *Dr. Narayanasamy R and Ratnamani V (2013). "Performance Evaluation of Equity Mutual Funds(On selected Equity Large Cap Funds). International Journal of Business and Management Invention, Volume2 Issue 4 April 2013, Pg. No. 18-24.*
4. *Dr. Choudhary Vikas and Sehgal Chawla Preeti (2014). "Performance Evaluation of Mutual Funds:*

A study of selected Diversified Equity Mutual Funds in India". International conference on Business, Law and Corporate Social Responsibility, Oct.1-4 , 2014,Phuket (Thailand).

5. *Singh Jaspal and Chander Subhash (2006). "Investor's Perference for Investment in Mutual Funds: An Empirical Evidence". The ICFAI Journal of Applied Finance, 2004pg.45-63.*
6. *Tripathi Shivam and Dr. Japee Gurudutta P. (2020). "Performance Evaluation of selected Equity Mutual Funds in India".GAP Gyan- A Global Journal of Social Sciences.March 2020,Volume III Issue I.ISSN- 2581-5830, pg.no.65-71.*
7. *www.moneycontrol.com*
8. *www.amfiindia.com*
9. *www.valueresearchonline.com*

Migration Pattern of Artisanal Classes in Medieval Marwar: A Study of the Textile Workers in the 18th Centuries

shodhshree@gmail.com

Mr. Narendra Singh
Lok Sabha TV, Delhi

Abstract

This paper will try and conceptualize the textile artisans, their migration and settlement pattern and focus on their life style. An attempt will be made to analyse the migratory pattern of textile artisans in Marwar region under the Mughal. The proposed study aims to trace out the historical background of textile related artisans and their activities in the Marwar region in the eighteenth century.Rajasthan State Archives, Bikaner and Maharaja Man Singh Pustak Prakash Research Centre, Mehrangarh Museum Trust, Jodhpur Rajasthan, contains huge repository of textiles artisan's records. Records throw interesting light pertaining to the activities of the various artisanal castes, like chhipa (block-printer), rangrez (dyer), darzi (tailor) and bhtakadha (stencil maker?), Jhulaha (Wever) etc. Jodhpur Sanad Parwana Bhais are replete with information pertaining to artisanal classes. The paper will try and attempt to highlight the problems during the migration, reasons behind the artisanal migration, type of migration, its frequency pattern, attitude of state and society towards it, condition of the artisans.

Keywords : *Migration and settlement, chhipa, Rangrez, darzi, Jhulaha, bhtakadha, kartiya, dhobi, Malwa, Sanad Parwana etc.,.*

This paper will try to analyse the migratory pattern of textile artisans in Marwar region during the 18th century. The study aims to trace the historical background of textile related artisans and their activities in the Marwar region in the eighteenth century and focus on their life style, reasons behind for migration, types of migration, its frequency, the attitude of state and society towards it and the condition of the artisans.

Rajasthan State Archives, Bikaner and Maharaja Man Singh Pustak Prakash Research Centre, Mehrangarh Museum Trust, Jodhpur Rajasthan, contains huge repository of textiles artisan's records. Jodhpur *Sanad Parwana Bahis* are replete with information pertaining to artisanal classes. Records throw interesting light pertaining to the activities of the various textiles artisanal castes, like *julaha* (weaver), *darji* (tailor), *pinjara* (cotton carder), *chhipa* (calico-printer), *balai bangar* (spinner), *jatiga bangar (*spinner), *bandhara* (tie and dye), *kartiya* (spinner), *rangrej* (dyer), and *dhobi* (washer man).[1] Douglas E. Haynes and Tirthankar Roy have discussed about the migration of artisans in India. They argued that some sections among weavers were always mobile, always willing to evacuate from regions in decline and move to those showing signs of expansion. The migration was also due to the encouragement given by the ruling class which wanted increased production of textiles in the cities.[2] Our records confirm this argument and throw light on the fact that the artisans were often called from far off places to perform specific tasks.

For example, Jodhpur, a *chhipa* named Asha who used to print saffron *booty* (small flower print) was called from Agra to work in the royal textile *karkahanas* (*kapdho ra kothar*). According to the records,

printers were called from distant places and paid a travel allowance.[3]

The movement of population from one to another is called as migration. We saw two type of migration in generally; temporary and permanent. Temporary migration encompasses annual, seasonal or even daily movement of population between two cities. The pattern of internal migration may be divided into the following: intra-state movement in the case of movement of people within the state itself, and inter-state movement when the migrants cross the borders of a state and settle down in another state.

Forced migration is due to political cause such as war, displacement decision and physical causes such as flood, drought, earth quake, epidemic etc., Depending upon the number, migrations can be classified as individual or group of people and mass migration. In mass migration collective behaviour of people becomes important. Similarly, on the basis of volume of flow migration can be called as large scale, migration can also be classified as skilled migration, semi-skilled migration and unskilled migration. Innovative migration on the other hand, is the movement of people in order to obtain a new way of life. If the individuals have to evacuate their origin place and choose to settle at new place with new occupation / activities which they think better than former, they are innovative migrants. This the conservative or innovative migration depends on the thinking perception, decision etc.

Primitive migration is another type that refers to a movement resulting from an ecological force. In this case people become unable to cope with the natural conditions of his environment and as a result they move in order to survive. Some migrations take place in successive time intervals and known as seasonal or periodic. These are related to seasonal thytms. In the Marwar we get many instances about the seasonal or periodic migration.

Migration of Textile Artisan in Marwar

In Rajasthan, history of *chhipas* begins around 13th century. We get two contrasting information about the migration of the *chhipas* in the region. As per the genealogical records of the *chhipas* culling out from their *Balwa Pothi*[4] *Chhipa* claime that they were the original inhabitants of Rajasthan. Their original homeland was, they claim, Nagor. They argue that from there they moved to Jaisalmer. Still, all *chhipas* of Rajasthan traditionally accept Nagor as their 'native' place. They believe that their ancestral 'deity' is at Nagor where they often visit to pay their homage. It was from Jaisalmer, they claim to have spread over various parts of India.[5]

The late 19th century Marwar census report *Mardum ShumariRaj Marwar* records *chhipa* community's migration from Pandharpur (Sangli district, Maharashtra) to Marwar.[6] K.S. Singh agrees that the '*chheepi*' have migrated into Jaisalmer (Rajasthan) from Pandharpur, the chief seat of the famous saint Namedev in the Deccan.[7] However, *Imperial Gazetteer* of *Rajputana* mentions that they migrated from Gujarat to Jaisalmer sometime during the seventh to eleventh centuries.[8] Presently, the major *chhipa* settlements in Rajasthan are Jaipur, Ajmer, Bharatpur, Jodhpur and Sawaimadhopur districts.[9] During my field survey undertaken in 23 November, 2011, Maulavi Muhammad Akbar, *chhipa* of Bikaner whose family was in the cloth printing profession from generations recalls that his ancestors migrated and settled in Bikaner from Sanganer (Jaipur).[10]

Both, Mardum Shumari Raj Marwar and report of *census* Superintendent of Marwar, Munshi Hardyal Singh mention their migrations to Marwar from Delhi. However, Hardayal Singh adds that they migrated during the period of Shahab-ud-din Ghori (1173 - 1206) and were largely Sunni Muslims.[11]

In usually artisans used to migrate during drought. Like other tribes/j*atis*, textile artisans also used to migrate to Malwa, Deccan, Sindh and

used to return after drought. Whenever an artisan used to travel with his family to another place and return back, he had to face a lot of problems. Out of all the problems, the main issue used to be of land. But often other artisans took of the migrants land. In such cases in migrant artisans upon retune used to seek help from the state and the state used to solve their issues. For instances, When *julaha* Bhairu Dare went to the Deccan, his house was usurped by *julaha* Jume and was never returned back. For this, he complained to the court and he was assured of getting his house back from the court.[12]

Once a destitute artisan took a loan, he was rarely able to come out of the vicious circle that indebtedness implied and in most of the cases, his properties got confiscated in the process. This was the case of *chhipa* Maya Didwana who mortgaged his ancestral house to *sunar* Bagasa before going to Malwa. *Sunar* sold it off to another *chhipa* without Maya's consent. Maya therefore, informed the state authorities and pleaded for their intervention in the matter.[13]

Darzi Mohan of Jaitaran informed the state that he had mortgaged his property for a loan from *darzi* Fato, and then moved to Malwa. When he returned from Malwa 5-6 years later, he was asked to vacate the property and even remained in jail for 2 months. This instance clearly suggest that Mohan had not been paying instalments towards returning the loan, and chased by his creditors, had chosen to shift base and thereby avoid detection.[14]

Mortgaging property, however limited, in lieu of a loan is repeatedly documented. For example, *Nilgar* Fata's son Fazal informed the administrative authorities that he had to mortgage his house in Nagaur before shifting to Malwa. While he was away, Nilfar Bakhu, aiming to usurp the house, declared the owners of the property to have died in Malwa.[15]

In all these instances of artisanal mobility and many more of the kind credit crunch appears to have pushed artisans towards insolvency migration. We get one instance Lale the son of Musraf Basta of Bilardha complained that *darzi* Daho had been working for them and was therefore given land for a house, for which paper were made accordingly. Then Daho borrowed Rs. 5 from Basta and unable to repay the money, he left for Malwa, leaving his property papers in Basta's custody. Basta kept the house and got rent from it for many years, but complications arose between Dadho's descendants and Basta son.[16]

In addition to reasons cited above that made artisans indispensable to any settlement, there seem to have been two other major reason that prompted the administration any local authorities to make every effort to induce those who had left their village to return home.

In cases where artisans moved to distant location like Malwa, Sind, Dacan, they were generally away for long durations of time. But attachment to their native village. Often saw them return once conditions improved in their village.[17]

For example, Lado a dyer of Jodhpur went to Udaipur and came to Pali and was living there. He died there. Thereafter his wife wanted to go back to Jodhpur. But the *chhipa* of Rupali village in Pali pressurised her to live and do death ceremony when she lived it. In this matter wife of Lado filed a complaint in the Jodhpur court. The court ordered that she be allowed let her go to there and to leave and instructed the *chhipa* of Rupali village not to prevent her.[18]

Being integral to their subjective consciousness, they meant much more to its owner than their market value, and artisans therefore approached the courts rather than abandon these lands and settle elsewhere. Paimle's assertion was based on the principle that while family/ clan members many use the property during the absence of its owner; it would revert back to the owner or his rightful successors whenever they claimed it.[19] we gets some instances pinjara Hayat illegally occupied pinjara Isk'a ancestral property in

Nagaur when the latter was in Malwa and refused to return it even 3 years after Isaka returned.[20] in another petition by *darzi* Nathe of village vasi in Parbatsar stated that when he was in Malwa, *darzi* Prabhu assumed control over his house and his birat (patron house) and even for years had passed since his return, Prabhu was refusing to let go of what rightfully belong to Nathe.[21] Such incidents gave rise to conflicts which the administration had to tackle and resolve.

Conclusion

Thus, our documents clearly suggest that in the Marwar State intra-state migration and inter-state migrants both are presented that time. During this time artisans moved to distant location like Malwa, Sind, Dacan, they were generally away for long durations of time. But attachment to their native village. Often saw them return once conditions improved in their village. In Marwar generally we saw temporary migration

References

1. *Bhadani. B.L, (1999). Peasant, Artisans and entrepreneurs, New Delhi: Rawat Publication, p.366.*
2. *Douglas E.Haynes and Tirthankar Roy, 'Conceiving mobility: Weaver's migrations in pre-colonial and colonial India'* ***Indian Economic and Social History Review*** *(henceforth* ***IESHR),*** *XXXVI, Number 1, Jan-March 1999. P.36.*
3. *Kapdho re kodhar ri bahi, no. 2, V.S. 1823, f.117.*
4. *Balwa Pothiare are the records of chhipas maintained by the bhats. The bhat in Rajasthan are addressed as balwa the pothis (records) maintained by them are known as balwa pothi. Each community has barot. The barot maintains the history of the genealogy of that community. The work of maintaining chhipa genealogy in Marwad was carried out by the Balwaji which is continued till this day. In this pothy the genealogy of Muslim Bhati of overall India has been mentioned. In this genealogy both the casts of Bhati such as Jinbhati and Jamavat Bhati are included. There are total seventeen thousand two hundred eighty pages in this pothy. About one hundred additional pages are also placed. Besides the genealogy of overall muslim Chhipa Jin Bhati till this day from Samvat year 1291, their strength, their living style, the main places of their residences, daughter transaction etc note is also found from this pothy. Nothing has been written in this pothy about any other cast of chhipa jamat. Because the separate pothies have been kept for other castes.*
5. *Balwa pothi, (1234 CE).Written by bhat, pothi, No. 2.p. 417.*
6. *Singh.Hardayal, (1997) [1970].Report Mardum Shumari Raj Marwar (1891): Rajasthan ki Jatiyon ka Itihas evam Unke Riti Rivaj, Jodhpur: Shri Jagdish Singh Gehlot Shodh Sansthan, p.481.*
7. *Nath. Lok, Soni, ed. Singh, K.S., (1998). People of Rajasthan' Vol. XXXVIII, Part one, Mumbai: Popular Parakashan, pp. 225-227.*
8. *Imperial Gazetteer of India Provincial Series, Rajputana, (1908). Superintendent of Government Printing, Calcutta, p. 14.*
9. *K.S. Singh, (1998). p. 225.*
10. *Field survey undertaken dated on 18/08/2011, Bada Bazaar, Bikaner, Rajasthan.*
11. *Singh.Munshi. Hardyal, (1995)[1894].The Castes of Marwar, ed. Komal Kothari, Jodhpur: Book*
12. *Treasure, p.171.*
13. *JSPB 15, 1832/1775, f. 298b.*
14. *JSPB 11, V.S. 1828/ 1771, f. 175a.*
15. *JSPB 9, V.S. 1826/ 1769, f. 62a.*
16. *JSPB 14, V.S. 1831/ 1774, f. 209b.*
17. *JSPB 15, 1832/1775, f. 807b.*
18. *JSPB no. 8, 1825/ image356*
19. *JSPB 16, 1833/1776, f. 67b.*
20. *JSPB 20, 1835/1778, f.168a.*
21. *JSPB 16, 1832/1776, f. 139b.*

Rereading The Kite Runner through Aristotle's Poetics

Dr. Vinu George
Assistant Professor, Jai Narain Vyas University , Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Khalid Hosseini is a well read novelist and his first novel The Kite Runner delves into not just turmoil that people and their lives were thrown into but also how an incident affected two boys on physical and psychological level. This paper analysis the character Amir and the story line from the perspective of what Aristotle spoke about plot and other elements in his Poetics. An attempt has also been made to see the psychological reasons for the characters behaviour towards different people and this behaviour is interpreted through Freud's Psychoanalytic Criticism. Many aspects like- guilt, shame, sin, religious bigotry, repentance and salvation are also talked upon with the behaviour of Amir as the eye of the storm.

Keywords : *Guilt, Shame, Sin, Religious Bigotry, Repentance and Salvation, Aristotle, Poetics, Sigmund Freud, Psychology, Psychoanalysis.*

"A boy who won't stand for him for himself becomes
a man who can't stand up for anything" (Hosseini, 20)

When one reads The Kite Runner the reader comes across many lines and passages which end up like a mirror showing a reflection of the self the question which one asks himself asking turns out to be too self revealing and uncomfortable to answer no one likes to be cornered and no one in the least wants to encounter his past mistakes the guilt which haunts the night makes one and insomniac the opening lines of the novel are hard hitting taking the readers to the past of the central character Amir and his fretfulness and his present state of chaos I have become what I am today at the age of twelve. (Hosseini, 1) the guilt of what he had done in the past of fretted doing still case him and nearly thirty years after it happened, we find Amir peeking into the alley (Hosseini, 1) at his buried past which is clawing its way back into the present.

The kite runner has many autobiographical elements like Hosseini and his family seeking asylum in the U.S, Amir's favorite book is the Persian Shahnama, the description of Afghan people, Hazaras, the community at large and most importantly the kite flying festival but this is not an autobiographical novel in anyways though Amir was born in Kabul in Afghanistan later moved to the U.S and lived with his family just like the author. One can see with clarity the political background of the time lapse in Afghanistan and how the present day Afghanistan is the same as Amir and Khalid are finding it inhospitable and like a tourist in my own country, (Hosseini, 203)

Hosseini was an avid reader from his childhood like Amir and was influenced by many writer who's writing helped him to write better and become a novelist. The influence of great lighters like Salman Rushdie and jumpha Laheri is quite evident in the way that Hosseini creates and portrays each character in vivid detail. The novel was influenced by the news that the Taliban had banned kite flying in 1996 and

in 1998 they massacred the Hazaras in Mazar E Sharif. The timeline of the novel is from 1970 till 2001 and Hosseini uses a lot of shorts sentences and flashback techniques to create a vivid impact on the reader.

The novel is largely shown by the eyes of a child and it delves into the psyche of the character and his personal struggles with keeping up to the expectations of his father who says -if I heard hadn't seeing the doctor pulled him out of my wife with my own eyes I'd never believe he's my son. (Hosseini, 20) but there are other characters that influence Amir but he is closest to his friend or ugly pet (Hosseini, 64) as Assef calls him i.e. Hassan. The flat nosed (Hosseini,8) Hasan was son of Ali the Hazara servant but only in the later part of the novel we find that the two boys are related more than just being fed from the same breast. (Hosseini,10)

This research paper delves into an aspect which I think has not been given its due. There are many research papers on the kite runner from the post-colonial perspective, child abuse or even father son relationship but rarely does any work show the child character Amir in light of Aristotle's Poetics. This paper will deal with the tragic elements, plot and character and study of Amir's behavior and actions through Aristotle's eyes and how he describes his hero and the elements that make the story more interesting and keeps the readers on the edge.

From the very first sentence of the novel we can find that Amir is haunted by his past- an act that he did not commit yet was part of it. His guilt has made him the man that he himself abhors and what his father had sensed way before when they were in Afghanistan. The next chapter onwards we find more about Amir and his Baba, their pride and social standing comes from the very fact that they belong to the Pashtun community which is on the top of the social strata in Afghanistan besides the fact that Amir's is Grandfather knew king Nadir Shah and two had gone hunting in 1931 two years before the King's assassination(Hosseini, 5) Amir's father was a well known and respected businessman in Kabul and referred to as Toophan Aga or Mr hurricane (Hosseini, 11) he had the personality that drew attention of everyone and it was like a force of nature so much so that when he walked into the room attention shifted to him like sunflowers turning to the sun. (Hosseini, 11)

A careful reading of the initial chapter show the Amir and family were not just any common people, they were the talk of the town. Amir mentions to Hassan the punishment he escapes in school because the teachers knew who Baba was. We get an ample view of Amir and his high profile life with his father's business, their Ford Mustang, the movies they were taken for during the weekends and the parties that Baba threw for near and dear ones but somewhere, something went wrong and we are left in puzzlement as to what it is. In Aristotle's poetics we find him defining tragedy as an imitation of an action which is serious complete and of a certain magnitude. (Aristotle, 39) Now considering the word action or act which Aristotle calls the tale of suffering exciting pity and fear action comprises all human activities including deeds thoughts and feelings. (Aristotle, 12) Another definition by Andrew Bennett and Nicholas royal about tragedy says that there has to be four requirements the first is that there is a central character a protagonist someone who can be sympathized with the second that this character should suffer while the third is that the downfall or death of the central character should be felt by the spectator the 4th elements say that the reader should be drawn into thinking about their own death. (Bennet and Royle, 107)

Another element that the two authors speak about in their book is the Aristotlean idea Harmartia- that is, misfortune is brought about not brought by vice or depravity but by some error of frailty. (Prasad, 21) Their idea of Hamartia is particular flaw or weakness or making an error in judgment which leads to the downfall. (Aristotle,)

If we go through these definitions we can see that

the central character Amir is a person with whom one can sympathize. He has woven a web around him in which he himself has got tangled into, he wants just one thing in life- approval from his father. He does everything possible for him under the sun to win the approval, be it trying his luck in soccer or in any other manly thing he fails miserably. The more he tries the more he falters and fails, we find him yearning for his father's love wanting to be in his Baba's room after dinner only to be shunned away because it is "Grown Ups time". When we read about how Baba is working on the designs and looking into the construction work of the two Storey orphanage in the South of Kabul, Amir is jealous of this news and of the orphans who are getting the attention of his Baba as he says I want Baba all to myself (Hosseini, 12) he even gets jealous of Hassan because he knows his Baba loves Hassan and an unknown comparison is being made between the two boys Baba clearly says it that in Amir there is something missing in that boy. (Hosseini, 20)

Amir finds a little joy and comfort only in the fact that his Kaka -Rahim Khan who is his father's best friend and business Partner approves of him and wished Raheem Khan had been his father (Hosseini, 28) we feel sad for Amir when he tries to have a conversation with his father in a smoking room (Hosseini, 4) about what was taught in the school about drinking and smoking Baba forgets that he's talking to an eight year old boy who is naive towards the way of the world, keep aside the fact that religion was hardly practiced in the house. Baba a man of few words could sting with so few words (Hosseini, 15) gives his opinion about the Mullahs to the young mind that - you'll never learn anything valuable from those bearded idiots. (Hosseini, 15) Baba had been the entire world for Amir and Hasan, Ali, Rahim Khan had been just in the periphery of his life. When Baba tells him of the only thing he considers being sin we find Baba to be impatient (Hosseini, 16) whereas the same Baba was loving towards Hassan- the servant boy and orphans who Amir wished had all died along with their parents. (Hosseini, 16)

Every act of Amir is a revelation of his own character how insecure he is his pranks on Hudson when he calls him an imbecile (Hosseini, 25) or avoids taking him for a picnic with Baba. We cannot call Amir an utter villain as he is tormented by the made up idea that -Baba hated me a little… after all I had killed his beloved wife and his beautiful Princess. (Hosseini, 17) Baba tried everything to make Amir a strong character like himself but Amir accepts that- but I have but I hadn't turned out like him not at all (Hosseini, 17) he says that Baba was not someone who tried to succeed but rather Baba was used to winning, winning at everything he set his mind to. (Hosseini, 49)

The change of fortune came in the form of kite flying competition. Amir had made up his mind that he had a mission now and I wasn't going to fail because not this time. (Hosseini, 49) He says that there was no other viable option… I was going to run this last kite then I bring it home and show it to Baba show him once and for all that his son was worthy and maybe just maybe I would finally be pardoned for killing my mother. (Hosseini, 49)

Amir and Hassan finally won the kite flying competition and it's like army had not proved to be a worthy son. Hassan the trustworthy servant runs after the last blue kite promising to bring it back as a prized trophy with words for you thousand times over. (Hosseini, 59) As these words resonate in Amir's ears for next few decades and doesn't let him sleep, the winning in fact, doesn't change the fortune from bad to good but reversely from good to bad. (Aristotle, 13) For Amir as pointed out before winning the competition meant salvation and redemption, his Baba would now accept him and he'll be free from the guilt of killing his own mother but the reversal of this happens when he wins the kite competition and Hassan runs after the kite.

Life gives Amir every chance to be the person his

father wants him to be but he fails in every attempt. When Hassan runs the kite down as he is cornered by Assef and his gang, Hassan and does his best to fight for the kite- a thin piece of paper. But what happens on the frigid overcast day in the winter of 1975 crouching behind a crumbling mud wall peeking into the valley (Hosseini, 1) Amir saw his friend, his servant becoming the scapegoat for his friend. Amir and Hassan had been cornered before and Amir was on the receiving end but Hassan rescued him because he believed Amir Agha and I are friends (Hosseini, 64) as he announces to Assef. Assef points out to Hassan that he was nothing but an ugly pet something Amir can play with when he is bored. (Hosseini, 64)

Amir peeking into the alley had every chance to stop what was about to happen to his friend, he even says- I opened my mouth almost said something. Almost. The rest of my life might have turned out differently if I had. But I didn't, I just watched paralyzed. (Hosseini, 64) Amir is chased by his guilt for not doing anything that day and this makes him wreck havoc in everyone's life. If we look into the psychological state based on his own words and self monologues, we understand why has he turned out to be what he is. Freud Psychoanalytic Criticism helps us to understand Amir a little better who is knowingly or unknowingly is influenced by his unconscious mind. Something in the same lines is talked about by Charles Bressler in his book: "Literary criticism: An introduction to theory and practice."

There would have been fear in Amir's mind which numbed his senses and made him embrace silence. The fear could be -what Assef and his entourage might do to him given this sinister description especially Assef's brass knuckles and how he used those knuckles once on a kid from Karteh- char district. I will never forget how Assef blue eyes glinted with the light not entirely sane and how he grinned, how he grinned as he pummeled that poor kid unconscious. (Hosseini, 33-34) Amir could have been scared about what the Sociopath (Hosseini, 34) would do to a timid person like him. But Amir rather than finding out his fate accepted cowardice, because nothing was free (Hosseini, 68) and hiding behind the garb of reason, he was just a Hazara wasn't he. (Hosseini, 68)

The guilt ridden Amir reaches home with the prized posssession and did not disclose his sin to anyone and tried to keep Hassan end at Bay as he could not face him anymore. His guilt makes him hurt Hassan in the graveyard an then later turning an innocent blood into a thief by hiding his new watch and a harmful of Afghani builds under the mattress. (Hosseini, 91) Hassan proved to be a better man and accepted the blame once again taking up the role of a sacrificial lamb.

The turmoil in Amir's life continued and his wish to be the sole person in his Baba's life came to be true when they moved to America but his Barber was like a widower who re marries but can't let go of his dead wife. But for Amir, America was a place to bury memories. (Hosseini, 112)

We find Amir and Baba trying to make ends meet with the weekend sale day job along with armors studies. But Amir is still reminded of his childhood every now and then when his Baba mourns. Amir finds a slight morsel of self satisfaction when he marries the woman he loves Soraya. But after his Baba's death in asleep, Amir is still searching for a meaning in his life. When his wife fails to conceive even after a year of the marriage Amir is reminded of his past- something, someone, somewhere has decided to deny me fatherhood for the things I had done. May be this was my punishment and perhaps justly so. (Hosseini, 164)

Amir is called to face his past action in 2001, when Rahim Khan calls him to Pakistan saying- come there is a way to be good again. (Hosseini, 168) The emotional and mental turmoil which Amir goes through on deciding to go to Pakistan shows that he wasn't just a failure as Baba was scared but when Rahim Khan tells him the secret that everyone had hidden from him and Hasan

shatters his belief in everyone. The change from ignorance to knowledge (Aristotle, 13) is the truth that Amir is now on a guilt ride, he remembers all the wrongs he had done to everyone around him and now comes to understand his Baba better. He now sees why Baba had been so generous towards giving out alms or building an orphanage for kids. His remembrance brings him to the time when Baba defined the greatest sin and now he realizes after fifteen years that Baba had been a thief and a thief of the worst kind. (Hosseini, 197)

He realizes that Baba and he were more alike than ever known. We both had betrayed the people who would have given their lives for us. (Hosseini, 197) Amir now feels that he has been called for atonement of not just his sin but his father's sin as well because he feels to rid himself and be relieved of the guilt. (Morris, 100) As he travels to Afghanistan he is on a journey back to his childhood to face his sin of betrayal face to face, he knows as Alf Ross in his book 'On guilt, responsibility and punishment' says what has been done cannot be undone, but that does not mean that nothing can be done to repair the damage. (Ross, 7) He describes Kabul not as what he had experienced but a Kabul that had become a city of ghosts (Hosseini, 119) rubble and beggars (Hosseini, 214) and realizes that the children who sat on the streets on the lap of their mothers had no adult male around them the wars in had made fathers are a commodity in Afghanistan. (Hosseini, 215)

When Amir find Shorab with the Taliban, he finds that it is the same person who had raped Hudson and crippled armies feeling for life. It is here that one sees Aristotle's suggestion of element of surprise. (Prasad, 19) Amir has now come face to face with his fearsome giant and gets beaten up brutally but he keeps laughing in pain because he feels that pain is associated with the expression of feeling guilt and this pain as punishment. (104) But it is again, Amir who needs to be rescued and that too by young Shorab-the son of Hassan.

Once they escape the Taliban and reach Peshawar, the healing that Amir has to undergo both physical and emotional is a long one. As Amir reads the letter from the him Khan- a man who has no conscience no goodness does not suffer. I hope your suffering comes to an end with this journey to Afghanistan. (Hosseini, 263) Amir now forgives himself and his father as he now knows that his father was a tortured soul. (Hosseini, 263)

Amir faces a lot of hurdles on the way to get Shorab adopted and take him along to America. But the last hurdle was Shorab coming to terms and having faith in Amir which was broken once. Amir does his best to mend the broken fence (Frost,) between the two but to no avail even after returning to America, Shorab has a fear in mind of being abandoned, but Amir is now determined not to repeat his childhood mistakes – during a dinner he retorts to his father in law of whom he once was scared of and comes out to defend Shorab who reminds him of his half brother Hassan in many ways.

The moment of catharsis is not when Amir rescues Shorab but rather it is in Fremont a few days prior to that Amir feels redeemed of his guilt as he now has contributed to a hospital project in Afghanistan and he is becoming more like his father in matters of social service. He feels as if relieved of guilt is to feel again that one is joined together with others and with oneself to no longer divided within and at war with ourselves and others. (Morris, 100) When Amir flies the kite with Shorab at his side, he's taken back to the kite flying competition- the day that wrecked his life. But now he sees what could have been a different turn of events.

When Amir cuts the kite – and Shorabd just nods about getting the Kite, it is not just a catharsis for Amir or Soraya but for the readers to who have been with him behind the alley looking but not doing anything watched him struggle in every relationship and finally finding a way to be good again.

As Charles Bressler in his book 'Literary criticism: an introduction to theory and practice' puts it- how readers interpret the various characters now becomes an integral part of the text interpretation. Whereas, as the author creates character, a reader re-creates the same character, bringing texts and the individual characters all the readers past experience and knowledge. The character simultaneously then becomes partially the creation of the author and partially that of the reader. (Bressler, 95-96)

Yes Amir did a grave mistake and it had a long lasting impact on his childhood and to certain extent his adult life but like a true Shakespearean hero he redeems himself and finds solace in his heart. When he runs to fetch the kite just like Hassan had to make his Amir Agha happy, we see Amir a new person and a happy person who will never be resorting to the old ways. The reader and Amir feel a burden being lifted off the heart and shoulder when Amir says "for you a thousand times over." (Hosseini, 323)

References

1. *Aristotle. The Project Gutenberg EBook of Poetics, by Aristotle, Translator: S. H. Butcher.*

   http://www.gutenberg.org/files/1974/1974-h/1974-h.htm. 2008.

2. *Bennett, Andrew, and Nicloas Royle. An introduction to Literature, Criticism and Theory, 4th ed. Great Britain: International Book Distributors Limited, 2009. Print.*

3. *Bressler, Charles E. Literary Criticism: An Introduction to Theory and Practice. Harlow: Prentice Hall, 2003. Print.*

4. *Freud, Sigmund. Civilization and Its Discontents: 1930. New York: W. W Norton, 1962. Print.*

5. *Hosseini, Khaled. The Kite Runner. London: Bloomsbury, 2003. Print.*

6. *Morris, Herbert. On Guilt and Innocence. London: University of California Press, 1979. Print.*

7. *Prasad, Brijadish. An Introduction to English Criticism. MacMillian Publishers, India, Ltd. 2011. Print.*

8. *Ross, Alf. On Guilt, Responsibility and Punishment. University of California Press, 1975. Print.*

British Diaspora: Representations of India in Colonial British Indian Poetry

Tanushree Srivastava
Research Scholar, Bhagwant University, Ajmer

shodhshree@gmail.com

Abstract

The history of India exposed the barbaric nature of colonialism – marginalised the culture and their desire of trade, plunder and ultimately becoming the Colonial Masters of Indian subcontinent. During their rule, they represented India in different genres and produced a huge corpus of poems unifying most of them under one major theme i.e. Colonised India. The spiritual ethos of India, socio-cultural milieu and the British experience gave a poetic insight and displayed a fairly reasonable proficiency in the use of varied poetic forms and devices. Their representations are not merely intertwined with the concerns of domination and subordination rather they wrote on the heterogeneous image of India.

Keywords *: Diaspora, Representations, Colonial Literature, British-Indian Poetry, Socio-cultural, Spiritual.*

In the words of Indian Political Psychologist and Social Theorist, AshisNandy: "Colonialism colonizes minds in addition to bodies and it releases forces within colonized societies to alter their cultural priorities once and for all. It helps to generalise the concept of the Modern West from a geographical and temporal entity to a pshycological category. The west is now everywhere, within the west and outside, in structures and minds."

Diasporas and migrations have always been related with economic wealth. Imperial Diaspora deals with the colonizer representations or the indigenous natives. These natives migrate to foreign lands, already conquered by their country and enjoy the superior status on account of their ruling power. The history of colonial era in India speak volumes about the advent of European power, their trade and drain of wealth helping to establish an Imperial empire. Alongside colonizing India, some of them presented accounts of India popularly known as Anglo-Indian literature and the poetry produced by them has been designated as Colonial British Indian Poetry—a genre representing India.

The colonial power drew the attention of many post colonial theorists. Edward Said, Elleke Boehmer, John Mcleod were influenced by the constructivist approach of representation and have argued in their works about the ulterior motive of the advancing imperialist power to attain political control over India and make it their colony. During this task, along with ruling the natives, British used "representations as a fundamental weapon to keep colonized people subservient to their rule". They internalised the language of the West as representing the natural and true order of life. With the aim of governing, restructuring and having authority over the indigenous natives, they bore the concept of "Superiority of European Culture" and "Rightness of Empire". Race classification and imagery of subordination embodied with imperialist thoughts began to be represented. With these representations manifested with a distinctive stereotyped language, they provided the lens through which the Westerners could control the Eastern nations.

A study of few poems namely Poets of John Company (1921) by Theodore Doughlas Dunn's, British life in India: An Anthology of Humorous and other writings Perpetrated by the British in India by R.V. Vernede (1750-1947) and Maireni Fhlathuin's The Poetry of British India (2011) extensively represented spiritual ethos of India, a socio-cultural milieu of India and the Britishers' experience in India. Their portrayal is not merely intertwined with the concerns of domination or subordination rather they covered diverse things and showcased a multifaceted India.

On a deeper analysis of few poems, they bring forth the condemned and criticized India, creating binary division between east and west. They considered India as a "Land of shit and filth and rags/ Gonorrhoea, Syphilis, Clap and Pox'' (James 597). They address it as fudge from beginning to end (Dunn 28) and as "an alien soil full of heat, dust, dirt, smells, sickness and disease where neither the mind nor the body is at rest". For a few others, India was the most dreaded place on earth.

Where insects settle on your meat,

Where scorpions crawl beneath your feet

And deadly snakes infest (Vernede 90)

On the contrary, just like a coin has two sides, similarly, for a few other poets India was a holy land. They were enthralled by the spiritual facet of India. Sir William Jones, the first colonial British Indian Poet, got fascinated by the spiritual side of India that he composed nine hymns addressed to different Hindu Gods. Similarly, Sir Alfred ComynLyall, John Leyden, William Waterfield wrote extensively about Lord Shiva, Lord Ram and Lord Krishna respectively. A mention of "places of prayer"—our temples and "Pearly white temples in numbers untold" of Haridwar and mighty Ganges lured them.

Pilgrims in thousands kneel down by the shore

Gaze upon Ganga and want nothing more (Sinha, 102)

Another set of the Colonial British Indian poets were fascinated by Indian culture and way of living and they wrote about it in diverse ways. India's exquisite beauty and rural India's imagery made their "Hearts so light and gay" (Dunn 31-32). Mention of the submissive Indian wives, rigid caste system, monstrous superstitions, poverty, illiteracy which engulfed India and had "tainted the fair stream" (Burke 48). Satirical accounts on caste division, Indians twisted together in their age old superstitions, believe in the "Priests" who assured them to make their barren lands fertile, they should "bury a child around its roots" (Hope 29), "the quacks" who gave them "some Hakim's powder" for the cure of all diseases and "the power of Shraddha to make the parted spirit glad" (Hutchinson,4). Few gruesome images of India's poverty, mothers selling "their children to get breads" and "when food was none; some kissed her infant's head, and then contentedly laid down to die" (Burke 87) shows the miserable plight of Indian masses. Poets like James Atkinson, James Hutchinson and Emma Roberts expressed their pain witnessing the Sati system and Untouchability in their poems.

Reforming India was also one of the themes for many poets of the time. They focussed on the administrative, educational and social reforms by the British. In this context, Thomas Francis Bignold translated a few Hindi nursery rhymes into simple English to lure Indian students learn English.

British life in India was a curious topic in England. The foreign power led a distinctive Imperial lifestyle "like Gods and ruled it in majesty and might" (Burke)

The British officers worked only for "three hours at most per day" and were given "long annual vacations" with special "rates of pay" (Vernede). They drew "bright rupees" as monthly salary and got a hefty amount on retirement and received "Eleven hundred pounds a year" as pension. (Cheem). The Indian servants made the lives of their "white masters full of ease, comfort and luxury. R.V.Vernede dedicated a poem to his

Indian servants titled "The Old-Koi Hai"—

No butler staid in gold brocade

To serve him with his grub;

No khitmadgar to bring a cigar,

Or fill the brown tobacco jar;

No chauffer now to wash his car;

No sweepress to scrub

No dhobi foots to iron his suits

No beaters to attend his shoots

No bearer to remove his boots'

Or give his back a rub.

The British had plenty of free time and indulged in reading, writing, playing cards, horse-riding, hog hunting, antelope shooting and extravagant parties. They celebrated life in India with their families and a "whole retinue of servants" (D'Oyly).

The poetical representations show a mixed picture of India during British Raj. For some it was a place full of "heat, solitude, anxiety" and for others it was "a lovely home away from home" (Ghosh)

Different sentiments at the end of their rule find its mention. Some were "delighted as this was what they had been working for, to hand over India" (Procida) whereas a few felt "Everybody in India is more or less, somebody. It must be very sad change to go home to England and be poor and shabby and certainly obscure. (Doughlas). A few took it "not without regret and heartfelt sorrow" for the next generation of young men and women who could now never have the enriching experience they had of the Raj (Vernede).

To conclude, India is a heterogeneous mix of varied attitudes, perspectives and approaches. "A few quaint pictures of an India that has passed away and have shown an exuberant vitality that it might be our pride to recall" have been presented in their poems. (Dunn)

References

1. *Boehmer, Elleke. Colonial and Postcolonial Literature: Migrant Metaphors. UK : Oxford University Press,1995.*
2. *James Burke- Days in the East: A Poem. LLC: Kesinger Publishing, 1842.*
3. *Theodore Dunn- Poets of John Company. Calcutta: Thakur, Spinker & Co. 1921.*
4. *Durba Ghosh- Sex and the Family in Colonial India: The Making of Empire.Cambridge, UK: Cambridge University Press, 2006.*
5. *James Hutchinson- The Pilgrim of India: An Eastern tale and other Poems. London : William Pickering, 1847.*
6. *Vernede- British Life in India:An Anthology of Humorous and other Writings perpetrated by the British in India, 1750-1950. New Delhi: Oxford University Press, 1999.*
7. *Sinha- The Birth and Development of Indo English Verse. New Delhi : Dev Publishing House, 1971.*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 **IFS Code :** UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 1800 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION
(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)
Union Bank of India, Beawar - 305901
UB A/C No. 0326321010000001 • Account Type : Current
IFS Code : UBIN0932639 • MICR Code : 305026014

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401